मेरे नाटक

Mere Natak
by
R. N Tagore

हमारे अन्य प्रकाशन

चान्द सितारे
कौन किसी का ?
डाक घर
खेलें कैसे ?
खत और खुशबू
विजय किस की ?
शैतान पुजारी
क्रांन्तिकारी रमणी
आँचल और आँसू
उसकी कहानी
प्रेम पुजारिन
आग
आँसू
बुर्दा फरोश
फाँसी की कोठरी से
पायल
समाज का अत्याचार
पति पत्नी प्रेम
शाही लकड़हारा
जीना सीखो
गुनाह
चोट
फूल और कलियाँ

मेरे नाटक

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के सात प्रसिद्ध
नाटकों का हिन्दी अनुवाद

अनुवादक

श्री ओउम् प्रकाश गुप्ता

प्रकाशक

नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्ज़

देहली

प्रकाशक
नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्ज
देहली

[प्रथम संस्करण]
मूल्य—तीन रुपये आठ आने

Rs 3/8/

pp 224

Bhushan Lal
Khushu

मुद्रक
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
देहली।

दो शब्द

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के साहित्य से आज कौन परिचित नहीं है, लगभग विश्व की समस्त भाषाओं में उनके श्रेष्ठ साहित्य का अनुवाद हो गया है, शायद ही कोई भाग्यहीन भाषा रही हो जिसमें गुरुदेव का साहित्य अनुवादित न हुआ हो। कई देशों में तो उनके साहित्य को मूल में पढ़ने के हेतु लोग बंगला सीख रहे हैं। यही उनके साहित्य की महानता दर्शाने के लिये काफी होगा, वैसे उनके साहित्य के बारे में जो भी कहा जाय थोड़ा है।

हिन्दी साहित्य में यह कमी मुझे बड़े दिनों से खटक रही थी कि 'गुरुदेव' के नाटकों का कोई संग्रह नहीं है, और इसके लिये मैंने स्वयं भी एक दो बंगला भाषी विद्वानों से बात की थी, मगर बात बनी नहीं। और एक दिन यह कार्य मुझको स्वयं ही उठाना पड़ा, जब कि मेरा बंगला ज्ञान यों ही साधारण-सा है। और जब मैंने गुरुदेव के नाटकों को बंगला में तलाश किया तो फिर मेरे सामने बड़ी कठिन समस्या उत्पन्न हो गई, और मैंने अपने को अनुवाद करने के अयोग्य पाया। मगर हास्यकवि श्री गोपालप्रसाद व्यास जी के बारबार प्रोत्साहन देने से मैंने कार्यारम्भ कर दिया। उनका मैं अत्यन्त आभारी हूँ, क्योंकि बिना उनके प्रोत्साहन के ये कठिन कार्य शायद पूरा न होता।

सबसे प्रथम 'बलिदान' नाटक का अनुवाद किया। पहले मेरी इच्छा थी कि एक नाटक समाप्त होने के पश्चात् मैं इसे रोक दूंगा, मगर जब 'बलिदान' समाप्त हुआ और दूसरे नाटक 'मालिनी' में हाथ लगाया तो एक के बाद एक यह सात नाटकों का अनुवाद हो ही गया। जिसमें 'चित्रा' मैंने उर्दू से अनुवाद है, और 'कर्ण कुन्ती' सम्वाद पद्य में होने पर भी मुझे इतना भाया कि मैंने उसे सर्व साधारण के लिये अनुवाद करना आवश्यक समझा उसे भी 'गुरुदेव' के छः नाटकों में मिलाकर सात की गिनती पूरी कर दी।

इसकी भाषा के बारे में मुझे कुछ निवेदन करना है। अर्थात् मैंने ये चेष्टा की है कि मूल के समस्त भाव ज्यों-के-त्यों अनुवाद में आ जांय और भाषा इतनी सरल हो जाय कि सर्व साधारण उन्हें समझ सके। मगर फिर भी मैं यह दावा कर सकने में असमर्थ हूं कि सर्व साधारण इसे पूर्णरूपेण समझ ही लेंगे। इस सम्बन्ध में मेरा विचार है यदि इनमें से किसी भी नाटक को रंगमंच पर खेला जाय तो निश्चय ही सर्व साधारण इसे सरलता से समझ लेंगे और आज के छिछले और गंदे नाटकों की ओर से उनका झुकाव सरलतापूर्वक ऐसे अच्छे नाटकों की ओर हो जायेगा।

मैं अपने साथी इज़हार असर को भी धन्यवाद देना नहीं भूल सकता, जिन्होंने 'चित्रा' के अनुवाद में मेरी काफी सहायता की।

यदि पाठकों ने इसे अपनाया तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूंगा।

ओ३मप्रकाश गुप्ता

No :- 1. Drama.
Balidhan
By Tagore.

बलिदान

पात्र परिचय

रानी ज्ञानवती	
रघुपति	दरबार का पुजारी
अपर्ना	एक गरीब लड़की
मंत्री	
नक्षत्रराय	राजा का भाई
मियाँ राय	सैनापति
जैसिंह	मंदिर का कर्मचारी,
	इनके सिवाय अन्य दरबारी, नागरिक पुजारी आदि —

दृश्यः—एक

रानी ज्ञानवती प्रवेश होती हैं।

ज्ञानवती—माता ! क्या मैंने तुम्हें रुष्ट कर दिया ? तुम तो ऐसी मां हो कि भिखारिन को भी सन्तान दिया करती हो; वह भिखारिन जो अपनी सन्तान को बेचकर पेट पाला करती है ! तुम ऐसी स्त्रियों को भी सन्तान देती हो जो बदनामी से बचने के लिये अपने बच्चों का गला घोंट दिया करती हैं ! और अब यहाँ एक रानी आपके चरणों में लेटी हुई है। सन्तान के लिये तड़प रही है। जिसकी छाती सन्तान के लिये व्याकुल है। मुझ से ऐसा क्या पाप हुआ है। मुझे माँ के स्वर्ग से क्यों धक्का देकर अलग कर दिया गया है ?

पुजारी रघुपति आता है

ज्ञानवती—स्वामी ! क्या मैंने कभी माता की सेवा मन से करने में कुछ उठा रखा ? क्या मैंने सदैव इनके चरणों में माथा नहीं रगड़ा ? फिर माता मुझ से रुष्ट क्यों हैं ? मुझे माँ ने एक बंजर और सूखे रेगिस्तान में फेंक दिया है।

रघुपति—हमारी माँ तनिक कड़े स्वभाव की है, इसे कानून की चिन्ता नहीं। वह दुख और झंझटों के काँटों में नहीं फंसना चाहती। बेटी ! सन्तोष करो। हम तुम्हारे लिये आज एक मुख्य बलिदान करने वाले हैं। देवी वह बलिदान स्वीकार कर लेगी।

राजा गोविन्द, मन्दिर का कर्मचारी जैसिंह और एक फकीर की लड़की अपर्ना के साथ प्रवेश करते हैं।

जैसिंह—सरकार आप क्या चाहते हैं ?

राजा—क्या यह सच है कि इस गरीब लड़की की बकरी बलिदान के लिये बलपूर्वक लाई गई थी ? क्या माँ ऐसा बलिदान स्वीकार कर लिया करती है ?

जैसिंह—महाराज ! मन्दिर के कर्मचारी पूजा की सामग्री एकत्रित करके लाते हैं, हम यह नहीं जानते कि वह कहाँ से लाते हैं ! अरे बच्ची तुम रो रही

हो, जब माता ने तुम्हारा बलिदान स्वीकार कर लिया तो फिर आँसू नहीं बहाने चाहियें तुमको ?

अप्रना—माता ! मैं उसकी माता हूँ ! जब कभी मैं बाहर से घर आया करती थी तो वह घास खाना भूल जाया करती थी, वह स्नेह की दृष्टि से गर्दन उठाये मेरा मार्ग तका करती थी, जब मैं बाहर से आती तो उसे गोद में उठा लिया करती और भीख से मिले टुकड़ों से उसका पेट भरा करती थी। मेरे सिवाय उसकी कोई अन्य माँ नहीं थी।

जैसिंह—महाराज ! यदि मैं अपने प्राण देकर भी बकरी को जीवित कर सकता तो फिर प्रसन्नता से अपने प्राण दे देता, पर जो वस्तु माता ले चुकी है उसे मैं कैसे वापिस कर सकता हूँ ?

अप्रना—माता ले चुकी है, यह झूठ बात है ? वह माता नहीं होगी, डायन होगी !

जैसिंह—ओह ! माता को तौहीन ! यह लड़की नास्तिक है।

अप्रना—(काली देवी की ओर देखते हुए) माता क्या तुम यहाँ इसीलिये हो कि एक गरीब लड़की के प्रेम को नष्ट कर दो। यदि ये बात सच है, तो बताओ मैं तुमको बुरा क्यों न कहूँ ? महाराज आप ही बतायें ?

राजा—मेरी बेटी ! मैं कुछ नहीं कह सकता ? मेरे पास इसका कोई उत्तर नहीं है।

अप्रना—खून की यह धार जो मन्दिर की सीढ़ियों से वह निकली है, क्या मेरी बच्ची की है ? आह ! मेरी प्यारी जब तुम्हारे गले पर छुरी फेरी जा रही थी और तुम्हारे प्राण तड़प-तड़प कर निकल रहे थे, तो उस समय इस गूंगी दुनियां से निकल कर क्या तुम्हारी चीख़ मुझ तक नहीं पहुँच सकती थी ?

जैसिंह—(देवी की ओर आकर्षित हो) काली माता ! मैं बचपन से तुम्हारी पूजा कर रहा हूँ पर आज तक तुम्हारे भेद को न पा सका। क्या दया धर्म की समस्त बातें केवल अभाग्यशालियों के लिए ही हैं, देवताओं को इससे कोई मतलब नहीं ? आओ मेरी बच्ची मेरे साथ आओ, मुझसे जो बन पड़ेगा, वह मैं करूँगा। जब देवता सहायता करना बन्द कर दें तो फिर मनुष्यों की ओर आक-

पित होना पड़ता है ।

रघुपति, राजा का भाई नक्षत्रराय और दूसरे दरबारी प्रवेश करते हैं ।

समस्त—हमारे राजा की जय !

राजा—आजसे तुम लोगों को आज्ञा दी जाती है कि मन्दिर में कभी भी खून न बहाया जाय !

मन्त्री—महाराज, आप देवी के समक्ष बलिदान के लिये मना कर रहे हैं !

सेनापतिराय—उफ़ बलिदान के लिए मना !

नक्षत्रराय—इतनी कड़ाई ! बलिदान से रोका जा रहा है !

रघुपति—क्या मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ ?

राजा—नहीं, यह स्वप्न नहीं हैं, तुम जाग रहे हो । आज माता एक अबोध लड़की के वेष में मेरे पास आई, और उसने मुझसे कहा, मैं खून स्वीकार नहीं करती ।

रघुपति—महाराज ! वह तो युगों से खून पी रही हैं, आज खून से उन्हें घृणा क्यों हो गई ?

राजा—यह गलत है, माता ने कभी खून नहीं पिया, खून देखकर सदैव उसे दुख हुआ है ।

रघुपति—महाराज मैं आपको एक वार सोचने का अवसर देता हूँ, आपको आकाश के कानून को बदलने का अधिकार नहीं है ।

राजा—भगवान के शब्द सारे कानूनों से श्रेष्ठ और उच्च हैं ।

रघुपति—राजन् घमन्ड मत कीजिये । अपनी हिमाकत के साथ, क्या आप यह दावा कर सकते हैं कि भगवान के शब्दों को केवल आपने ही सुना, जबकि सबसे पहले मुझे सुनना चाहिये था ?

नक्षत्रराय—वायुमंडल में भगवान हर समय बोलता है, भगवान के शब्द राजा सुने और भला पुजारी न सुने ?

राजा—वायुमंडल में भगवान हर समय बोलता है, पर जो लोग उसकी आवाज को सुनना नहीं चाहते, वह सुन भी कैसे सकते हैं ।

रघुपति—आप नास्तिक हैं, आपने धर्म नष्ट कर दिया है महाराज ?

राजा—पुजारी, कल मेरी ओर से राज्य के समस्त पुजारियों को आज्ञा सुनाना कि यदि भविष्य में कभी माता के चरणों के समक्ष रक्त की एक बूंद भी गिरी तो रक्त बहाने वाले को सदैव के लिये राज्य से निर्वासित कर दिया जायगा !

रघुपति—क्या यह अन्तिम निर्णय है ?

राजा—हाँ।

रघुपति—(क्रोध से) तुम पर ईश्वर का क्रोध ! क्या तुम अपने घमंड में यह समझ बैठे हो कि काली माता भी तुम्हारी प्रजा है ? क्या तुम अपने कानून से मां के कानूनों को भी तोड़ना चाहते हो ! तुम ऐसा कभी नहीं कर सकते ! मैं घोषित करता हूँ कि ऐसा कभी नहीं होगा ! मैं माता का साधारण सेवक हूँ !

(बाहर चला जाता है)

सेनापति राय—महाराज, क्षमा कीजिये ! क्या आपको ऐसी आज्ञा लागू करने का अधिकार है ?

मंत्री—महाराज ! क्या आप अपनी आज्ञा को अब बदल नहीं सकते ?

राजा—अपनी राजधानी से अपराधों को समूल नष्ट करने में मैं अब देर नहीं कर सकता।

मंत्री—पर अपराधों का समय इतना बड़ा तो हो नहीं सकता, एक युग से देवी के सामने भेंट चढ़ाई जाती रही है।

राजा चुप रहता है

नक्षत्रराय—मंत्री तुम ठीक कहते हो ?

मंत्री—हमारे पिता और बावा इसी रीति को पालते आये हैं, फिर आप किस प्रकार मना करके उनके कार्य को गलत बताते हैं ?

राजा चुप रहता है

सेनापतिराय—समय की बनाई गई रीति आप तोड़ नहीं सकते महाराज !

राजा—अब इस पर बहस व्यर्थ है। मेरी आज्ञा, मेरा आदेश देश के कौने-कौने में पहुँचा दो !

मंत्री—महाराज, आज रानी भी एक बलि देने वाली हैं और वह बलि मन्दिर की चौखट पर पहुँच चुकी है।

राजा—उसे वापिस कर दो !

(राजा बाहर चला जाता है)

मंत्री—यह क्या हो रहा है ?

नक्षत्रराय—क्या हम बौद्धों की नाईं पशुओं पर भी दया करने लगे हैं, कितनी बेकार-सी बात है ?

(सब बाहर चले जाते हैं)

रघुपति प्रवेश करता है, उसके साथ जैंसिह उनके पैर धोने के लिये पानी लिये हुए है।

जैंसिह—बापू !

रघुपति—चले जाओ !

जैंसिह—यह पानी लीजिये !

रघुपति—इसकी आवश्यकता नहीं है।

जैंसिह—आपके वस्त्र ?

रघुपति—उन्हें भी ले जाओ।

जैंसिह—क्या मैंने आपको रुष्ट कर दिया है ?

रघुपति—मुझे अकेला छोड़ दो, अपराधों की परछाइयाँ सन्नाटे में डूब चुकी हैं, राजा की गद्दी मंदिर के सिंहासन से ऊँची उठ गई है। ऐ देवता ! क्या तुम राजा के कर्मचारी की तरह राजा की आज्ञा मान लोगे ? राक्षस और मनुष्य मिलकर राजधानी को नष्ट करने पर तुले हुए हैं ! ऐ देवता ! क्या तुम नामोसी से बचने के लिये चुप रहे आओगे ? ब्राह्मण यहाँ मौजूद हैं, यदि देवता कुछ नहीं कर सकते तो ब्राह्मणों को कुछ-न-कुछ करना पड़ेगा। मेरे पुत्र ! मेरे वक्ष में भूचाल आ गया है !

जैंसिह—पिताजी बात क्या है ?

रघुपति—मैं कुछ नहीं कह सकता, माता देवी से ही पूछो, उसके कानून को तोड़ा जा रहा है !

जैसिंह—कानून किसने तोड़ा महाराज ?

रघुपति — राजागोविन्द ने !

जैसिंह—राजागोविन्द ने ? कालीदेवी का कानून तोड़ दिया ?

रघुपति—हूँ ! उसने तुम्हारा और मेरा कानून तोड़ा है। तमाम पूज्य-ग्रन्थों का कानून तोड़ा है ! सारे विश्व की भौतिक देवी-कालीमाता का कानून तोड़ा है। साधारण-सी गद्दी पर बैठकर राजा ने कानून तोड़ दिया है !

जैसिंह—राजागोविन्द ने ?

रघुपति—हाँ-हाँ, तुम्हारे राजागोविन्द ने ! तुम्हारे प्यारे राजा ने ! नमक-हराम, मैंने अपना सारा प्रेम देकर तुम्हें पाला-पोसा पर फिर भी तुम्हें राजागोविन्द मुझ से अधिक प्यारा है ?

जैसिंह—बालक अपने पिता की गोद में बैठकर चन्द्रमा की ओर हाथ फैलाता है, आप मेरे पिता हैं, और राजागोविन्द मेरा चन्द्रमा है। मैंने लोगों से सुना है कि राजा ने बलि देने के लिये मना कर दिया है; यह बात ठीक है। उनकी यह बात मान तो नहीं सकते ?

रघुपति—जो नहीं मानेगा, उसे देश से निर्वासित कर दिया जायेगा !

जैसिंह—तो यह कौन-सी बड़ी बात है, जिस देश में माता की पूजा न हो सके वहाँ से निर्वासित हो जाना ही अच्छा है !

रघुपति—नहीं, नहीं जब तक मैं जीवित हूँ, ऐसा कदापि नहीं हो सकता। मन्दिर की पूजा वैसे ही होती रहेगी, जैसे हुआ करती थी।

(सब बाहर चले जाते हैं)

ज्ञानवती अपने कर्मचारी के साथ प्रवेश करती हैं।

ज्ञानवती—यह तुम क्या कह रहे हो ? रानी की बलि को मन्दिर के दरवाजे से बाहर कर दिया गया ! क्या इस पृथ्वी पर किसी आदमी में इतनी हिम्मत है ? उस आदमी का नाम बतलाओ ?

कर्मचारी—रानी ! मैं नाम नहीं ले सकता !

ज्ञानवती—नाम नहीं ले सकते, जब मैं तुम्हें आज्ञा देती हूँ तो फिर नाम क्यों नहीं ले सकते ? भला तुम्हें मेरे होते डर किस बात का है ?

कर्मचारी—क्षमा कीजिये !

ज्ञानवती—अभी कल संध्या की बात है कि दरवारी गवैयों ने मेरे कसीदे गाये, ब्राह्मणों ने मुझे आशीर्वाद दिया, कर्मचारियों ने मेरी आज्ञा मानी, पर आज हो क्या गया है, देवी मेरी पूजा स्वीकार क्यों नहीं करती ? रानी अपने अधिकार खो चुकी है, क्या मेरा देश स्वप्नों का संसार तो नहीं है ! जाओ, पुजारी से मेरा प्रणाम कहो ! और कहो कि मुझ से तुरन्त मिल लें !

(कर्मचारी बाहर जाता है)

राजा प्रवेश करता है

ज्ञानवती—महाराज क्या आपने सुना है कि कालीमाता के मंदिर से मेरी बलि सामिग्री वापिस कर दी गई ?

राजा—मैं जानता हूँ।

ज्ञानवती—आप जानते हैं फिर भी आप चुप रह गये।

राजा—मैं तुमसे प्रार्थना करने आया हूँ कि अपराधी का अपराध क्षमा कर दो रानी !

ज्ञानवती—मैं मानती हूँ कि आप बहुत बड़े दयावान हैं। पर यह दया नहीं कमजोरी है। यदि आपकी दया किसी कार्य में आड़े आती है तो दंड देने के लिये मुझे अधिकार सौंप दीजिये। केवल यह बता दीजिये कि वह है कौन ?

राजा—मेरी रानी वह मैं ही हूँ। यह मेरा ही अपराध है कि मैंने तुमको इतना कष्ट पहुँचाया।

ज्ञानवती—मैं समझ नहीं सकी ?

राजा—आज से मैंने आज्ञा दी है कि देवताओं के मंदिरों में रक्त की एक बूंद न बहाई जाय।

ज्ञानवती—पर यह आज्ञा है किसकी ?

राजा—माता की !

ज्ञानवती—भला किसने सुनी ?

राजा—मैंने।

ज्ञानवती—आपने ? मुझे हँसी आ रही है। सारे विश्व की माँ केवल आपके

दरवाजे पर प्रार्थना करने आये ।

राजा—प्रार्थना नहीं, अपना कष्ट लेकर !

ज्ञानवती—महाराज ! आपका राज्य मंदिर की दीवारों के बाहर से आरम्भ होता है । मन्दिर की दीवारों के अन्दर अपनी आज्ञा मत लागू कीजिये !

राजा—यह मेरी आज्ञा नहीं, माता की आज्ञा है !

ज्ञानवती—यदि आप निश्चय कर चुके हैं, तो कम-से-कम मेरे धर्म पर छापा मत मारिये, मुझे अपनी सामर्थ के अनुसार अपनी बलि चढ़ाने दीजिये ।

राजा—मैंने देवी से प्रण कर लिया है कि मन्दिर में अब कभी रक्त नहीं बहाया जायेगा, और अब मैं इसके विरुद्ध चल नहीं सकता ।

ज्ञानवती—मैंने भी देवी को बचन दिया है कि तीन सौ बकरी के बच्चों और एक सौ भैंसों की बलि दी जायगी, और मैं अपना बचन पूरा करूँगी । आप अब जा सकते हैं ।

राजा—जैसी तुम्हारी इच्छा ! पर मेरी आज्ञा अटल है ।

(राजा बाहर जाता है)

रघुपति प्रवेश करता है ।

ज्ञानवती—पुजारी, मेरी बलि को मन्दिर से वापिस भेज दिया गया था ?

रघुपति—आपकी बलि और एक गरीब की बलि में कोई अन्तर मैं नहीं देख पाता । पर कठिनाई यह है कि माता के अधिकार छीन लिये गये हैं और राजा का गर्व बहुत बड़ा राक्षस बन कर देवी के मार्ग को रोके हुए है । समस्त पुजारी क्रोध की दृष्टि से यह सब देख रहे हैं ।

ज्ञानवती—धर्म पिता ! इसका अन्तिम फल क्या होगा ?

रघुपति—इस विषय में केवल देवी ही जान सकती है । वही अपने स्वप्नों से संसार के महल बनाती है । यह बात कटुसत्य है कि जो भी राजगद्दी माता के सिंहासन पर अपनी परछाईं डालेगी वह पानी के बुलबुले की तरह नष्ट हो जायेगी ।

ज्ञानवती—धर्म पिता ! अब हम पर दया करो, हमें अधर्म से बचाओ !

रघुपति—अहा······हा···हा ! मैं तुम्हें बचाऊँ ? तुम्हें ? राजा की पत्नी को ? जो तनिक-सी राजगद्दी पर घमंड किये बैठा है । जो आकाश के सिंहासन

का ठट्ठा मारकर हास परिहास करता है। वह बलिदान की रीति तोड़ना चाहता है !

ज्ञानवती—(रोते हुए) हम पर दया करो महाराज ! मुझ पर दया करो !

रघुपति—ब्राह्मणों के अधिकार वापिस करो, जाओ शीघ्रता करो !

ज्ञानवती—मैं वापिस दिलाऊँगी ब्राह्मणों के अधिकार ! धर्म पिता ! जाओ जैसी तुम्हारी इच्छा हो पूजा करो ! तुम्हें कोई शक्ति नहीं रोक सकती !

रघुपति—तुम्हारी दया से मैं दब गया हूँ महारानी ! तुम्हारी एक दृष्टि से देवता बदनामी से बच गये और ब्राह्मणों को पूजा करने का अधिकार मिल गया। जाओ फलो-फूलो, देवता तुम्हारी रक्षा करेंगे !

(पुजारी बाहर जाता है।)

राजा प्रवेश करता है।

राजा—रानी, तुम्हें हुआ क्या ? जो क्रोध से तुम्हारा चेहरा तमतमाया हुआ है ?

ज्ञानवती—मैं आपसे कैसे बोलूँ ? आप स्वयं घर को नष्ट करने पर तुले हुये हैं।

राजा—स्त्री की मुस्कराहट समस्त बाधाओं को दूर कर देती है। उसका प्रेम भगवान का एक रूप है !

ज्ञानवती—जाओ मैं आपका मुंह नहीं देखना चाहती !

राजा—जैसी इच्छा ! पर जब तुम याद करोगी तभी आऊँगा !

ज्ञानवती—(राजा के चरणों पर लेटते हुए) क्या आप इतने पाषाण हृदय हैं कि एक स्त्री के गर्व को भी नहीं सह सकते। क्या आप नहीं जानते कि जब प्रेम में कोई चीज रुकावट पैदा करती है तो प्रेम क्रोध से विष उगला करता है।

राजा—तुम जानती हो, मुझे तुम पर सदैव भरोसा रहा है। और मैं यह भी जानता हूँ कि मेघ तो कुछ क्षणों के लिये आते हैं, सूर्य सदैव चमकता रहता है।

ज्ञानवती—हाँ बादल चले जायेंगे ! भगवान की माया अपने स्थान पर ही रहेगी और समस्त विश्व का सूर्य समस्त विश्व में ही चमकता रहेगा। मेरे राजा! आप अपनी आज्ञा वापिस ले लीजिये ताकि ब्राह्मण देवता की पूजा कर सकें, क्योंकि आप जानते हैं कि राजाज्ञा मन्दिर की दीवारों के बाहर ही होती है।

राजा—ब्राह्मणों को कोई अधिकार नहीं कि वे भलाइयों के कानून को तोड़ सकें ! क्या तुम समझती हो कि मनुष्यों का रक्त देवताओं की भेंट चढ़ाया जा सकता है ? राजा को कम-से-कम इतने अधिकार तो होने चाहियें कि वह नेकी और बदी के कानून को स्थिर रख सके।

ज्ञानवती—मैं आपके पाँवों पड़ती हूँ, मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि हजारों वर्षों से बना कानून आप नहीं तोड़ सकते ! जिस प्रकार वायु समस्त मनुष्यों का सम्मलित धन है, उसी प्रकार आपकी रानी आपके पैरों में लोट रही है। आपके लिये, आपकी जनता के लिये मैं विनती करती हूँ कि मेरी बात मान लो। आप कितने पाषाण हृदय हैं ? क्या आप अपनी रानी के बँधे हुए हाथ भी नहीं देख सकते। क्या प्रेमके सारे कर्तव्य भूल गये······तो फिर······जाओ······जाओ! मेरे पास से चले जाओ।

(राजा जाता है।)

रघुपति, जैसिंह, सेनापतिराय प्रवेश करते हैं।

रघुपति—सेनापति, काली माँ से तुम्हारा प्रेम तो प्रसिद्ध है ?

सेनापतिराय—मेरी सन्तान इस पर गर्व करती है !

रघुपति—तो मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि अपनी समस्त फौजें एकत्रित करो, और माता के दुश्मनों को मिट्टी में मिला दो।

राय—धर्म पिता ! दुश्मन कौन है ?

रघुपति—राजा गोविन्द !

राय—हमारा राजा ?

रघुपति—हाँ, अपनी सारी शक्तियाँ एकत्रित करके उसे मिट्टी में मिला दो।

राय—यह सम्मति तो बहुत बुरी है, बापू ! क्या तुम मेरी परीक्षा ले रहे हो ?

रघुपति—हाँ, तुम्हारी परीक्षा ले रहा हूँ। मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुम किसके सेवक हो ? टालमटोल छोड़ दो ! याद रखो, तुम्हें देवी अपनी ओर बुला रही है और जब माता बुलाती है तो धरती के सारे सम्बन्ध टूट जाते हैं।

राय—मैं निश्चय कर चुका हूँ, मैं अपने उसी स्थान पर खड़ा हूँ, जहाँ देवी ने मुझे खड़ा किया है।

रघुपति—तुम वीर हो !

राय—मैं माता के छोटे से सेवकों में से हूँ, वह हमारे हृदयों की रखवाली करती है, पर वह यह भी जानती है कि मैं विद्रोही बन जाऊँगा ! आज यदि राजा को मिट्टी में मिला दिया गया तो निश्चय ही कल देवी को मिट्टी में मिलना होगा !

रघुपति—वह राजा जो देवी से विद्रोही बन जाय तुम्हारा राजा नहीं हो सकता !

राय—धर्म पिता मुझे इन झमेलों में मत फँसाओ, मैं तो केवल एक मार्ग जानता हूँ, जो सच्चाई और धर्म का सीधा मार्ग है। माता का पुजारी इस प्रतिष्ठा के कार्य से इधर-उधर नहीं जा सकता।

(बाहर चला जाता है)

जैंसिह—आह ! हमें अपने धर्म पर पक्का रहना चाहिये। हमें सिपाहियों की सहायता की आवश्यकता नहीं, हम में स्वयं शक्ति वर्तमान है ! यह माता का कार्य है, मन्दिर के दरवाजे खोल दो। ढोल पर डंका की चोट लगाओ। आओ···आओ···नागरिको आओ···अपनी माता की पूजा करो।

नागरिक आते हैं

पहला नागरिक—आओ···आओ···हमें पुकारा गया है।

सब के सब—माता की जय !

वे गाते और नाचते हैं।

जैंसिह—क्या तुम नहीं देख रहे हो कि बलि के लिये पशु मन्दिर की ओर आ रहे हैं ?

(सबके-सब चिल्लाते हैं–'माता की जय' 'रानी की जय'।)

रघुपति—जैंसिह ? बलि के लिये, तुरत तैयारी करो

जैंसिह—प्रत्येक सामिग्री ठीक है पिता।

रघुपति—राजकुमार को तुरत बुलावा भेजो !

(जैंसिह बाहर जाता है, लोग नाच रहे हैं)

राजा—शान्त ! रघुपति क्या तुम मेरी आज्ञा तोड़ रहे हो ?

रघुपति—हाँ !

राजा—तुम्हें निर्वासित कर दिया जायेगा ?

रघुपति—मेरा देश तो वह है, जहाँ राजाओं के मुकुट मिट्टी में पड़े रहते हैं। नागरिको ! लाओ—'बलि कहाँ है !'

राजा—शान्त ! (कर्मचारियों से) सेनापति से कहो कि वह तुरत आयें। मुझे लज्जा आती है कि मुझे गर्मी से काम लेना पड़ेगा। अस्त्र-शस्त्र तो मानव की दुर्बलताएँ हैं।

रघुपति— ऐ विषैले मानव ! क्या तुम समझते हो कि ब्राह्मणों के क्रोध की अग्नि ठण्डी हो गई है। याद रखो, मेरे हृदय से अब भी अग्नि की चिनगारियाँ निकल रही हैं, जिससे तुम्हारा सारा राज्य और मुकुट भस्म हो जायेगा। और यदि ऐसा न हुआ तो मैं समस्त पवित्र धर्म-ग्रन्थों को अग्नि में फेंक दूंगा।

सेनापति राय अपने सहायक चांदपाल के साथ प्रवेश करता है।

राजा—अपनी फौज सहित यहीं ठहरो, और यह देखो कि कोई मनुष्य रक्त की भेंट देवी को न चढ़ा सके।

राय—महाराज, मुझे क्षमा कीजिये ! ईश्वर के मंदिर में राजा का सेवक बेबस है।

राजा—सेनापति, मेरी आज्ञा में तर्क निकालना तुम्हारा कार्य नहीं, तुम्हारा कार्य केवल मेरी आज्ञा मानना है, उसके अच्छे बुरे कर्म मेरे ऊपर छोड़ दो।

राय—मैं आपका सेवक हूँ, पर मनुष्य भी तो हूँ ! मेरा कर्तव्य और धर्म भी तो है। राजा के सिवाय मेरा भगवान भी तो है !

राजा—तब अपनी तलवार चांदपाल को दे दो, वह मन्दिर को लाल रक्त से रंगने से बचायेगा।

राय—अपनी तलवार चांदपाल को क्यों दूँ ? यह तलवार मेरे बाप दादा को आपके पुरखों ने दी थी, यदि आप वापिस लेना चाहते हैं तो आपको दूँगा। ऐ मेरे पुरखों की आत्माओ ! तुम गवाह रहना कि जिस तलवार को तुमने अपनी वीरताओं के कारण वक्ष से लगाये रखा था, आज मैं उसे राजा को

वापिस सौंप रहा हूँ।

(बाहर निकल जाता है)

रघुपति—ब्राह्मण के श्राप ने अपना कार्य आरम्भ कर दिया।

जैसिंह प्रवेश होता है।

जैसिंह—महाराज ! हमारी प्रार्थनाओं को सुन लीजिए ! ईश्वर के लिये हमारा मार्ग मत रोकिये। मनुष्य देवी का मार्ग नहीं रोका करते !

रघुपति—जैसिंह ! लज्जा करो ! उठो ! मुझ से क्षमा मांगो, मैं तुम्हारा स्वामी हूँ। तुम्हारा स्थान मेरे चरणों में है। क्या ईश्वर की पूजा के लिये तुम राजा से आज्ञा ले रहे हो ! हम पूजा करेंगे ! बलि देंगे ! हम प्रतीक्षा कर रहे हैं कि राजा का गर्व किस प्रकार मिट्टी में मिलेगा ! आओ मेरे साथ !

(सब बाहर चले जाते हैं)

अप्रना प्रवेश करती है।

अप्रना—जैसिंह कहाँ हैं ? वह यहाँ नहीं ? केवल आप…तुम…एक देवी… पत्थर की मूर्ति…जिसे कोई वस्तु अपने स्थान से नहीं हिला सकती…तुमने हमारा सर्वस्व लूट लिया, पर जिह्वा से एक शब्द भी नहीं निकला। हम प्रेम के भूखे भिखारियों का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। चिता की तरह हमारी सारी आशायें तुम्हारे वक्ष में जलती चली जा रही हैं।

क्या तुम नहीं जानतीं कि प्रार्थना भी कोई चीज है ? जैसिंह तुम इस देवी से क्या लाभ प्राप्त कर सके हो ? वह तुम से कह ही क्या सकती है ? ऐ मेरे प्यार…!

रघुपति प्रवेश होता है।

रघुपति—तुम कौन ?

अप्रना—मैं भिखारिन हूँ ! जैसिंह कहाँ है ?

रघुपति—यहाँ से चली जाओ ! तुम यहाँ जैसिंह का हृदय चुराने आया करती हो ! तुम उसका हृदय देवी से छीनकर अपनी मुट्ठी में करना चाहती हो।

अप्रना—क्या देवी मुझसे डरती है ?

(वह बाहर चली जाती है)

जैसिंह और राजकुमार नक्षत्रराय प्रवेश करते हैं।

नक्षत्रराय—आपने मुझे क्यों बुलाया ?

रघुपति—कल रात स्वप्न में देवी ने मुझे बताया कि एक सप्ताह के भीतर ही तुम राजा बनोगे।

नक्षत्रराय—अ हा हा हा ! यह विचित्र समाचार है !

रघुपति—हाँ ! तुम राजा बनोगे !

नक्षत्रराय—मैं कैसे विश्वास करूँ ?

रघुपति—तो तुम्हें मुझपर विश्वास नहीं है ?

नक्षत्रराय—प्रश्न विश्वास का नहीं है, पर ऐसा हो कदापि नहीं सकता !

रघुपति—नहीं, ऐसा ही होगा !

नक्षत्रराय—भला, वह क्यों ?

रघुपति—राजा बनने से पूर्व तुम्हें वह रक्त देवी के चरणों में बलि देना होगा !

नक्षत्रराय—पर मैं वह रक्त प्राप्त कैसे करूँ ?

रघुपति—राजा गोविन्द तुम्हारे सामने हैं•••जैसिंह ! तुम चुप रहो•••! हाँ तुम समझ गये न ? राजा का वध कर दो, और उसका गरम-गरम रक्त देवी की भेंट चढ़ा दो। जैसिंह तुम यहाँ से चले जाओ••••••अगर तुम शान्त नहीं बैठ सकते तो जाओ !

नक्षत्रराय—पर वह मेरा भाई है, मैं उससे प्रेम करता हूँ।

रघुपति—पर तुम्हारे प्रेम का बलिदान प्रेम से अमूल्य है।

नक्षत्रराय—धर्मपिता ! मुझे अपने इसी जीवन में शांति है ! मैं राजपाट का भूखा नहीं हूँ।

रघुपति—अब तुम बचकर नहीं जा सकते ! यह देवी की आज्ञा है, वह राजा के रक्त की प्यासी है ! वह राजमहल का रक्त चाहती है ! यदि तुम अपने भाई को जीवित रखना चाहते हो तो फिर अपना रक्त माँ के चरणों को दो।

नक्षत्रराय—धर्म पिता ! दया करो मुझ पर।

रघुपति—जब तक तुम देवी की आज्ञा का पालन नहीं करोगे, इस या उस

जीवन में तुमको शांति नहीं मिल सकती !

नक्षत्रराय—तो आप चाहते क्या हैं ? ऐसा मैं कैसे कर सकता हूँ ?

रघुपति—तुम चुपचाप रहो, अब जाओ, जब समय आयेगा मैं तुम्हें बुलवा लूँगा ।

(नक्षत्रराय बाहर जाता है)

जैसिंह—यह मैं क्या सुन रहा हूँ, यह मैंने क्या सुना ! हे माता ! क्या तेरी यही आज्ञा है ! भाई अपने भाई के प्राण ले । स्वामी ! तुमने क्यों कह दिया कि यह माता की आज्ञा है !

रघुपति—देवी की सेवा के लिए, इसके सिवाय और कर ही क्या सकता था मैं ?

जैसिंह—माँ ! क्या तुम्हारे पास और कोई ढंग नहीं है ? क्या तुम अपने हाथ से और कुछ नहीं कर सकतीं ? क्या चोरों की तरह रात के अन्धकार में आप भी अपनी सेवा करवाती हैं ? कितना भारी पाप है ! उफ़ !

रघुपति—तुम पाप के बारे में क्या जानते हो ?

जैसिंह—वही जो आपने मुझे सिखाया है !

रघुपति—तो फिर मेरे पास आओ ! मैं एक बार फिर तुम्हें पाठ पढ़ाऊँ । वास्तव में पाप कोई चीज नहीं है । नर-संहार तो नर-संहार है, यह न कोई पाप है और न और कुछ । क्या तुम नहीं जानते कि इस मिट्टी में लाखों शरीर मिले हुए हैं ? समय के पृष्ठ पलटो तो तुम्हें भी ज्ञात होगा कि मानव ने सदैव अपना इतिहास रक्त से लिखा है ! मरना जीवन का ही एक भाग है । जंगल में, मनुष्यों की आबादी में, जंगल में पक्षियों के घोसलों में, कीड़े-मकोड़ों के बिलों में, समुद्र में, आकाश में एक दूसरे को मार रहे हैं, किसी को भी बिना कारण के मार दिया जाता है । और इस दुनियाँ में हो ही क्या रहा है सिवाय एक दूसरे के प्राण-हरण के ! और देखते हो यह काली देवी ! हजारों वर्षों से यह अपनी प्यासी जिह्वा निकाले और रक्त का प्याला लिये खड़ी है । पता नहीं कितने मनुष्यों का रक्त इस पर बहा है ।

जैसिंह—गुरुजी बस-बस ! क्या प्रेम झूठ है ? क्या दया केवल दिखावा

मात्र है ? क्या इस जगत में केवल मात्र एक ही बात सच्ची है और वह है तबाही और बरबादी की इच्छा। मेरे धर्म पिता ! तुम मेरे हृदय से खेल रहे हो, क्या तुम नहीं देखते कि देवी मेरी ओर देखकर ताने से हँस रही है ! ऐ मेरी खूनी माँ ! क्या तुझे मेरा खून स्वीकार है ? क्या मैं ये छुरा अपने वक्ष में घुसेड़ लूं, और सदैव के लिए तेरा बच्चा बन जाऊँ ? क्या इन नसों में जो खून बह रहा है वह तुम्हें बहुत प्यारा है। माँ ! मेरी खूनी माँ ! धर्म पिता ! तुमने मुझे बुलाया। तुम चाहते हो कि मैं अपने जीवन की सारी शृंखलाएँ तोड़कर स्वयं को माता के अर्पण कर दूँ, यह एक सच्चा बलिदान होगा ! पर राजा का रक्त······माता ! तू हमारे प्रेम की भूखी है ! और तुम इस पर रक्त की प्यास का अपराध लगा रहे हो।

रघुपति—तो फिर मन्दिर में बलि देनी बन्द कर दी जाय ?

जैसिंह—हाँ बन्द कर दी जाय ! पर तुम अच्छे-बुरे की पहचान जानते हो? हृदय का कानून पुस्तक के कानून से अलग होता है। आँखें अपने प्रकाश से कुछ नहीं देख पातीं, उन्हें बाहर के प्रकाश की आवश्यकता होती है गुरुदेव ! मुझे क्षमा करो, मैं मूर्ख हूँ। मुझे यह बता दो कि क्या देवी को राजा के रक्त की भी आवश्यकता है ?

रघुपति—तुम्हें देखकर मुझे कितना दुख होता है ! बेटा ! क्या मुझ पर तुम्हें विश्वास नहीं आ रहा ?

जैसिंह—मेरा जगत तो आपके विश्वास पर ही स्थिर है ? यदि माता को राजा के रक्तकी आवश्यकता है, तो वह रक्त मैं लाऊँगा। मैं यह कदापि नहीं चाहता कि भाई, भाई का खून बहाए !

रघुपति—ईश्वर के न्याय के समक्ष हमें सर झुकाना पड़ेगा।

जैसिंह—धर्म पिता ! यह काम मुझे मिलना चाहिये, शुभ-काम मैं करना चाहता हूँ !

रघुपति—बेटा ! मैंने तुम्हें बचपन से पाला है, अब मैं तुम्हें अपने हाथ से नहीं खोना चाहता ! अब तुम मेरे हृदय के बहुत पास रहते हो।

जैसिंह—मैं नहीं चाहता कि तुम मेरे शुद्ध प्रेम को पाप की गन्दगी से भ्रष्ट

करो। राजकुमार नक्षत्रराय को उसके बचन से मुक्ति दे दो !

रघुपति—मैं कल प्रातः सोचकर जवाब दूँगा।

(बाहर निकल जाता है।)

जैसिंह—प्रयोग आखिर प्रयोग है, चाहे वह कितना ही बुरा क्यों न हो। मेरे गुरु ! तुमने सच कहा कि सर काटना कोई पाप नहीं, भाई का रक्त वहाना भी कोई पाप नहीं, राजा की गरदन पर छुरी चलाना भी कोई पाप नहीं ! कहाँ जाते हो मेरे भैया, हस्तीपुर के मेले पर ! वहाँ लड़कियाँ नाच करेंगी ! अहा ! कितना अच्छा है यह जगत ! और नाचने वाली लड़कियों की पिंडलियाँ कितनी अच्छी होती हैं गोरी !! यह जगत भी क्या स्वप्न है ! यह लोग नाचते-गाते उत्सव पर जा रहे हैं, मुझे इनके साथ ही जाना होगा।

रघुपति प्रवेश करता है

रघुपति—जैसिंह !

जैसिंह—कौन हैं आप ? मैंने आपको पहिचाना नहीं, मुझे इस भीड़ के साथ जाने दीजिये, मुझे रोकिए मत ! आप अपने मार्ग पर चले जाइये।

रघुपति—जैसिंह !

जैसिंह—मेरे सामने एक सीधा मार्ग है। मेरे हाथ में चम्बल होगा और मेरे साथ होगी भिखारिन की छोकरी ! मैं आगे को ही बढ़ता जाऊँगा, कौन कहता है कि इस जगत का मार्ग कठिन है ! जहाँ मार्ग समाप्त होता है वहाँ कोई कानून नहीं हैं। वहाँ समस्त त्रुटियाँ क्षमाकर दी जाती हैं, जहाँ सुख और शांति के सिवाय और कुछ भी नहीं हैं। क्या आवश्यकता है धर्म ग्रन्थों की ? गुरु की और गुरु की शिक्षा की। गुरुजी, मैं बक रहा हूँ, पर अबतक मैं केवल स्वप्न देखता रहा था। वह रहा आपका मन्दिर जो उतना ही अत्याचारी है जितना कि सच ……क्या आज्ञा दी थी आपने ? मैं उसे भूला नहीं हूँ। (अपनी छुरी बाहर निकालता है) मैं आपकी बात के एक-एक अक्षर को इस छुरी की धार की तरह अपने मस्तिष्क में पैना रहा हूँ। क्या कुछ और आज्ञा है ?

रघुपति—मेरे बेटे ! मैं तुम्हें किस प्रकार बताऊँ कि मैं तुमसे कितना प्रेम करता हूँ।

जैसिंह—गुरुदेव ! मुझसे प्रेमकी बात मत कीजिये, मुझे अपना कर्त्तव्य पूर्ण करने दो, प्रेम तो हरीभरी दूब और पेड़ों की तरह है, यह तो जीवन का एक गीत है और फिर ये तो जगत के दिखाने के लिए होता है। इसके नीचे कर्तव्य है······ठोस कर्तव्य बिल्कुल पहाड़ की तरह अचल !

(दोनों बाहर चले जाते हैं।)

राजा और चाँदपाल प्रवेश करते हैं।

चाँदपाल—महाराज तनिक सचेत रहिये !

राजा—क्यों ? क्या बात है ?

चाँदपाल—मैंने सुना है कि आपके प्राण लेने का षड्यन्त्र हो रहा है।

राजा—भला मेरे प्राणों की किसे आवश्यकता आ पड़ी है ?

चाँदपाल—मुझे डर प्रतीत होता है कि कहीं मेरे शब्द ही खड्ग का काम न करें, सुना है नक्षत्रराय !

राजा—क्या कहा ! नक्षत्रराय ?

चाँदपाल—उसने रघुपति को बचन दिया है कि वह आपका रक्त लेकर देवी के चरणों में जायेगा।

राज—देवी के चरणों में ? तब मैं उसे कोई दोष नहीं दे सकता, क्योंकि जब मामला देवी और देवताओं का होता है तो मनुष्य अपनी मनुष्यता से बहुत दूर निकल जाता है। तुम जाओ, मेरी चिन्ता मत करो। मुझे अकेला ही छोड़ दो !

(चाँदपाल बाहर जाता है।)

राजा—देवी, मेरे यह पुष्प स्वीकार करो, जनता को सुख और शांति का जीवन व्यतीत करने दो माता ! जो लोग दुर्बल हैं, वह लाचार हैं, और जो लोग बलवान हैं, वह अत्याचारी हैं ! लालच में दया नहीं होती। मूर्खता (अविद्या) अंधी होती है, और जब दुर्बल को पैरों के नीचे कुचला जाता है तो उस समय घमंड कुछ नहीं देखता। अपनी तलवार ऊँची न करो और अपने होठों से रक्त न पियो ! यह क्या है ? तुम भाई को भाई से लड़ा रही हो, पति को पत्नी से लड़ा रही हो। यदि तुम्हारी यह इच्छा है कि मैं उस व्यक्ति के द्वारा मारा

जाऊँ जिससे मुझे अगाध प्रेम है तो अपनी इच्छा पूर्ण करो; क्योंकि पाप आखिर एक दिन अपना भयानक चेहरा तो दिखायेगा ही। जब राजा का रक्त उसके भाई के हाथों बहाया जायेगा तो रक्त की प्रार्थना राक्षस के रूप में प्रकट होगी और फिर तू देवी के रूप में, तो मैं सिर झुकाता हूँ तू अपनी इच्छा पूर्ण कर !

जैसिंह भागा हुआ अन्दर प्रवेश होता है।

जैसिंह—देवी मुझे बताओ कि क्या वास्तव में तुम्हें राजा के रक्त की आवश्यकता है, यदि है तो मुझे आज्ञा दो ताकि मैं वही रक्त लाकर तुम्हें दूँ !

एक स्वर—हाँ, मुझे राजा के रक्त की आवश्यकता है !

जैसिंह—राजा, तुम्हारा समय पूर्ण हो गया, अब अपनी अन्तिम प्रार्थना पूर्ण करो।

राजा—तुम क्या कह रहे हो जैसिंह !

जैसिंह—क्या आपने देवी के शब्द नहीं सुने !

राजा—यह आवाज देवी की नहीं थी, यह तो जानी पहचानी रघुपति की आवाज थी।

जैसिंह—रघुपति की आवाज ! नहीं-नहीं, खैर कुछ भी हो; है तो एक ही बात। आवाज चाहे देवी की ओर से आई हो चाहे गुरु की ओर से !

(छुरा निकालकर एक ओर फेंकता है)

माता ! अपने बच्चों की पुकार सुनो ! तुम्हारी पूजा के लिए केवल सुन्दर पुष्प होने चाहिए थे, फिर यह रक्त क्यों ? यह फूल भी तो रक्त की तरह लाल लाल होते हैं और धरती माँ के वक्ष को फाड़कर बाहर निकलते हैं। यही स्वीकार करो, तुम्हें ये स्वीकार करने ही होंगे। मैं तुम्हारे क्रोध का मुकाबिला करूँगा। तुम्हें रक्त कभी नहीं दिया जायगा। भले ही तुम्हारी आँखें क्रोध से लाल हो जायँ, तुम्हारी तलवार ऊँची हो जाय, तुम्हारा क्रोध नष्ट करने की सामग्री पैदा कर दे, मैं तुमसे नहीं डरता। राजा ! यह मन्दिर देवी के लिए छोड़ दो, और अपनी जनता में जाओ !

(राजा बाहर चला जाता है)

खेद ! पश्चात्ताप ! एक क्षण में मैंने सब कुछ खो दिया, गुरु और देवी

दोनों ही ।

रघुपति प्रवेश करता है

रघुपति—मैंने सब-कुछ सुन लिया है, विश्वासघाती ! तुमने अपने गुरु से भी छल किया ।

जैसिंह—गुरु जी ! आप मुझे दण्ड दीजिये !

रघुपति—तुम क्या दण्ड चाहते हो ?

जैसिंह—मृत्यु !

रघुपति—नहीं, यह कुछ नहीं ! देवी के चरणों को छूकर शपथ उठाओ !

जैसिंह—मैं इसके चरण छूता हूँ ।

रघुपति—कहो आधीरात के समय में राजा का रक्त लाकर देवी के चरणों में भेंट करूँगा ।

जैसिंह—मैं आधी रात से पूर्व राजा का रक्त लाकर देवी के चरणों में भेंट करूँगा ।

(दोनों बाहर चले जाते हैं)

ज्ञानवती प्रवेश करती है ।

ज्ञानवती—मैं असफल रही, मेरा विचार था कि यदि मैं कुछ दिन कड़ाई का व्यवहार करती रहूँगी तो वह झुक जायेंगे । मैं उनसे दूर भी रही, क्रोध भी दिखाया, पर मेरी सारी चेष्टायें व्यर्थ गईं । स्त्री का क्रोध हीरे के प्रकाश की तरह होता है, वह केवल प्रकाश देता है, भस्म नहीं कर सकता । काश ! यह बिजली की तरह राजा के महल पर गिरता और राजा उससे चौंककर स्वप्न से जाग उठता, उसका गर्व मिट्टी में मिल जाता ।

दरोदा प्रवेश करता है ।

ज्ञानवती—कहाँ जा रहे हो ?

दरोदा—मुझे राजा ने बुलाया है !

(बाहर चला जाता है)

ज्ञानवती—यह राजा का प्रिय पुत्र जा रहा है, इसने राजा का प्रेम मुझसे छीन लिया है, मेरे कोई पुत्र नहीं है, इसीलिये राजा के हृदय में इसके लिए प्रेम

पैदा हो गया। काली माँ ! तुम्हारी प्रजा बहुत है, तुम बड़े-बड़े काम कर सकती हो, क्या तुम मेरी गोद नहीं भर सकतीं ? तुम जो कुछ मांगोगी मैं दूँगी।

नक्षत्रराय का प्रवेश

(राजकुमार नक्षत्रराय) तुम क्यों जा रहे हो, मैं केवल एक स्त्री हूँ, अवला ! मेरे पास कोई अस्त्र नहीं है। मुझसे क्यों डरते हो ?

नक्षत्रराय—मुझे मत बुलाओ।

ज्ञानवती—क्यों क्या हुआ ?

नक्षत्रराय—मैं राजा बनना नहीं चाहता।

ज्ञानवती—पर तुम इतने घबराये हुए क्यों हो ?

नक्षत्रराय—राजा की उम्र लम्बी रहे, और मुझे मृत्यु आ जाय।

ज्ञानवती—तुम जब चाहो मृत्यु मिल सकती है, मैंने इसके विरुद्ध तो कोई बात कही नहीं ?

नक्षत्रराय—तो मुझे बताइये आप क्या चाहती हैं ?

ज्ञानवती—जिस चोर ने मुकुट चुराया है, वह तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है, उसको मार्ग से हटा दो। समझे !

नक्षत्रराय—समझा, पर चोर कौन है ?

ज्ञानवती—दरोदा ! उस लड़के को क्या तुम नहीं जानते ? क्या तुम नहीं देखते कि वह राजा की दृष्टि में कितना चढ़ गया है ? एक दिन उसका हाथ मुकुट तक पहुँच जायेगा !

नक्षत्रराय—हाँ ! मेरे मन में भी कई बार ऐसा विचार पैदा हुआ, मैंने देखा है कि मेरे भाई खेल कूद में बच्चे के सिर पर मुकुट रख दिया करते हैं।

ज्ञानवती—मुकुट से खेलना भयंकर खेल है, यदि तुम खेलने वाले को मार्ग से नहीं हटाओगे तो अपनी समाप्ति समझो।

नक्षत्रराय—मुझे भी वह पसन्द नहीं हैं।

ज्ञानवती—बस काली माँ की भेंट चढ़ा दो। क्या तुमने नहीं सुना कि माँ खून की प्यासी है ?

नक्षत्रराय—बहिन ! पर यह काम मेरा नहीं है !

ज्ञानवती—मूर्ख ! जब तक माता प्रसन्न न हो, तुम अपने को सुरक्षित नहीं समझ सकते ! उसे खून की आवश्यकता है ! यदि हो सके तो स्वयं की रक्षा करो !

नक्षत्रराय—पर माता को तो राजा के खून की आवश्यकता है।

ज्ञानवती—तुम से किसने कहा !

नक्षत्रराय—मुझे उस आदमी ने बताया, जिसको माता स्वप्न में दिखायी दिया करती है।

ज्ञानवती—नहीं, राजा के बदले इस लड़के के प्राण लिये जाने चाहियें, इसका रक्त तुम्हारे भाई के रक्त से अधिक मूल्यवान है। और राजा को बचाया भी इसी मूल्य पर जा सकता है।

नक्षत्रराय—अब समझ में आई बात !

ज्ञानवती—समय नष्ट मत करो, समय के साथ-साथ दौड़ो, अभी वह बहुत दूर नहीं गया होगा, पर याद रखना मेरे नाम से इसे बलि देना।

नक्षत्रराय—ऐसा ही होगा।

ज्ञानवती—रानी की भेंट को मन्दिर के दरवाजे से वापिस कर दिया गया था, काली माँ ! मुझे क्षमा करना।

(वह बाहर निकल जाते हैं।)

जयसिंह प्रवेश करता है।

जैसिंह—माँ, समस्त जगत की कोई भी वस्तु तेरे पंजे से नहीं बच सकती ! मेरी चीख पुकार का जबाव दो ! तुम्हारी आवाज धीमी होगी प्यास के कारण, पर क्या तुम यह भी नहीं कह सकतीं कि 'मैं यहाँ हूँ बेटा !'

नहीं वह कहीं भी नहीं है, वह कुछ भी नहीं हैं, क्या तू केवल छलना मात्र ही है ? जैसिंह पर तनिक तो दया करो और इसके लिये सचमुच की देवी बन जाओ। क्या तुम वास्तव में इतनी छली हो कि मेरा अटूट और अगाध प्रेम भी तुम में जीवन नहीं डाल सकता ? ऐ मूर्ख ! तुम किसके समक्ष अपने जीवन का प्याला उड़ेल रहे हो ! अरे पागल अब तो एक बूँद भी शेष नहीं रहा है। तमाम उल्ट दिया गया एक पत्थर के लिये, जो झूठी है, छलना मात्र है, पत्थर की तरह कड़ी है !

अपर्णा प्रवेश करती है।

तुमको कितनी ही बार मन्दिर से निकाला गया, लेकिन तुम फिर बार-बार आ जाती हो, क्योंकि तुम सच्चाई हो, और सच्चाई को निर्वासित नहीं किया जा सकता। हमने अपने मन्दिर में छल को गद्दी पर बिठा रखा है और उसकी पूजा करते हैं, पर फिर भी सचाई यह है कि यहाँ देवी कभी नहीं आई। अप्रना! तुम मुझे अकेला छोड़ दो! अरे तुम उदास क्यों हो? यहाँ आओ मेरे पास! क्या तुम से ऐसा कोई देवता छीन लिया गया है जो देवता था, पर अब नहीं। मुझे यह तो बताओ कि इस छोटे-से संसार में क्या हमें ईश्वर की आवश्यकता है? हमें देवताओं से निडर होकर पास-पास हो जाना चाहिये। वह तो हमारा रक्त चाहते हैं और इसीलिये वह आकाश की गद्दी छोड़ कर पृथ्वी पर उतरे हैं, क्यों कि उनके आकाश पर मनुष्य नहीं हैं जिनको वह कष्ट पहुँचा सकें। ऐ लड़की! याद रख कि देवी कुछ भी नहीं हैं!

अप्रना—तो छोड़ो इस मन्दिर को···मैं और तुम इकट्ठे रहेंगे!

जैंसिंह—मन्दिरको छोड़ूँ···? ठीक है मैं इसे छोड़ दूँगा···? खैर छोड़ो इन बातों को, मेरे हृदय की रानी! मेरे पास आओ, मेरे कान में कोई ऐसी बात कहो, जिससे जीवन का झरना झर उठे!

अप्रना—जब हृदय भरा हुआ हो तो फिर शब्द नहीं मिला करते!

जैंसिंह—तो अपना सिर मेरे वक्ष से लगा दो, दो अभीष्ट वस्तुऐं जीवन और मृत्यु एक दूसरे को शान्ति से छुऐं! पर मुझे आवश्यकता नहीं, मुझे तो जाना है!

अप्रना—जैंसिंह! कठोर मत बनो। क्या तुम नहीं जानते कि मैंने कितने कष्ट उठाये हैं।

जैंसिंह—क्या मैं कठोर हूँ? क्या तुम्हारी ओर से मुझे यही पुरस्कार मिलना था। क्या मैं इस पत्थर के टुकड़े की तरह कड़ा हूँ जिसे देवी कहा जाता है। अप्रना! यदि तुम देवी होतीं तो सम्भवतः जान पातीं कि मेरे वक्ष में कितनी आग भड़क रही है। लेकिन तुम मेरी देवी हो, तुम्हें बताऊँ कि मैंने तुम्हें कैसे पहिचाना?

अप्रना—कहते जाओ!

जैंसिंह—तुम प्रति क्षण मेरे पास अपनी भेंट लेकर आयीं, जैसे एक माँ

अपने बच्चे के पास आती है। ईश्वर एक ऐसी शक्ति है जो अपनी दुनियाँ में जीव-ही-जीव पैदा करता है।

अप्रना—जैसिंह ! आओ मन्दिर को छोड़ दें और साथ-साथ बाहर चलें।

जैसिंह—अप्रना ! मुझे बचाओ, मुझ पर दया करो, मुझे अकेला छोड़ दो ! मेरे जीवन में एक ही लक्ष्य था, तुम वह स्थान ग्रहण मत करो।

(भागकर बाहर चला जाता है।)

अप्रना—मैंने बारम्बार कष्ट उठाये, मैं दुर्बल हूँ, मेरा हृदय टूट गया है !

(बाहर जाती है।)

रघुपति और राजकुमार नक्षत्रराय प्रवेश करते हैं।

रघुपति—उस लड़के को तुमने कहाँ छुपा दिया है ?

नक्षत्रराय—वह उस कमरे में है, जहां पूजा के पात्र रखे हैं, और वह रोता रोता सो गया है, यदि वह दुबारा जाग गया तो फिर मैं अपना काम न कर सकूँगा।

रघुपति—जब जैसिंह मेरे पास आया था, तो उसकी आयु भी इतनी ही थी। मुझे स्मरण है कि वह किस प्रकार रोता-रोता देवी के चरणों में सो गया था। मन्दिर का दीप जल रहा था, और मध्यम प्रकाश उसके चेहरे पर पड़ रहा था। वह सन्ध्या भी बड़ी विद्रोही थी।

नक्षत्रराय—गुरु ! देर मत करो। मैं चाहता हूँ कि सोते समय ही इसका काम कर दूं। इसकी चीखें मेरे हृदय में छुरियों की तरह चुभ रही हैं।

रघुपति—यदि जागा तो मैं इसे फिर सुला दूँगा।

नक्षत्रराय—यदि आपने शीघ्रता न की तो राजा इधर ही आ निकलेगा, क्योंकि आज संन्ध्या को राज्य गद्दी और मुकुट इस लड़के को देने वाला है।

रघुपति—देवी पर विश्वास रखो। शिकार अब हमारे हाथ में है, और अब वह बचकर नहीं जा सकता।

नक्षत्रराय—पर इसकी देखभाल चाँदपाल कर रहा है !

रघुपति—वह माता से अधिक देखभाल नहीं कर सकता !

नक्षत्रराय—मेरा विचार है कि कोई आदमी यहाँ होकर निकला है।

रघुपति—यह तुम्हारा भ्रम है।

नक्षत्रराय—क्या अभी आपने चीख़ की आवाज नहीं सुनी ?

रघुपति—वह तुम्हारे हृदय की आवाज थी। डर को अपने मन से निकाल दो। राजकुमार ! आओ, साथ-साथ पवित्र सोमरस पीवें। जब तक कोई काम मस्तिष्क में रहे वह बड़ा दिखायी दिया करता है, और जब हो जाय तो साधारण-सा दिखलाई दिया करता है। मेघ बहुत बड़ा और काला होता है, पर वर्षा के समय इसके छोटे-छोटे टुकड़े बन जाया करते हैं। राजकुमार घबराओ नहीं, यह तो एक क्षण का कार्य होगा। बिल्कुल उसी प्रकार जिस प्रकार जलती मोमबत्ती का सारा जीवन एक ही फूँक में नष्ट हो जाता है। बिजली एक क्षण में गिरेगी, पर राजा के शरीर में सदैव के लिए प्रभाव छोड़ देगी। राजकुमार ! तुम चुप क्यों हो ?

नक्षत्रराय—मेरा विचार है कि हमें जल्दी न करनी चाहिये, कल रात तक प्रतीक्षा कीजिये !

रघुपति—आज की रात कल की रात की तरह है, बल्कि उससे भी सुन्दर !

नक्षत्रराय—पैरों की आहट क्या आपने सुनी है ?

रघुपति—मैंने तो कुछ भी नहीं सुना।

नक्षत्रराय—देखिये वह प्रकाश ?

रघुपति—लो राजा आ गया, तुमने बहुत देर लगा दी।

राजा दरबारियों सहित प्रवेश करता है।

राजा—इनको गिरफ्तार कर लो। (रघुपति से) क्या तुम्हें कुछ कहना है ?

रघुपति—कुछ नहीं।

राजा—अपना अपराध स्वीकार करते हो ?

रघुपति—अपराध ! हाँ मेरा अपराध अपनी दुर्बलता है, मैंने माता की भेंट चढ़ाने में देर की। दण्ड तो देवी की देन है आप तो केवल आज्ञा निभाने आये हैं।

राजा—राज्य कानून के अनुसार मेरे सिपाही तुम्हें निर्वासित करने जायेंगे, जहाँ तुम्हें आठ वर्ष व्यतीत करने होंगे।

रघुपति—राजा ! मैंने कभी किसी मनुष्य के आगे सिर नहीं झुकाया। मैं

मैं ब्राह्मण हूँ, मेरी जाति तुमसे भी बड़ी है, पर आज मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि तुम मुझे एक दिन का अवकाश दे दो।

राजा—स्वीकार है !

रघुपति—तुम राजाओं के राजा हो, तुम्हारा राज्य, तुम्हारी दया बड़ी विस्तृत है और मैं तो मिट्टी में मिले एक कीड़े की नाईं हूँ।

राजा—नक्षत्रराय ! अपने अपराध को स्वीकार करो !

नक्षत्रराय—हाँ, मैं अपराधी हूँ, राजा ! अब मुझमें हिम्मत नहीं कि मैं क्षमा मागूं !

राजा—राजकुमार ! मैं जानता हूँ कि तुम्हारा हृदय दया से भरा है, फिर भी मुझे बताओ कि इस ग़लत मार्ग पर चलने के लिए किसने तुम्हें बहकाया ?

नक्षत्रराय—राजन् ! मैं किसी और का नाम नहीं ले सकता। मेरा अपराध मेरा ही है, तुमने अपने मूर्ख भाई को कई बार क्षमा किया है, आज फिर एक बार वह तुम्हारे पैरों में पड़ता है।

राजा—नक्षत्रराय, मेरे पैर छोड़ दो। न्याय को कानून की लाचारी झुका नहीं सकती।

दरबारी—महाराज ! यह भाई हैं आप के, इन्हें क्षमा कर दो।

राजा—मुझे यह नहीं भूलना है कि मैं राजा हूँ, नक्षत्रराय को आठ वर्ष तक निर्वासित रहना ही होगा, और नदी के किनारे मैंने जो अपना प्रासाद बनाया है उसमें रहना होगा। भाई ! यह दण्ड केवल तुम्हारे लिए ही नहीं, बल्कि मेरे लिए भी है। हाँ, शारीरिक ढंग से मैं इसमें भाग नहीं ले रहा, पर तुम्हारी अनुपस्थिति मुझे आठ वर्ष तक बेचैन करती रहेगी। देवता तुम्हारी रक्षा करें।

(वह सब बाहर निकलते हैं।)

रघुपति और जैसिंह प्रवेश करते हैं।

रघुपति—मेरा दर्प मिट्टी में मिल गया, मैंने ब्राह्मणत्व के नाम पर कलंक का टीका लगा दिया बेटा ! अब मैं तुम्हारा गुरु नहीं रहा। कल तक मैं तुम पर शासन करता था, पर आज मैं तुमसे प्रार्थना कर रहा हूँ। मेरा प्रकाश लुप्त

हो गया है। वह प्रकाश जिससे मैं राजा का मुकाबला किया करता था। मिट्टी का दीपक तो बार-बार जलाया और बुझाया जा सकता है, पर नक्षत्र जब बुझ जाता है तो सदैव के लिए बुझ जाता है। जीवन की वास्तविकता ही क्या है? यह जीवन है ही क्या? देवता की साधारण-सी वस्तु है! और इस साधारण-सी वस्तु के लिए मैंने राजा के सामने घुटने टेक दिये। मैंने एक दिन का अवकाश माँग लिया। अब वह एक दिन नष्ट नहीं होना चाहिये। मेरा काला चेहरा अब राजा के रक्त से लाल होना ही चाहिये। बेटे! क्यों नहीं बोलते तुम! यह ठीक है कि मैं अब तुम्हारा गुरु नहीं हूँ, पर तुम्हारा पिता तो हूँ! तुम्हारे पिता से भी अधिक हूँ! एक अनाथ बच्चे का पिता! आह! मनुष्य उस समय पतित हो जाता है जब वह प्रेम की भीख माँगता है। बेटा! तुम अब भी चुप हो! तो क्या मुझे अपने घुटने तुम्हारे सामने भी टेकने होंगे! बेटा जब तुम पहले-पहल यहाँ आये थे, और तुम बच्चे थे तब मैं घुटने टेककर ही तुम्हें उठाया करता था।

जैसिंह—पिताजी दुखित मन को और दुखी मत कीजिए! यदि देवी को राजा के रक्त की आवश्यकता है तो मैं आज वह रक्त लाकर दूंगा! मुझे आज सारे ऋण चुका देने हैं। एक-एक पाई! मेरे लौटने की प्रतीक्षा करो पिताजी! मैं शीघ्र आऊंगा।

(बाहर भयंकर तूफान की आवाजें)

रघुपति—माँ आखिर जाग तो पड़ी। इसका क्रोध सारे शहर पर उतर रहा है, विश्व के सारे पेड़ टूटकर गिर गये हैं, तारे भी किसी क्षण में टूट जायेंगे। माता! तुमने अपने पुजारी को अब तक क्यों प्रतीक्षा में रखा। मैं किसी की आवाज सुन रहा हूँ।

अपर्णा प्रवेश होती है।

अपर्णा—जैसिंह कहाँ हैं?

रघुपति—भाग जा बदशकुन लड़की!

अपर्णा—(जाते-जाते) यदि जैसिंह वापिस न आया तो……?

रघुपति—नहीं, वह अपना बचन नहीं तोड़ेगा। काली माँ तुम्हारी जय हो! यदि वह मार्ग में ही किसी कारण रुक गया तो……? यदि उसे राजा के सिपा-

हियों ने पकड़ लिया तो······? माता तुम उसकी रक्षा करोगी ! तुम सब कुछ देख रही हो, तुम्हें कोई विजय नहीं कर सकता ! तुम्हारे नाम पर बट्टा नहीं लग सकता ! यदि तुम्हारे बच्चे अपना गर्व और अपना धर्म खो बैठें और विद्रोहियों के समक्ष अपना सिर झुका दें तो फिर तुम्हारा झण्डा कौन उठावेगा ! आह ! मैं उसके पैरों की आहट सुन रहा हूँ। क्या वह असफल रहा ? नहीं ऐसा नहीं हो सकता !

जैसिंह भागकर भीतर आता है ।

रघुपति—जैसिंह! कहाँ है वह रक्त ?

जैसिंह—वह मेरे पास है ! उसे मैं अपने हाथों से देवी की भेंट चढ़ाऊँगा ! माता क्या तू राजा का रक्त चाहती है ? जो तुम्हारे बच्चों को पाल रहा है ? मैं क्षत्री हूँ और···और मेरे रक्त का सम्बन्ध राजा के रक्त से है। मेरे पुरखा भी राज्य के मालिक थे। मेरी नसों में भी राजा का रक्त बह रहा है। तो फिर लो अपनी प्यास सदैव के लिए बुझा दो !

(छुरी अपने वक्ष में मारता है और गिर पड़ता है)

रघुपति—जैसिंह ! अत्याचारी ! तुमने यह क्या किया ? तुमने अपने पिता को मार डाला। जैसिंह ! मेरे पुत्र अपने पिता को क्षमा करना ! आओ मेरे हृदय के पास ! मेरे हृदय के अपार कोष तुम ही थे। क्षमा करना पुत्र ! मुझे भी यह लीला अब समाप्त करने दो।

अप्रना प्रवेश करती है ।

अप्रना—मैं तो पागल हो गई ! कहाँ है जैसिंह, अरे ये क्या हो रहा है ?

रघुपति—इधर आओ बच्ची ! अपने प्रेम की सारी शक्ति लगाकर इसे वापिस बुलाओ। यदि तुम इसे अपने साथ रखना चाहती हो, तो रखो, पर इसे जीवित कर दो।

(अप्रना मूर्छित हो जाती है, उसका सिर मन्दिर की दीवार से लगा है) मुझे वापिस दो, वापिस दो, मुझे वापिस दे दो।

रघुपति—(खड़ा हो जाता है और देवी को लक्ष्य करके कहता है।) देखो तो सही, ये देवी किस प्रकार खड़ी है ! मूर्ख, पत्थर ! बहरा गूंगा, अँधा, सारी

दुखित दुनियां इसके द्वार पर खड़ी रो रही है। शुद्ध और पवित्र इस देवी के चरणों में नष्ट हो रहे हैं। मेरा जैसिंह मुझे वापस दे दो। आह! यहाँ कोई नहीं सुनेगा! हमारी हृदयविदारक चीखें यों ही गूँजती रह जाती हैं! हम इस पत्थर के जाल में क्या कुछ नहीं करते! फेंको! फेंक दो इस पत्थर को! जिसने हमारी आत्माओं पर बोझ डाला हुआ है।

(देवी को एक ओर फेंक देता है और स्वयं आँगन में आता है)।

ज्ञानवती प्रवेश करती हैं।

काली माता की जय! हैं! देवी कहाँ गई?

रघुपति—देवी, वेवी कोई नहीं हैं।

ज्ञानवती—उसे वापिस लाओ! मैं अपनी भेंट लाई हूँ। मैं अपने हृदय का रक्त इसकी प्यास बुझाने के लिए लाई हूँ। इसे प्रतीत होना चाहिये कि रानी का वचन पक्का होता है। मुझ पर दया करो। देवी को केवल आज रात के लिए वापस बुला दो!

रघुपति—वह कहीं भी नहीं हैं।

ज्ञानवती—गुरु! क्या वह मन्दिर में नहीं थी।

रघुपति—देवी! यदि सचमुच की कोई देवी होती, तो क्या दुनियाँ में ऐसा भी हो सकता था!

ज्ञानवती—मुझे और दुःख न पहुँचाओ, सच-सच बताओ क्या दुनियाँ में कोई देवी नहीं हैं?

रघुपति—कोई नहीं हैं।

ज्ञानवती—तो यहाँ पहले कौन था?

रघुपति—कोई भी नहीं!

(अप्रना मन्दिर से बाहर आती है।)

अप्रना—पिता जी!

रघुपति—मेरी प्यारी बेटी! क्या तुमने मुझे पिता के नाम से पुकारा? क्या तुमने मुझे इस नाम से गाली दी? मेरा पुत्र! उसे मैंने ही मारा है! वह इस नाम को तेरे होंठों के लिए छोड़ गया है।

अप्रना—पिता जी ! आओ, हम यहाँ से दूर भाग चलें।

राजा प्रवेश करता है।

राजा—देवी कहाँ गई ?

रघुपति—अब देवी नहीं रही !

राजा—पर यह रक्त कैसा है ?

रघुपति—महाराज जैसिंह ने स्वयं को समाप्त कर दिया है, क्योंकि वह आपसे बहुत प्रेम करता था।

राजा—स्वयं को समाप्त कर लिया। क्यों ?

रघुपति—उस चाल को समाप्त करने के लिए, जो मनुष्यों का रक्त चूस रही थी।

राजा—जैसिंह एक बड़ा आदमी था। उसने मृत्यु पर विजय पा ली ! मेरे फूल उसी के लिए हैं !

ज्ञानवती—महाराज !

राजा—कहो रानी ?

ज्ञानवती—देवी नहीं है ?

राजा—वह पत्थर के बन्दीगृह से स्वतन्त्र होकर चली गई है, और स्त्री के हृदय में वापिस आ गई है।

अप्रना—पिताजी ! आइये !

रघुपति—आओ बेटी ! आओ माता ! मैंने तुम्हें पा लिया है, तुम जैसिंह की अन्तिम निशानी हो !



पात्र-परिचय

देवता

मदन	प्रीत देवता
बसन्त	ऋतु देवता

मनुष्य

चित्रा	मनीपुर के राजा की लड़की
अर्जुन	कुरु वंश का राजकुमार क्षत्री, जो कथा के समय जंगल में गुप्त बनवास बिता रहा है।
कुछ देहाती	मनीपुर राज्य के एक जिले के निवासी।

प्रथम दृश्य

मन्दिर में राजकुमारी चित्रा

चित्रा—क्या तूही पाँच तीरों वाला देवता है, जो प्रीत राजा कहलाता है ?

मदन—मैं ही हूँ, जो सर्व प्रथम भगवान के हृदय में पैदा हुआ। मैं पुरुषों और महिलाओं के जीवन को सुख और दुःख की जंजीरों में कसा करता हूँ।

चित्रा—ऐ मेरे देवता, मैं जानती हूँ ! मैं जानती हूँ कि दुख क्या है ? वह जंजीरें क्या हैं ? और तू कौन है ?

बसन्त—मैं इसका मित्र हूँ ऋतु देवता ! मृत्यु और बुढ़ापा दुनियांकी हड्डियों तक को पीस डालते हैं, यदि मैं उन पर लगातार छाये न रहूँ ! यौवन सदैव अस्थायी है !

चित्रा—बसन्त देवता मैं तुम्हें प्रणाम करती हूँ।

मदन—ऐ श्रेष्ठ सुन्दरी, अनजान लड़की ! वह कितनी कड़ी शपथ है जो तूने उठाई है। तू अपने फिर न आने वाले यौवन को क्यों नष्ट कर रही है योग और तपस्या के द्वारा ? प्रेम पूजा के लिये ऐसा बलिदान क्यों कर रही है। तू कौन है और तेरी इच्छा क्या है ?

चित्रा—मैं मनीपुर के राजवंश की राजकुमारी चित्रा हूँ। देवताओं की अर्चना से देवों में श्रेष्ठ शिवजी महाराज ने मेरे दादा को वरदान दिया था कि उनके वंश में लड़के ही पैदा होते रहेंगे, पर मेरे जीवन की जो चिनगारी मेरी माता के गर्भ में वर्तमान थी देवताओं का आशीर्वाद उसे बदल सकने में असमर्थ रहा। फिर मैं सब प्रकार से पुरुष ही दिखायी देती थी, जब कि मैं हर तरह से स्त्री हूँ।

मदन—तभी तो तेरे पिता ने तुझे पुत्र की तरह पाला, तीर चलाना सिखाया, और राजनीतिज्ञ की शिक्षा दी।

चित्रा—इसी कारण पुरुष के वस्त्र धारण करती हूँ, महिलाओं की तरह

पर्दा नहीं करती, और न मोहने की चालें जानती हूँ। मेरी भुजाओं में तीर छोड़ने की शक्ति मौजूद है। मैंने कामदेव की तरह किसी को आकर्षित करना नहीं सीखा जो कि केवल आँखों का खेल है।

मदन—श्रेष्ठ सुन्दरी लड़की! यह खेल सीखने या सिखाने से नहीं आया करता, आँखें स्वतः अपना काम किया करती हैं। इसे तो वही जानता है जिसके हृदय ने चोट खा ली हो।

चित्रा—मैं एक दिन शिकार की तलाश में नदी के किनारे भटकती फिरती थी कि एक हिरन दिखायी दिया। घोड़े को पेड़ से बाँधा और उसकी टोह में घनी झाड़ियों में घुस गई। एक पगडन्डी थी जो उलझी हुई टहनियों में बल खाती हुई कहीं जा रही थी। मैं उस पगडन्डी पर चली जा रही थी। सुहावने पेड़, तरह-तरह के मुलायम पत्ते, झींगुरों की आवाज से काँप रहे थे। वहाँ मैंने देखा कि एक पुरुष मेरे मार्ग में सूखे पत्तों पर लेटा हुआ है। मैंने उससे कहा कि मार्ग छोड़ दो, उसने मेरी बात पर ध्यान न दिया। मैंने घृणा से अपने धनुष की तीखी नोक उसके वक्ष में चुभोदी। वह उठ खड़ा हुआ, मानों राख के ढेर में से लाल-लाल आग निकली हो। उसका शरीर सुडौल, और कसा हुआ था। मृदु मुस्कान उसके होठों पर खेल रही थी, शायद मेरी पुरुष पोषाक को देखकर। मैंने जीवन में पहली बार अनुभव किया कि मैं पुरुष नहीं महिला हूँ, और मेरे सामने एक पुरुप खड़ा है।

मदन—मैं ऐसी ही शुभ घड़ी में पुरुष और महिला को यह शिक्षा देता हूँ, सच्ची और श्रेष्ठ शिक्षा—ताकि वह अपने आप को पहचाने। अच्छा फिर क्या हुआ?

चित्रा—मैं सहम गई! फिर उससे पूछा—तुम कौन हो? उसने उत्तर में कहा—'मैं प्रसिद्ध कुरुवंश का राजकुमार अर्जुन हूँ।' मैं उसके समक्ष पाषाण-प्रतिमा बनी खड़ी थी। चरण छूना तो दूर नमस्कार भी भूल गई। क्या सच-मुच वह अर्जुन था? मेरी आशाओं का चमकता सितारा! एक समय था जब मैंने सुना था कि उसने बारह वर्ष का बनवास स्वीकार किया है। मेरे हृदय की युवा उमंगों ने बार-बार मुझे उकसाया कि मैं उससे तीर चलाने की प्रतियोगिता

करूं ? भेष बदलकर उसको अपने मुकाबले पर बुलाऊँ और अपने हाथों की शक्ति तथा चतुराई दिखाऊँ, जिसको वह कभी भी भूल नहीं सकता और न जिसकी उपेक्षा कर सकता है। मगर आह, अधूरे यौवन ? तेरे दावे क्या हुए। तेरा गर्व कहाँ गया ? आज तो मैं इसे बड़ा गर्व समझती हूँ कि अपने यौवन के सारे अरमानों को अर्जुन के पैरों की मिट्टी से बदल लूं। न जाने उस समय मैं अपने किन विचारों के भँवर में फँस गई थी। अचानक मैंने देखा कि वह पेड़ों के झुरमुट में लोप हो गया। आह ! ओ मूर्ख स्त्री तूने अर्जुन का अभिवादन भी न किया। अपनी बे-अदबी की उससे क्षमा भी न माँगी। अक्खड़, गँवारों की तरह खड़ी रही। वह तुझे घृणा से देखता अपनी राह चला गया। दूसरे दिन से ही मैंने पुरुष के कपड़े उतार फेंके। रेशम की बढ़िया साड़ी, चूड़ियाँ और पायजेब पहिन लिये। करधनी बाँध ली। इस नये पहिनावे से मुझे लज्जा लगने लगी। पर मैं तेजी से उसे खोजने लगी और शिव देवता के मन्दिर में उसे देख पाया।

मदन—तू मुझे पूरी गाथा सुना। मैं ऐसी इच्छाओं का भेद खूब जानता हूँ।

चित्रा—मैंने क्या कहा और क्या जवाब पाया; केवल स्वप्न की तरह स्मरण है। पर ऐ देवता ! सारी कथा सुनाने के लिये आज्ञा न दे। लज्जा मुझ पर इस तरह छा गई थी जिस प्रकार बच्चे के हृदय पर बादलों की कड़क छा जाती है। लज्जा मुझसे दूर नहीं हुई और यह बहुत कठिन था मेरी जैसी शक्ति के लिये। मैं उसकी अन्तिम बातें सुना सकती हूँ। जब मैं चलने लगी तो उसकी ये बातें मेरे कानों में गर्म तेल-सी लगीं—'मैंने सन्यास का प्रण किया है, मैं तेरा पति बनने लायक नहीं हूँ।' अफसोस पुरुषों की प्रतिज्ञा ! ऐ प्रेम के देवता ! तू अच्छी तरह जानता है कि अनगिनत ऋषियों और मुनियों ने अपनी लम्बी तपस्या को स्त्रियों के चरणों में भेंट कर दिया है। मैंने अपना धनुष तोड़ डाला, अपने तीरों को आग में फेंक दिया। मुझे अपने मुलायम-लचकदार सुडोल बाजुओं की शक्ति से घृणा हो गई। ऐ प्रेम के देवता ! तूने मेरी पुरुष की ताकत का गर्व मिट्टी में मिला दिया। मेरी सारी पुरुष की-सी बातें तेरे कारण एक दिन में नष्ट हो गईं। ऐ देवता ! मैं तेरे मन्दिर की पुजा-

रिन बनूँगी। अपना जीवन तेरे चरणों में बिता दूँगी। मेरी इच्छा पूर्ण कर दे। मैं प्रेम के विछोह से नहीं डरती, उसके तीरों के लिये अपना उन्नत वक्ष खोल दूँगी, लेकिन यह अग्नि अधिक तेज हो सकती है, जब दो चिनगारियाँ, दो बारूद भरे हृदय एक स्थान पर हों ! ऐ मेरे देवता ! मुझे वह शक्ति प्रदान कर दे जिससे शक्तिहीन काम लेते हैं। वह हथियार दे जिससे निहत्थे लड़ते हैं।

मदन—मैं तेरा सहायक रहूँगा। अर्जुन को बन्दी बनाकर तेरे सामने लाऊँगा ताकि वह तेरे हाथों अपनी घृणा का दण्ड पाये !

चित्रा—मैं धीरे-धीरे उसका हृदय पा जाती और देवताओं से तनिक भी सहायता न माँगती, यदि मुझे अधिक समय मिल जाता। मैं उसकी गोद में मित्र बनकर रहती, उसके युद्ध के रथ के बहादुर घोड़ों को हाँकती, शिकार में उसका हाथ बँटाती, रात्रि को उसके डेरे के दरवाजे का पहरा देती। एक क्षत्री के समस्त कर्तव्य मैं जिम्मेदारी के साथ निभाती। 'शक्तिहीनों की सहायता करना और जब भी आवश्यकता हो दूध और पानी की तरह न्याय करना।' अवश्य एक दिन ऐसा आता कि वह मेरी ओर देखता और विस्मय से कहता—'ये कौन है ? क्या मेरे भूत जीवन के अच्छे साथियों में से अच्छे कर्मों के कारण इस जीवन में भी मेरे साथ है ?' मैं वह स्त्री नहीं हूँ जो अपने जन्मदिन से ही विधवा हो, जो अपनी निराशाओं को सन्नाटे भरी रात में आँसुओं से धोती हो और दिल में सन्तोष की शान्ति में चुप रहे। मेरी इच्छाओं का फूल उस समय तक मिट्टी में नहीं मिल सकता, जब तक वह पक कर फल न जाय। लेकिन इसके लिये समय चाहिये कि मैं वास्तविकता को पूरी तरह बता सकूँ, और उसे मैं इसके लिये लाचार कर दूँ कि वह मुझे साथ रख सके। ऐ दुनियां को बदल डालने वाले प्रेम के देवता मदन ! ऐ ऋतुओं को जवानी प्रदान करने वाले देवता बसन्त ! मैं इसीलिये तुम्हारे द्वारे आई हूँ, कि तुम मेरे युवा शरीर से मुझको ही नष्ट करने वाली शान्ति और आकर्षणहीन सादगी को दूर कर दो। मुझे केवल एक दिन के लिये पूर्ण आकर्षक सुन्दरी बना दो, बिल्कुल उसी तरह की जैसी मेरे हृदय में प्रेम की कली खिली है। मुझे असाधारण रूप से एक दिन के लिये पूर्ण सुन्दरी बना दो। उसके बाद जो भी, जैसे भी दिन आयेंगे उनका

प्रबन्ध मैं स्वयं कर लूँगी ।

मदन—कुमारी, जा तेरी इच्छा पूर्ण हुई !

बसन्त—केवल एक दिन के लिये नहीं, वरन् एक वर्ष तक बसन्त की कलियों की आकर्षक मुस्कराहट तुझसे लिपटी रहेगी ।

द्वितीय दृश्य

अर्जुन—वह स्वप्न था जो मैंने झील के किनारे देखा, या वास्तविकता ? मैं सन्ध्या की ढलती हुई परछाईं में फैली हुई हरियाली पर बैठा भूतकाल की याद में चुप था । पत्तों की घनी परछाईं में से सुन्दरता का एक चित्र, स्त्री के पूर्ण रूप में धीरे-धीरे निकला, और पानी के किनारे हरी-हरी दूब पर वह सर्व सुन्दरी खड़ी हो गई ! ऐसा प्रतीत होता था कि मारे प्रसन्नता के पृथ्वी का हृदय उसके पैरों के गोरे-गोरे मुलायम तलुओं के नीचे उछलने लगेगा, और दुनियां की तेज वायु से इसके बदन के वस्त्र उड़ जायेंगे । जैसे प्रातः के सूर्य की सुनहली किरणें पहाड़ों की बर्फ पर पड़कर धीरे-धीरे उसके रूप को परिवर्तित कर देती हैं, वैसे ही उसने झील के शान्त किनारे पर अपने को झुका दिया । अपने चेहरे का प्रतिबिम्ब देखा, डरकर झिझकी और चुपचाप खड़ी हो गई, मुस्कराई और लापरवाही से अपनी बाईं बाँह को हिलाया, जूड़ा खोल दिया, बालों ने उसके चरण छुए, वक्ष को दिखाया और अपनी सुडौल बाँहों को देखा । जिनमें प्यार की बातों के सिवा गोद में भरने की इच्छा अधिक थी । फिर उसने सिर झुका लिया, अपने बदन के हर उभरे भाग को देखा और एकदम विस्मय में डाल देने वाले चेहरे पर प्रकाश हो गया, जिस प्रकार प्रातः की कमल की कली अपने बन्द नेत्र खोलकर गर्दन झुकाकर अपनी परछाईं पानी में देखती और दिनभर मस्त रहती है, और यदि तनिक भी दुःख इसे छू गया तो आँखों में उदासी छा गई । जूड़ा बाँधा, दुपट्टा बाँहों पर डाला, ठण्डी साँसें लेती धीरे-धीरे चली गई, जैसे एक सुन्दर सन्ध्या का शान्त वातावरण रात्रि को आने से उदास हो जाय । मुझे ऐसा लगा मानो मेरी आशाओं की सफलताओं की कुञ्जी दिखायी दी और गुम हो गई । पर यह कौन है जो मेरा दरवाजा खटखटा रहा है !

चित्रा स्त्री के पहनावे में प्रवेश करती है ।

आह ! यह तो वही है ! यह हृदय की शाँति ! ऐ सर्व सुन्दरी ! मेरे हृदय की शांति को मुझसे न छीन ! मैं क्षत्री हूँ, मेरी आँखों में जवानी का नशा बनकर रह । मुझे विजय करले । जिस प्रकार एक स्त्री पुरुष को विजय करलेती है।

चित्रा—महाराज आप मेरे अतिथि हैं, मैं इस मन्दिर में रहती हूँ । मैं नहीं जानती कि अपनी सेवाएं किस तरह उपस्थित करूँ ।

अर्जुन—देवी, तेरा दर्शन देना ही सबसे बड़ी सेवा है, बुरा न मानो तो एक बात पूछूँ ?

चित्रा—पूछिये महाराज !

अर्जुन—समझ में नहीं आता, किस कारण तुम्हें इस मन्दिर में भेजा गया, जिससे दुनियां इतनी सुन्दरता से अछूती रह गई !

चित्रा—मेरे हृदय में एक आशा है, जिसके लिये मैं शिवजी से प्रार्थना करती हूँ ।

अर्जुन—आह ! इस संसार की एक तुच्छ इच्छा ! तुम्हें किसकी आशा या इच्छा हो सकती है भला ? मेरा सारा ज्ञान तेरे लिये है। पूरब की इन पहाड़ियों से जहाँ से सूर्य जन्म लेकर ऊपर चढ़ता है और संसार की परिक्रमा करके पश्चिम के उन पहाड़ों तक जहाँ सूर्य नित्य प्रति सन्ध्या को कफन ओढ़कर सो रहता है, मैंने यात्रा की है। दुनियां की तमाम सुन्दर और बहुमूल्य वस्तुऐं मैंने देखी हैं, मुझे बता वह क्या है जिसकी तुझे इच्छा है ? इस सुन्दर महिला के मस्तिष्क में किसकी तलाश है ?

चित्रा—जिसकी मुझे तलाश है उसे सब जानते हैं, मैं इस प्रकार प्रसिद्ध नहीं, जिस प्रकार वह प्रसिद्ध है ।

अर्जुन—अच्छा बता वह कौन देवता का प्यारा है, जिसकी याद ने तेरा हृदय डावाँडोल कर दिया है ?

चित्रा—उसका वंश दुनियां में सबसे बड़ा राज्यवंश है, और वह दुनियां के समस्त योधाओं से बड़ा योधा है !

अर्जुन—सबसे बड़ा राज्यवंश, सबसे बड़ा योधा···? ऐ रूप की देवी ! तू

अपनी बहादुरी की शिक्षा का आदर कर, रूप के इस विशाल कोष को जो तुझे प्राप्त है साधारण प्रसिद्ध पाये योधा के लिये बरबाद न कर। बनावटी नेकनामी की हवा बनावटी गधे की तरह फैलती है। तू मुझे बता वह सबसे बड़े राज्यवंश का सबसे बड़ा योधा कौन है ?

चित्रा—ऐ बनवासी योगी ! तू दूसरों की प्रसिद्ध से क्यों डाह करता है ! क्या तू नहीं जानता कि सारी दुनियां में कुरु राज्यवंश अत्यधिक प्रसिद्ध और बड़ा है ?

अर्जुन—कौरवों का वंश ?

चित्रा—हाँ कुरु वंश ! और क्या तूने इस सबसे बड़े वंश के अति प्रसिद्ध योधा का नाम अभी तक नहीं सुना है ?

अर्जुन—मैं उसका नाम तेरे मुंह से ही सुनना पसन्द करूंगा।

चित्रा—वह अर्जुन है, दिग्विजयी अर्जुन ! मैंने लोगों के मुँह से उसका प्रसिद्ध नाम सुन लिया है और अपने अछूते हृदय में सँजो लिया है। सन्यासी, तुम सोच में क्यों पड़ गये ? क्या यह नाम झूठ मूठ को ही प्रसिद्ध है ? यदि तू इस बात को सिद्ध कर सकता है तो बता ! मैं हृदय के पवित्र विचार को त्याग देने और इस नाम को मिट्टी में मिला देने में तनिक भी नहीं हिचकूंगी।

अर्जुन—उसका नाम और उसकी प्रसिद्ध, उसकी बहादुरी और उसका बल झूठा हो या सच्चा, पर तुम अपने हृदय की नगरी से उसे देश निकाला न देना। वह इस समय भी तुम्हारे चरणों में झुक रहा है !

चित्रा—तुम अर्जुन हो ?

अर्जुन—हाँ, मैं ही हूँ, प्रेम का भूखा पुजारी, जो तुम्हारे द्वारे आया हूँ।

चित्रा—क्या यह सत्य नहीं कि अर्जुन ने बारह वर्ष के सन्यास की शपथ ली है ?

अर्जुन—हाँ, यह सच है, पर तुमने उसकी शपथ तोड़ दी, जिस प्रकार रात्रि के घोर अँधेरे के राज्य को चन्द्रमा तोड़ देता है।

चित्रा—बहादुर तुम्हें लजाना चाहिये। तुमने मुझ में क्या चीज देखी, जिसके लिये स्वयं को अपनी वास्तविकता से हेय करने के लिये तुल गये। तुम

को सन्यास के बन्धनों को नहीं तोड़ना चाहिये ! इन काली आँखों में, दूध से अधिक श्वेत हाथों में तुम्हें किस वस्तु की खोज है जो अपना धर्म बेच रहे हो ! क्या तुम इनके लिये अपना धर्म बेच दोगे ? मैं जानती हूँ, मेरी वास्तविक आत्मा से आपको प्रेम नहीं हो सकता, इसका मुझे पूर्ण विश्वास है, और यही पुरुष के लिये स्त्री की ओर से सबसे बड़ी सेवा प्रगट करता है। कितने दुःख की बात है कि यह क्षणिक दिखावा, क्षण भर में मिट जाने वाले हाड़ मास के शरीर के लिये अंधा बना दे। हे अर्जुन ! मुझे अब ज्ञात हो गया कि तेरी बहादुरी और तेरा योधापन झूठ-मूठ ही प्रसिद्ध है।

अर्जुन—आह ! मुझे प्रतीत होता है कि बहादुरी और प्रसिद्ध की आन किस प्रकार बेमतलब है, हर वस्तु मुझे स्वप्न प्रतीत होती है। ऐ अकेली स्त्री ! केवल तू पूर्ण-ही-पूर्ण है; केवल तू ही विश्व की दौलत, सारे कष्टों का अन्त और समस्त इच्छाओं की पूर्ति है ! मन्दिर की इन मूर्तियों को बड़े-बूढ़ों ने बताया है कि देवता हैं, लेकिन तुझे हृदय ने पहिचाना है। संसार की तमाम वस्तु का वास्तविक रूप धीरे-धीरे पहिचाना जाता है, पर तुझे एक क्षण के लिये देख लेना, भगवान की सबसे बड़ी चतुराई का दर्शन और सदैव के लिये देख लेना है !

चित्रा—अफसोस अर्जुन ! यह मैं नहीं हूँ ! यह तो देवता की करामात है, मेरे बहादुर झूठ को मत अपनाओ ! अपना विशाल हृदय बनावटी साधन पर मत सौंपो।

तृतीय दृश्य

चित्रा—नहीं, असम्भव है, इन काली-काली बड़ी-बड़ी अर्थ-भरी आँखों की जो इस जंगल की सुन्दरता को दबोच लेना चाहती है; यह महसूस कर लेना कि इसका हृदय इसके शरीर में बेचैनी की लहर दौड़ाने और तमाम बन्धनों को तोड़कर स्वतन्त्र होने की कोशिश कर रहा है, उसे भिखारी की तरह घुड़क कर निकाल देना बिल्कुल असम्भव है।

मदन और बसन्त प्रवेश करते हैं।

आह, हे प्रेम के देवता ! क्या यह भयंकर आग है जिसमें तूने मुझे लपेट लिया है ! मैं जलती हूँ, और जो मुझ से छू जाय उसे जला देती हूँ।

मदन—मैं जानना चाहता हूँ कि कल रात क्या बीती ?

चित्रा—कल सन्ध्या को फैली हुई हरियाली पर, जहाँ वसन्त की पत्तियाँ बिखरी हुई थीं, मैं लेटी थी। अपने रूप की विस्मयकारी प्रशंसा स्मरण कर रही थी, जो मैंने अर्जुन से सुनी थी। अर्थात् मधुमक्खी की तरह दिन भर के श्रम से पैदा की गयी मेहनत का एक-एक कण पी रही थी और आनन्द प्राप्त कर रही थी। मैं अपने पिछले जीवन की समस्त बातें पूर्व जन्म की तरह भूल गई थी। मैं अपने आपको उस फूल की तरह देखती थी जो कुछ क्षणों के लिये चापलूस भौंरों की भन-भनाहट जो उनकी स्वार्थ-भरी चापलूसी है, सुनना; आकाश को देखते-देखते आँखें नीची करके, सर झुकाकर, एक साँस में बिना प्रार्थना किए स्वयं को मिट्टी को सौंप देता और इस प्रकार एक निर्मल शुद्ध क्षण की कहानी जो अपना न कोई भविष्य रखता है न भूतकाल...समाप्त कर देता है।

बसन्त—मौसम की यह खिलती हुई कली एक ही रात के बाद कुम्हला सकती है !

मदन—जैसे सीमित संगीत में असीमित लय !

चित्रा—पश्चिम से आने वाली ठन्डी हवा ने मुझे थपक-थपक कर सुला दिया, फूलों से लदी हुई मालती की छाँव थी, उसकी डालियों से शान्त प्रेम-चिन्ह—चुम्बन के हेतु चुपचाप मेरे ऊपर टूट रहे थे। फूलों ने जहाँ उनका जी चाहा...बालों पर, वक्ष पर, पैरों पर...सोने को बिस्तर लगा दिया। मैं गहरी नींद सो रही थी। अचानक मुझे लगा कि आग की नुकीली अंगुलियाँ जैसी कोई तेज दृष्टि मुझे घूर रही है। मैं चौंक पड़ी। सन्यासी मेरे सामने खड़ा था; चंद्रमा पश्चिम को जा रहा था और पत्तियों के झुरमुट के बीच से परमात्मा की इस नई लीला के नये रूप को चोरी से देख रहा था जो उसने मनुष्य के कोमल हृदय में प्रगट की थी। रात का सन्नाटा झींगुरों की आवाज में बोल रहा था। पेड़ों की परछाई झील में विस्मयकारी-सी थी और वह हाथ में लाठी लिये जंगल के पेड़ों की तरह शान्त और चुपचाप सीधा खड़ा

था। मुझे आँख खोलते ही अपने मन में लगा कि तमाम वास्तविकता के प्रमाण से मैं मर चुकी हूँ और परछाईं की दुनियां में स्वप्न का जन्म लिया है। लज्जा इस प्रकार दूर हो गई जैसे चादर बदन से उतर जाती है। उसने कहा—'मेरी रानी' और इसके साथ ही मेरे तमाम भूले-बिसरे जीवन सिमट कर सब एक हो गये ताकि उसकी आवाज का जवाब दें। मैंने अपनी बाहें उसकी ओर फैला दीं और कहा—"मुझे स्वीकार कर, मेरा सर्वस्व स्वीकार कर।" चँद्रमा पेड़ों की ओट में छिप गया। नीरवता ने सब कुछ ढक लिया; पृथ्वी और आकाश, घर और बाहर, खुशी और गम, मृत्यु और जीवन, सब मिलकर आनन्द के समुद्र में डूब गये—प्रकाश की पहली किरण चिड़ियों की चहचहाट के साथ ही जागी और अपने बायें हाथ के सहारे बैठ गई। वह होठों पर गम्भीर प्यार की छाप लिये सो रहा था—दूज के चन्द्रमा की तरह जो प्रातः के समय दिखाई देता है। प्रकाश बढ़ा, प्रातः की गुलाबी छटा उसके लजीले माथे पर चमकी। मैं एक ठंडी सांस लेकर उठी, मालती की घनी टहनियों को मिला कर सूर्य की फैलती किरणों से उसके चेहरे को ओट में कर दिया। इधर-उधर देखने लगी, वही पुराना वातावरण-सा दिखाई दिया। मुझे याद आया कि मैं क्या थी। मैं लजा कर भागी, बिल्कुल उसी हिरण की तरह जो अपनी ही परछाईं देखकर भागता है, मैं भागती चली गई। पगडंडी पर फूल बिखरे हुए थे, एक सुनसान स्थान मिला, वहां बैठ गई। चेहरे को दोनों हाथों से छुपा लिया, फूट-फूट कर रोने की चेष्टा की पर आँसू मेरी आँखों के सूख चुके थे।

मदन—अफसोस, ऐ मिट जानेवाले मनुष्यों की बेटी! मैंने भगवान के स्वर्ग से आनन्द को देने वाली नीरा तेरे लिये चुराई, और दुनियाँ की एक रात उससे लबालब भरदी, पर अब भी मैं तुझ से दुखियारी की सी बातें सुन रहा हूँ।

चित्रा—(दर्द भरी आवाज में) लेकिन वह शराब पी किसने? मेरी आशाओं के स्वर्ग की एक झाँकी, प्रेम का पहला बदला मेरे सामने उपस्थित किया गया, पर तुरन्त मेरी बाँह मरोड़कर मुझ से छीन लिया गया।···यह माँगा हुआ रूप···यह धोखा देने वाली सुन्दरता···जिसने मेरी वास्तविकता को

छिपा दिया है···मुझ से अलग हो जायगी और इस रसीले मिलाप की यादगार को भी अपने साथ उड़ा ले जायगी; पूरी तरह खिले हुए फूल की उन पंखुड़ियों की तरह जो हवा में उड़कर बिखर जाती हैं, और इस तरह अपनी असमर्थता पर असहाय दिन रात आँसू बहाया करेगी। ऐ प्रेमपति ! यह कमबख्त सुन्दरता राक्षस की तरह दिन-रात मेरे साथ रहकर मुझ से प्रेम की सारी बहुमूल्य यादें लूटे लेती है और उन प्रेम-चुम्बनों से निराश किए देती है, जिनके लिये मेरा हृदय छटपटाता है।

मदन—खेद ! तेरी एक रात कितनी सुन्दर रात रही, जिसमें आनन्द का किनारा भी दिखाई दिया, पर हिलोरों ने गोदी तक पहुँचने ही न दिया।

चित्रा—स्वर्ग मेरे इतने पास हो गया कि मैं यह भूल गई कि वह मुझ तक पहुँचा नहीं था; पर प्रातः को जब मैं स्वप्न देखकर जगी तो मुझे लगा, मेरा शरीर मेरा खून बन गया है। यह कार्य कितना घृणित है कि मैं नित्य अपने रूप को सजा सँवारकर प्रेमी के पास भेजूं और अपनी आँखों से देखूँ कि वह उसे गले लगा रहा है। ऐ प्रेम के देवता ! तू मुझसे अपना दान वापिस ले ले !

मदन—यदि मैं तुझसे अपना दान वापिस ले लूँ तो फिर अपने प्रेमी के सामने तू किस तरह खड़ी होगी ? क्या यह अन्याय न होगा कि प्रेम-रस का एक घूंट पीने के पश्चात् ही प्याले को उसके हाथ से छीन लिया जाय। वह तुझसे कितनी रुष्टता और तुनकमिजाजी का बर्ताव करेगा।

चित्रा—वास्तविक रूप में उसके सामने जाना, बनावटी रूप में जाने से मेरे विचार से अच्छा रहेगा। मैं अपना भेद उसके कान में कह दूँगी, यह अधिक सभ्य काम है। यदि उसने स्वीकार न किया मुझे ठुकरा दिया तो मैं स्वीकार कर लूंगी।

बसन्त—तू मेरी बात सुन ! जब मौसम के बदलने से फूलों की ऋतु बीत जाती है, तब फल फलाहार का मौसम आता है। ऐसा समय स्वयं ही आयेगा जब गर्मी के थपेड़ों से यह यौवन कुम्हला जायेगा, उस समय अर्जुन बड़ी प्रसन्नता से तेरी वास्तविक सचाई को स्वीकार कर लेगा। लड़की, जा और अपनी जवानी की रंग-रेलियों में जाकर खोजा !

चतुर्थ दृश्य

चित्रा—मेरे सिपाही, तुम मुझे इस प्रकार क्यों देख रहे हो ?

अर्जुन—मैं देख रहा हूँ कि तुम यह हार कितनी सुन्दरता से गूंथ रही हो, ढंग और अदा···

दोनों जुड़वाँ बहिन भाई···तुम्हारी अँगुलियों पर कितने मोहक और प्रसन्नता से नाच रहे हैं। मैं देख रहा हूँ और सोच रहा हूँ।

चित्रा—क्या सोच रहे हो ?

अर्जुन—यह सोच रहा हूँ कि तुम रस और मधु के मधुर मिलन की तरह मेरे बनवास के दिनों को एक अस्थायी हार में गूंथ रही हो, ताकि जब मैं देश को जाऊँ तो तुम मुझे इसे पहना सको !

चित्रा—हैं, देश ? लेकिन यह प्रीति तो देश बनाने के लिये नहीं ?

अर्जुन—क्या यह प्रीति देश बनाने के लिये नहीं ?

चित्रा—नहीं, केवल वही वस्तु अपने देश वापिस ले जाओ जो शक्तिपूर्ण और दृढ़ हो, और जंगल के नन्हे फूल को वहीं छोड़ दो, जहाँ वह खिला था। उसको वहीं छोड़ दो, ताकि जब दिन समाप्त हो जाय तो वह मुरझाने वाली कलियों और सूख जाने वाली पत्तियों के बीच अपने जीवन को समाप्त कर दे। उसे अपने महल के पत्थर के फर्श पर फेंक देने के लिये न ले जाओ, जो कुम्हला जानेवाली वस्तुओं पर तरस नहीं खाता।

अर्जुन—क्या हमारी प्रीति इसी तरह की है ?

चित्रा—जी हां, इसी प्रकार की है, इसके लिये अफसोस क्या ? जो चीज बेकार दिनों के लिये मन बहलाव थी उसको तो बाकी रहना ही न चाहिये। यदि वह दरवाजा बन्द कर दिया जाय जिससे प्रसन्नता बाहर निकल जाती है तो वह प्रसन्नता, प्रसन्नता न रह कर दुख बन जाती है। इसे समझो और स्वीकार करो, जब तक ये बाकी रहे अपने पास रखो। अपने जीवन की संध्या को उतना ही खर्चीला बनने दो जितना जीवन के प्रातः में कमाया था। दिन डूब चुका है, लो यह हार पहिन लो, मैं थक गयी हूँ, मुझे अपनी गोद में लो, और जो लालच

हृदयमें पैदा हो गया है, उसे अमृत पान द्वारा हृदय की प्यास बुझाकर भुला दो।

अर्जुन—तनिक चुप रहो, और उसे सुनो ! दूर गांव के मन्दिर से पूजा के घण्टों की आवाज़ संध्या की वायु में मिलकर शान्त पेड़ों के इस पार आ रही है।

पांचवां दृश्य

बसन्त—मेरे मित्र, मैं तेरे साथ कदम मिलाकर नहीं चल सकता, में थक गया हूँ। तूने जो आग भड़काई है उसे बुझने न देना बड़ा कठिन है। नींद के बादल मँडरा रहे हैं। पंखा मेरे हाथ से छूटा जाता है, ठण्डी राख आग की चिनगारी को छुपाये ले रही है। मैं चौंक जाता हूँ और बुझी-सी चिनगारी को तेज करने लगता हूँ, पर यह काम अधिक देर तक नहीं हो सकेगा।

मदन—मैं जानता हूँ कि तू बच्चों की तरह चँचल है, धरती हो या आकाश हर जगह तू यही खेल खेलता है कि लम्बी-चौड़ी आशाएँ बँधाई और क्षण मात्र में समाप्त कर दीं ! ठहर, अब हमारा काम समाप्त होने को है, वह दिन बहुत तेजी से समाप्त हुआ करते हैं जिनमें खुशी के पर लगे होते हैं और वर्ष अपने समाप्त होने पर स्वयं ही आनन्द के प्रभाव में मदहोश हो जाता है।

छठा दृश्य

अर्जुन—प्रातः को जब मैं जगा तो मुझे लगा कि मेरी नींद ने एक मोती पैदा किया है, मेरे पास कोई डिबिया नहीं, जिसमें उसको सुरक्षित रख सकूं, कोई ताज नहीं जिसमें उसको लगा सकूं, कोई जंजीर नहीं जिसमें उसको लटका लूं, पर इन सबके न होने पर उसे फेंक भी तो नहीं सकता। एक क्षत्री का हाथ इसे व्यर्थ में लिये हुए है, जिससे अपने वास्तविक कार्यों को वह भूला हुआ है।

चित्रा प्रवेश होती है।

चित्रा—किस सोच में हो ?

अर्जुन—शिकार की धुन है, देखो कैसा मूसलाधार मेंह बरस रहा है, और कितने जोर से पहाड़ों के पत्थरों से टकरा रहा है; बादलों की नीरव परछायीं जंगल पर उमड़-उमड़ कर छा रही है। चढ़ी हुई नदी, खिले हुए यौवन की

तरह अट्टहास करती, तमाम रुकावटों से उछलती-कूदती बह रही है। महावट की बर्षा में हम पाँचों भाई, अचित्रक बन में जंगली जानवरों के शिकार को जाते थे। वह बड़े मजे का समय था। बादलों की गर्जन पर हमारे हृदय ईर्ष्या करते थे। जंगल मोरों की आवाज से गूंज उठता। वर्षा और पानी के शोर से डरपोक हरिण हमारी आहट न पाते और गीली जमीन में चीते के पंजों के निशान के द्वारा हम उनकी खोहों तक आसानी से पहुँच जाते। शिकार के पश्चात् जब हम वापिस होते तो उफान लिये हुए नदियों की धार तैर कर पार करने में अपनी शक्ति लगाते। मेरी आत्मा घुट-सी रही है, मैं शिकार को जाना चाहता हूँ।

चित्रा—पहले इस शिकार को थकालो, जिसके द्वार पर हो, क्या तुम को भरोसा है कि चौकन्ना हरिण स्वयं ही गिरफ्तार हो जायगा ? नहीं, अभी नहीं ! वह स्वप्न की तरह बचकर निकल जायेगा, उस समय भी जब कि वह जान ले कि बस बालू में फँसा जा रहा हूँ। देखो, दीवानी वर्षा हवा के द्वार पर है और तिस पर भी अपने तीर बरसा रही है, पर हवा इसके काबू में नहीं आती, वह उसी तरह उड़ी जा रही है। तुम्हारा शिकार भी इसी तरह का है। तुम अपने हाथ के समस्त तीरों से चपल सुन्दरता की आत्मा को बेधना चाहते हो, लेकिन यह जादू का हरिण कभी काबू में नहीं आ सकता, इस प्रकार तो सदैव वह तुमको काबू से बाहर ही दिखाई देगा।

अर्जुन—मेरे हृदय की रानी, क्या तुम्हारा कोई घर नहीं, जहाँ प्रेम भरे हृदय तुम्हारी बाट जोहते हों! क्या कोई घर नहीं जिसे तुमने अपनी मेहनत और प्रेम से सजाया हो और जब तुम ने उसे छोड़ कर इस जंगल को प्रकाशित किया हो तब वह तुम्हारे बिना सूना और उदास हो गया हो।

चित्रा—इन बातों की आवश्यकता ? क्या निश्चिन्त सुरम्यता की घड़ियाँ बीत गईं ? क्या तुम नहीं जानते कि जिसको तुम अपने साथ देख रहे हो वह उसके सिवाय कुछ नहीं और न इसके आगे और कोई लक्ष्य है। टेसू के फूल की पंखुड़ी पर जो ओस के कण काँप रहे हैं, वह अपना कोई नाम, कोई लक्ष्य, कोई अर्थ नहीं रखते। वह किसी प्रश्न का उत्तर भी नहीं देते। जिस स्त्री से

तुम्हारा प्रेम है वह इसी ओस की बूंद के सदृश्य है।

अर्जुन—क्या वह दुनियाँ से कोई नाता नहीं रखती? क्या वह आकाश का कोई टुकड़ा है जो किसी चंचल देवता की गलती से पृथ्वी पर गिर गया है?

चित्रा—हाँ!

अर्जुन—तभी यह डर, मेरे हृदय में हर समय खटकता है कि शायद मैं शीघ्र ही तुझे खो दूंगा। इसीलिये मेरा हृदय बेचैन है और मेरी आत्मा को शान्ति नहीं मिलती। ऐ प्राप्त न हो सकने वाली! मेरे पास आ! अपने को स्थायी रखने के लिये किसी घर के हवाले करदे। मुझे आशा है कि मैं अपने चारों ओर तुझे ही देखूं और तेरे ही साथ प्रेम की गोद में शान्ति के साथ जीवन पूरा कर दूं।

चित्रा—बादलों के रंग, हवा की चाल, और फूलों की गंध को बेकार कैद करने की चेष्टा क्यों करते हो?

अर्जुन—मेरी मोहिनी, केवल विचारों से प्रेम की आग ठण्डी करने की आशा त्याग दो, मुझे कोई ऐसी वस्तु दो जिसे मैं अपने हाथों में थाम सकूं। जो प्रसन्नता के सम्मुख अधिक मजबूत हो, जो कष्टों में सहायक हो।

चित्रा—मेरे बहादुर योधा! अभी तो एक वर्ष भी पूरा नहीं हुआ, तुम अभी से थक गये! अब मैं समझी कि यह परमात्मा की दया है जो उसने फूल को थोड़ा-सा ही जीवन दिया। यदि मेरा यह शरीर बसन्त के अन्तिम फूलों के साथ कुम्हलाकर मर जाय, तो निश्चय ही वह प्रतिष्ठा की मौत होगी। मेरे प्रेमी! इसके दिन फिर भी गिनती के हैं, इसे जाने न दो, इसका समस्त मधु पीकर सुखा डालो! मुझे डर है, तुम्हारा हृदय तुम्हारी प्यासी इच्छाओं के साथ-साथ बार-बार इसकी ओर आयेगा, उस भौंरे की तरह जो फूलों के मुर्झाने के पश्चात् उनकी ओर आता है और उन्हें मुर्झाए देखकर बेचैन हो जाता है।

सातवाँ दृश्य

मदन—आज की रात तेरी अन्तिम रात है।

बसन्त—कल तेरे शरीर का यह रूप बसन्त के भरे-पूरे कोष की तरह लुट

जायेगा; तेरे होठों की यह हल्की-हल्की लाली अर्जुन के चुम्बनों के स्मरण से स्वतन्त्र होकर, अशोक के हरेताजे पत्तों की खुशबू में मिल जायेगी और तेरी खाल की यह लचकीली सफेद चमक मालती के सैकड़ों फूलों में जन्म लेगी।

चित्रा—मेरी एक प्रार्थना है कि आज रात की अन्तिम घड़ियों में मेरे रूप को बुझती हुई चिनगारी की अन्तिम भड़क की तरह चमका दो ?

मदन—जा, तेरी इच्छा पूर्ण होगी !

आठवाँ दृश्य

देहाती—अब हमें कौन बचायेगा ?

अर्जुन—तुम्हें डर किसका है ?

देहाती—डाकू हमारे गाँव को लूटने, उत्तर की पहाड़ियों से चढ़े हुए पहाड़ी नाले की तरह, बढ़े चले आ रहे हैं !

अर्जुन—क्या इस राज्य में तुम्हारा कोई रखवाला नहीं ?

देहाती—राजकुमारी चित्रा से तमाम पापी काँपते थे, जब तक वह इस देश में थीं हमें प्रकृति के कष्टों के सिवा और किसी से डर न लगता था। आज-कल वह यात्रा को गई हुई हैं, कोई नहीं जानता कि वह हमें कहाँ मिलेंगी ?

अर्जुन—क्या इस देश की रक्षा स्त्री करती है ?

देहाती—हाँ वह अकेली ही, हमारी माँ भी है और पिता भी !

(देहाती चले जाते हैं)

चित्रा प्रवेश करती है।

चित्रा—अकेले बैठे क्या कर रहे हो ?

अर्जुन—समझने की चेष्टा कर रहा हूँ, कि राजकुमारी चित्रा किस तरह की स्त्री होगी। मैंने हर तरह के आदमियों से बहुत-सी कहानियाँ उसके बारे में सुनी हैं।

चित्रा—लेकिन वह सुन्दर नहीं है। वह इतनी सुन्दर काली-काली तीर छोड़ने वाली आँखें नहीं रखती। वह जिस चीज को चाहे अपना शिकार बना सकती है, पर मेरे योधा के हृदय को नहीं।

अर्जुन—लोग कहते हैं वह बहादुरी में पुरुष और नम्रता तथा शील में स्त्री है।

चित्रा—यही उसके भाग्य का सबसे बड़ा खोट है। स्त्री का सबसे बड़ा सुख यह है कि वह केवल स्त्री रहे, अपनी मुस्कराहट, अपने हाव-भाव, अपने प्रेम और सेवा से पुरुष के चारों ओर लिपटी रहे। बड़े-बड़े प्रसिद्ध कार्य और विस्तृत विद्या उसके किसी काम की नहीं। कल तुम उसको शिव देवता के मन्दिर के पास जंगल की पगडंडी पर देखते तो उसके पास से चुपचाप निकल जाते, अनजान से। क्या तुमको स्त्री के सौंदर्य ने भरपूर कर दिया और तुम्हारी इच्छाएँ पूरी हो गईं जो तुम उसमें पुरुष का-सा बल देखना चाहते हो? चलो, मैंने, दुपहरी बिताने के लिए अँधेरी गुफा में जो रात की तरह सन्नाटे से भरपूर है, प्रेम के अमृत, फुआर से भीगी हुई हरी पत्तियों का बिस्तर बिछाया है। झरनेवाली काली चट्टानों पर जमी हुई हरी मुलायम काई की शीतलता तुम्हारी आँखों को छू-छूकर सुला देगी। आओ, मैं तुम्हें वहाँ ले चलूँ।

अर्जुन—नहीं रानी! आज नहीं।

चित्रा—क्यों? भला आज क्यों नहीं?

अर्जुन—मैंने सुना है कि डाकुओं का एक झुण्ड मैदानों में उतरने वाला है। मैं चाहता हूँ कि मैं अपने हथियार लगाकर वहाँ जाऊँ, और डाकुओं से डरे हुए देहातियों की रक्षा करूँ।

चित्रा—तुम्हें उनकी रक्षा के लिए जाने की आवश्यकता नहीं है। राजकुमारी चित्रा ने यात्रा को जाने से पहले सीमा के तमाम मार्गों पर मजबूत पहरे बिठा दिये थे।

अर्जुन—फिर भी मुझे आज्ञा दो कि एक क्षत्री का कर्तव्य पूरा करूँ। मैं इन बाँहों को युद्ध में सुदृढ़ करूँगा ताकि यह तुम्हारे लिए मजबूत तकिया बनें।

चित्रा—यदि मैं न जाने दूँ और अपनी बाहें तुम्हारे गले में लिपटाकर तुम्हें रोकना चाहूँ तो क्या तुम हृदय पर पत्थर रखकर मेरी बाहों को झटक दोगे और मुझे छोड़ जाओगे? जाओ, पर इतना समझ लो कि बेल जब एक बार टूट जाती है तो दुबारा जुड़ नहीं सकती। तुम्हारी प्यास बुझ गई है तो प्रस-

न्नता से जाओ, पर याद रखो आनन्द की देवी बड़ी चंचल है, वह किसी की चिन्ता नहीं करती। मेरे राजा ! तनिक ठहरो, मुझे बताओ कि किस विचार ने तुम्हें बेचैन कर रखा है। वह कौन है जो तुम्हारे मन में समा गया है ? क्या वह चित्रा है ? या कोई और ?

अर्जुन—हाँ, वह चित्रा ही है। मैं सोच रहा हूँ कि वह किस बचन को पूरा करने यात्रा को गई है, उसको किस चीज की इच्छा हो सकती है ?

चित्रा—उसकी इच्छाएं ! उस अभागिनी के भाग्य ही फूटे हैं ! उसके सारे गुण बन्दी-गृह की दीवार हैं, जिन्होंने उसके हृदय को अपनी काली कोठरी में बन्द कर रखा है। वह सन्नाटे में है, वह उस बचन की तरह है जो पूरा न हुआ हो। उसका विशुद्ध प्रेम चीथड़े पहनकर अपने मन में मस्त रहता है, वह सौंदर्य-विहीन रखी गई है, वह एक पतझड़ की प्रात सदृश्य है जो पहाड़ी की चोटी पर बैठी हो और जिसका काला मुँह वादलों ने और वदसूरत बना दिया हो। तुम उसके जीवन की कला मुझसे न पूछो, यह कहानी पुरुष के कानों को प्रसन्न न कर सकेगी।

अर्जुन—मुझे उसकी दशा ज्ञात करने की वड़ी इच्छा है, उस मुसाफिर की तरह जो आधी रात को शहर में पहुँचे, और गुम्बदों, मीनारों, बाग के पेड़ों के सन्नाटे को धुंधलके में देखे। स्वप्न जैसी रात्रि में नदियों का शोर मचाता संगीत सुने और चिन्ता तथा बेचैनी से इस विचित्र दृश्य का भेद खोलने वाली प्रातः का मार्ग जोहे। मुझे उसकी कहानी अवश्य सुनाओ ?

चित्रा—क्या अभी कुछ और कहना शेष रह गया है ?

अर्जुन—मुझे ऐसा लगता है, मानो मैं उसे अपने मन की आंखों से देख रहा हूँ। वह श्वेत अश्व पर सवार, बाएँ हाथ में सावधानी से बागडोर थामे, दाएँ हाथ में धनुष लिये जीत की देवी की तरह प्रसन्नता और आशाओं के पुष्प बरसाती जारही है, चतुर शेरनी की तरह, जो दहला देनेवाले प्रेम के साथ अपने बच्चे की रक्षा करती है। स्त्री की बाहें स्वतन्त्र शक्ति के सिवाय किसी और चीज से बँधी होने पर सुन्दर होती हैं। सदियों की लम्बी नींद से जागने वाले सर्प की तरह मेरा हृदय बेचैन है, आओ हम दोनों तेज चलने वाले घोड़ों पर

सवार होकर, साथ-साथ दौड़ें। मानो दो प्रकाशित नक्षत्र शीघ्रता से परिवर्तन हो रहे हैं। चलो, हरियाली के इस स्वप्न सदृश्य जीवन से मस्त कर देने वाले सन्नाटे की रजाई के नीचे से निकलें, यहाँ तो दम घुटा जा रहा है।

चित्रा—सच कहना यदि मैं किसी जादू के प्रभाव से अपने इस दीखने वाले मोहक सौंदर्य को समाप्त कर दूं जो दुनियां की तीखी खूँखार दृष्टि से छिपाना पड़ता है, यदि माँगे के वस्त्रों की तरह इसे अपने शरीर से उतार फेंके तो क्या तुम मेरी इस आग को बुझाकर देख सकोगे ? यदि मैं हृदयों को लुभाने वाले और मन को आकर्षित करलेने वाले आकर्षण को छोड़कर साहसी हृदय के साथ योधा बन कर खड़ी हो जाऊँ, यदि मैं वैल की तरह मिट्टी में लोटना छोड़ दूं और स्वर्ग की चोटी की तरह अपने सर को ऊँचा रखूं तो क्या मैं एक पुरुष की आँखों को अपनी ओर आकर्षित कर सकूंगी ? नहीं ! तुम किसी प्रकार भी इस दृश्य को सहन नहीं कर सकते। श्रेष्ठ यही है कि मैं दिखावटी तरुणाई के वस्त्रों को अपने चारों ओर लपेटे रहूँ। सन्तोष और विश्वास के साथ तुम्हारा मार्ग ताकूं, और जब तुम वापिस आओ तो उस पूर्ण सौन्दर्य के शरीर सदृश्य कटोरे में तुम्हारे लिये आनन्ददायक सोमरस उपस्थित करूँ ! फिर जब मैं बूढ़ी हो जाऊँ तो विनती और धन्यवाद के साथ उस रूप को स्वीकार करलूँ जो मुझे दिया जाय भगवान की ओर से। क्या तुम्हारी बहादुर आत्मा उससे प्रसन्न होगी कि रात का साथी दिन को बलवान बनने की इच्छा रखे और गर्व के साथ बांया हाथ दाहिने हाथ की सहायता में हाथ बटा ले।

अर्जुन—मैं तुमको पूरी तरह समझ सकने में असमर्थ रहा हूँ, तुम मुझे उस देवी की तरह प्रतीत होती हो जो किसी सुनहरी मूर्ति में छिपी हुई हो। मैं तुम्हें छू नहीं सकता और न तुम्हारी अनमोल भेंटों का बदला ही चुका सकता हूँ। मेरा प्रेम अधूरा है, मुझे तुम्हारी कातर दृष्टि की गहराई में, तुम्हारे चंचल शब्दों में जो अपने ही अर्थ पर हँसते हैं एक ऐसे जीवन की झलक स्पष्ट दिखाई देती है जो अपने सौंदर्य के आकर्षण को नष्ट कर देने और दिखावे के कल्पित 'नकाव' को उलट कर दर्द भरे भोले संगीत में उभरने की चेष्टा कर रहा है ! वह भेष बदल कर अपने चाहने वाले की ओर आता है। सच्चाई का पहला बयान केवल धोखा

है। एक समय आता है कि वह अपने सारे आभूषण एक दम उतार फेंकती है और अपने घूंघट को हटा कर अपने वास्तविक रूप में दिखाई देती है। मैं सच्चाई की वास्तविकता को देखना अधिक पसंद करता हूँ। मेरी प्रेमिका ! अश्रु क्यों बहाने लगीं। तुमने हाथों से अपने चेहरे को क्यों छिपा लिया ? क्या मेरी बातों से ठेस लगी ? जो कुछ मैंने कहा उसे भूल जाओ ! मैं हर दशा में प्रसन्न रहूँगा। सौंदर्य के हर क्षण को मेरे पास आने दो, बिल्कुल उसी चहचहाते पक्षी की तरह जो कभी-कभी सन्नाटे को भी तोड़ कर हवा में एक लहर दौड़ा देता है। मुझे अपनी आशाओं के साथ सौन्दर्य के सरोवर के किनारे आयु पर्यन्त बैठा रहने दो !

नवाँ दृश्य

चित्रा—मेरे पति ! क्या प्याला अपनी अन्तिम बूंद खो चुका ? क्या सचमुच सीमा समाप्त हो गई ? नहीं ! अभी कुछ और शेष है और वह तुम्हारे चरणों में मेरी अन्तिम भेट है। मेरे हृदय के देवता ! मैं स्वर्ग की बाटिका से तुम्हारी पूजा के हेतु पुष्प लाई थी, जो पूजा में चढ़ा दिये गये। यदि वह पुष्प मुरझा गये हैं तो लाओ इन्हें मन्दिर के बाहर फेंक दूं !

(पुरुष के वस्त्रों को उतार देती है)

अब अपनी पुजारिन को दया की दृष्टि से देखो। मैं उतनी सुन्दर नहीं हूँ जितने वह पुष्प थे, जिनसे मैं पूजा करती थी। मुझ में बहुत से चिन्ह हैं, काले-काले। मैं संसार के लम्बे मार्ग की मुसाफिर हूँ, मेरे कपड़े धूल से भरे हैं और तलुए काटों से लहूलुहान हैं। मैं उन पुष्पों का-सा सौन्दर्य और क्षण भर का विशुद्ध जीवन कहाँ से लाऊँ ? बहादुर ! जो भेंट मैं तुम्हारे चरणों में अर्पण कर सकती हूँ वह एक नारी का हृदय है, जिसमें एक लड़की के सारे सुख, सारे कष्ट, सारी प्रसन्नताएँ, सारी प्रार्थनाएँ, सारी आशाएँ, सारे अरमान एकत्रित हैं, जो प्रेमभरा स्थायी जीवन प्राप्त करने की इच्छा करती है। पर इसमें एक बड़ी भारी कमी छिपी है, और यह कमी है उसका सौन्दर्य। पुष्प अपने भाग की सेवा पूरी कर चुके ! अब मेरे प्राणेश्वर ! आने वाले समय के लिए मेरी सेवाएँ स्वीकार करो।

मैं राजकुमारी चित्रा हूँ, सम्भव है, तुम्हें वह दिन याद हो जब एक नारी आभूषणों से लदी-फदी सौंदर्य बिखेरे शिव देवता के मन्दिर में सेवा के लिये उपस्थित हुई थी, वह लज्जाहीन नारी पुरुष की तरह तुम्हारे पास प्रेम करने आई थी, तुमने बहुत अच्छा किया कि उसे ठुकरा दिया। मेरे पति ! मैं वही नारी हूँ। वह मेरा स्वांग था। इसके बाद देवताओं की दया से मुझे सालभर के लिये ऐसी मोहिनी मूरत दी गई जो सम्भवतः किसी भाग्यवान को शायद ही मिली हो। इसी धोखे के रूप से मैंने योधा के हृदय पर विजय प्राप्त की। अब मैं, विश्वास करें, वह नारी नहीं हूँ।

मैं चित्रा हूँ, देवी नहीं, जिसकी पूजा की जाय, लेकिन इतनी गिरी और दया की पात्र भी नहीं कि मुझे पतंगे की तरह दूर झटक दिया जाय। मेरा मूल्य उस समय प्रगट होगा जब तुम भयानक, बीहड़ और डरावने मार्ग में मुझे साथ रख सको और जीवन की आवश्यकताओं में भाग लेने की आज्ञा दो। पर पूरी तरह मेरी वास्तविकता उस समय प्रगट होगी, जब मैं तुम्हारे बालक को जिसे मैं अपने गर्भ में पाल रही हूँ तुम्हारे पास भेजूंगी, उसको मैं दूसरा अर्जुन बनाऊँगी। आज तो मैं केवल एक ही वस्तु आपको दे सकती हूँ और वह है राजकुमारी चित्रा !

अर्जुन—मोहनी मेरा जीवन भरपूर है।

बैकुण्ठ का पोथा

पात्र परिचय

बैकुण्ठ	लेखक
अविनाश	बैकुण्ठ का छोटा भाई
ईशान	बैकुण्ठ का नौकर
केदार	अविनाश का सहपाठी
तीन कौड़ी	केदार का सहयोगी

प्रथम दृश्य

केदार और तीन कौड़ी

केदार—अविनाश तेरा नाम सुनते ही बाँसों उछलता है—तीन कौड़ी ?

तीन कौड़ी—वह आदमी को पहिचानता है, सम्भवतः मेरे जैसा मूर्ख वह नहीं है।

केदार—पर अब मुझ से इधर-उधर नहीं घूमा जाता। मैंने निश्चय कर लिया है कि अपनी साली के साथ उसका विवाह कराके ही इस जगह रहूँगा।

तीन कौड़ी—पर भाई साहब, तुम से एक जगह टिका भी तो नहीं जाता, तुम्हारे पैरों में तो चक्कर है, जिसके कारण तुम हर समय घूमते रहते हो, और शायद अन्त तक घूमते रहोगे।

केदार—मैं आया तो था अविनाश के भाई बैकुण्ठ को वश में करने, पर तू ही बता यहाँ मेरी क्या दशा हुई ! कौन जानता था कि बुड्ढा लेखक है। देख तो इतना बड़ा पोथा मुझे पढ़ने के लिये दे गया है।

तीन कौड़ी—अरे बाप रे ! तुम तो मूस की तरह चोरी का माल खाने आये थे, पर लगता है कि तुम स्वयं ही चूहेदानी में फँस गए हो, है ना !

केदार—पर तू मेरा बना-बनाया खेल चौपट न करना।

तीन कौड़ी—लेकिन जब तुम अकेले ही चौपट कर सकते हो तो इसकी आवश्यकता क्या पड़ेगी।

केदार—तू मेरी बात याद रख, ऐसे काम जल्दबाजी में नहीं बना करते। जानता है गणेश जी को सिद्धदाता क्यों कहा गया है ? वे मोटे आदमी हैं, खूब जम के बैठते हैं, देखने से प्रतीत होता है कि उन्हें किसी से मतलब नहीं।

तीन कौड़ी—पर उनका मूस—

केदार—फिर मुँह बाद ! उजड्ड कोड़िया, भाग अभागे यहाँ से।

तीन कौड़ी—जाता हूँ भाई साहब, पर मुझे बिसरा मत देना, समय पर याद कर लेना, अच्छा !

बैकुण्ठ का प्रवेश

बैकुण्ठ—केदार बाबू देख रहे हैं, ना ?

केदार—जी, मन से देख रहा हूँ, पर मेरा विचार है, क्या नाम है भला, पुस्तक का नाम कुछ बड़ा हो गया है ।

बैकुण्ठ—इसकी चिन्ता न करनी चाहिये, बड़ा नाम होने से पुस्तक में क्या है, यह साफ-साफ समझ में उसके नाम से ही आ जाता है । 'पूर्वी और पश्चमी, नूतन और प्राचीन, संगीत शास्त्र की उत्पत्ति और इतिहास तथा नूतन सार्वभौमिक उच्चारण लिपि का लघु और सरल आदर्श ।' भला इसमें क्या बात छूट गयी ।

केदार—छूटा तो कुछ नहीं, बैकुण्ठ बाबू, पर पुस्तक का नाम, क्या नाम है भला ? सब कुछ छोड़कर ही होना चाहिये । वैसे पुस्तक लिखी बहुत सुन्दर है, पढ़ते-पढ़ते रोमांच हो जाता है जी !

बैकुण्ठ—रोमांच ! ही-ही-ही-ही ! आप उपहास कर रहे हैं ?

केदार—भला आपसे मैं हास्य कर सकता हूँ !

बैकुण्ठ—ही-ही-ही-ही ! है तो हास्य का ही विषय । यह मेरा पागलपन है । संगीत की उत्पत्ति और इतिहास मिट्टी है मिट्टी । लाइये पाण्डु लिपि, मुझ बूढ़े को बनाइये मत !

केदार—हँसी ! भला हँसी क्या कोई दो-दो घण्टे तक कर सकता है । मैं कब से आपकी पुस्तक लेकर बैठा हूँ, सोचिये तो तनिक । इस तरह सो जो है सो राम के बनवास को भी क्या नाम भला उसका, कैकयी का हास्य कह सकते हैं !

बैकुण्ठ—ही-ही-ही-ही ! आप बात बनाने में तो खूब कमाल करते हैं ?

केदार—लेकिन बैकुण्ठ बाबू, मेरी बात हँसी की बात नहीं है, भला क्या नाम है उसका, कहीं-कहीं लिखा ही आपने ऐसा है कि वास्तव में रोमांच हो आता है । सो क्या नाम उसका आपके मुँह दर मुँह ही कहने की आदत है मेरी ।

बैकुण्ठ—अब मैं आपकी बात समझ गया। उस प्रकरण को लिखते समय मेरे नेत्र भी नम हो गये थे। यदि आपको कष्ट न हो तो मैं वहाँ का विवरण तनिक पढ़कर सुना दूँ।

केदार—कष्ट! खूब हैं साहब आप भी। क्या नाम उसका, मैं तो स्वयं ही आप से इसके लिये प्रार्थना करने वाला था। (स्वगत) साली निकल जाय नेक घर से, हे ईश! मुझे तब तक धीरज दो। मेरा भी फिर शुभ दिन आयेगा।

बैकुण्ठ—क्या कहा भला आपने?

केदार—कोई खास बात नहीं, मैं कह रहा था—क्या नाम भला उसका, साहित्य को वही पकड़ सकता है जो कछुवे की पकड़ जानता हो, यदि एक बार भी दाँत गड़ जाँय तो बस फिर छुटकारा कहाँ?

बैकुण्ठ—ही-ही-ही-ही। साहित्य की पकड़ और कछुवे की पकड़! बड़ी मजेदार होती हैं आपकी बातें। ये बात रही, अच्छा, अब सुनिये—'हे जन्म-दात्री भारत भूमि, एक समय था जब तुम वीर्यवान् महापुरुषों की तपोभूमि थीं। उस समय राजा का राज्य भी तप था और कवि का कवित्व भी तप का ही नामान्तर था। तपस्वी जनक राजा राज्य-शासक थे और तपस्वी बाल्मीकि रामायण गा-गाकर तप के प्रभाव का प्रचार करते थे। उस समय पूर्ण ज्ञान,पूर्ण विद्या, संसार का पूर्ण कर्तव्य और जीवन का पूर्ण आनन्द साधना की सामग्री थी। तब लोगों के निवास स्थान भी आश्रम थे और बन भी आश्रम थे। आज जो नाट्यशालाओं में कुल त्यागिनी संगीत विद्या विदेशी-मुरली के फटे कण्ठ से आर्त-नाद कर रही है और क्लबों में जाकर सुरा-सरोवर में पाँव फिसला कर डूब मरना चाहती है, उसी संगीत ने किसी दिन भारत भूमि के उदर से जन्म लेकर उसे स्वर्ग बना दिया था। वही तो वह संगीत था जिसने नारद की बीणा की स्वर-लहरी से निकलकर वैकुण्ठाधिपति के चरण कमलों से निकले हुए जलश्रोत को मरु यमलोक में प्रवाहित कर दिया था। हे अभागिनी जन्मभूमि,आज तुम सूखे, गरीब और बीमार शिशुओं की माँ हो। आज तुम्हारे उसी पुण्य के नाम पर मूर्ख मिट्टी की पुतलियाँ बना रहे हैं, आज न साधना है, न सिद्धि; आज तो विद्या का स्थान बातों ने पौरुष का स्थान घमंड ने और तपस्या का स्थान

चतुराई ने ले लिया है। पत्थर जितनी मजबूत नौका जो महा समुद्रों की उत्ताल तरंगों में होकर अडिग पार निकल जाया करती थी, आज तो उसका पता भी नहीं है। केवल हम कुछ बालक मिलकर उस नौका के पुरानी लकड़ी के टुकड़ों को लेकर छिछली और गन्दी तलैयाओं में खेल रहे हैं, और शिशु-सुलभ मोह से अज्ञान सुलभ घमंड में सोच रहे हैं कि ये पुराने लकड़ी के टुकड़े ही सागर पार करने वाली नौका हैं; हम ही वह श्रेष्ठ पुरुष हैं और हमारे गाँव की वह गन्दगी से भरी तलैया ही वह महा समुद्र है।'

ईशान का प्रवेश

ईशान—खाना आ गया, बाबू सा'ब।

बैकुण्ठ—थोड़ी प्रतीक्षा करे, कह दो जाकर।

ईशान—भला बैठने और प्रतीक्षा के लिये किस से कहूँ,भोजन आ गया है।

केदार—क्या नाम भला उसका, अब उठा जाय!

बैकुण्ठ—अरे! आप उठ क्यों रहे हैं?

ईशान—नहीं तो, उनके जाने की क्या आवश्यकता है! बस रातभर बैठे-बैठे तुम्हारी किताब सुनते रहें! (केदार से) बाबू सा'ब,जाओ, अपने घर जाओ। बेकार में इनका माथा गरम होगा।

केदार—बैकुण्ठ बाबू! ये आपके कौन हैं?

बैकुण्ठ—अरे नौकर है अपना, इसना।

केदार—ठीक, क्या नाम भला इसका, बातें तो दो टूक करता है।

बैकुण्ठ—ही-ही-ही-ही! उसका आप ख्याल न करें, पुराना आदमी है, बहुत दिन से है, इसलिए मुझे मानता-वानता बिल्कुल नहीं है।

केदार—आप तो पुराने हैं, पर मेरी तो जान पहिचान बिल्कुल नयी है, इसलिए मुझे भी मानता-वानता नहीं होगा। क्या नाम भला उसका, आपने शायद उसकी बात सुनी नहीं, वह भोजन लाया है आपके लिये।

बैकुण्ठ—तनिक बैठिये तो; अभी अधिक रात नहीं गयी, बस यह अध्याय समाप्त करे देता हूँ।

केदार—बैकुण्ठ बाबू मुझ में और आप में कितना अन्तर है? खाना

आपके घर आकर बैठा रहता है;पर,क्या नाम भला उसका,हमारे यहाँ तो उसका व्यवहार कुछ और ही ढंग का होता है। जब मैं कालेज में पढ़ता था तब मैंने, क्या नाम भला उसका, तब मैंने एक ऊँचे टांड पर अपनी आशाओं की बेल चढ़ाई थीं, उसमें बड़ी-बड़ी लौकियाँ एक-एक दो-दो हाथ के फल सदृश्य लगी भी थीं। मगर क्या नाम भला उसका, जड़ को पानी नहीं मिला, इससे उसके भीतर तो रस पहुँचा ही नहीं, सो भीतर से सब पोले के पोले ही रह गये। अब जो है सो रात-दिन हाय पैसा हाय अन्न यही चीखना काम रह गया है। भीतर जो कुछ सार था क्या नाम भला उसका, सूख कर काँटा हो गया है, बाबू वैकुण्ठ जी !

वैकुण्ठ—ओह ! बाप रे, इससे बड़ा दुख तो अन्य कुछ हो ही नहीं सकता, तिस पर भी मजे की बात है कि आपको हर समय प्रसन्न देखता हूँ। सचमुच आप महा मानव हैं।(केदार का हाथ पकड़कर) देखिये, यदि मैं अपनी छोटी ताकत से तनिक भी आपकी सेवा कर सकूँ तो आप स्पष्ट कहिये, तनिक भी संकोच आदि···

केदार—क्या नाम भला उसका, वैकुण्ठ बाबू ! क्षमा कीजिए, मुझे आप रुपये पैसे या लक्ष्मी का लालची बिल्कुल मत समझियेगा। आपके सत्संग में आज जो मुझे सुख मिला है, उसे मैं सोच भी नहीं सकता ! उसके आगे धन-दौलत, रुपया पैसा, जो है सो भला, कुछ भी नहीं।

तीनकौड़ी का प्रवेश

तीनकौड़ी—(स्वगत) जब प्रसन्न होकर दे रहे हैं, तो ले लेना चाहिये।

केदार—(स्वगत) सब धूल कर दिया करा धरा, मूर्ख कहीं का !

वैकुण्ठ—भला केदार बाबू, यह लड़का कौन है ?

केदार—जिस तरह क्या नाम भला उसका, मूल के पीछे ब्याज लगा रहता है, यह मेरा वही है—यहाँ अपना ही बोझ नहीं उठता, क्या नाम भला उसका, भगवान ने यह और बला ऊपर से लाद दी।

तीनकौड़ी—बाबू जी, यह बैल हैं और मैं इनकी पूँछ हूँ, जब ये घास चरते हैं तो मैं इनकी मक्खियां उड़ाया करता हूँ और जब काम में सुस्ती लाने पर

किसान का डंडा चलता है तो पूँछ मरोड़ने की ताकत मुझ पर ही अजमाई जाती है।

बैकुण्ठ—ही-ही-ही-ही ! यह लड़का तो आपको खूब मिला है केदार जी ! यह अकेला बात नहीं करता, इसके आँख, कान, नाक, सभी तो बातें करते हैं ! केदार बाबू तनिक सुनिये, समय अधिक हो गया। यदि यहीं खा-पी लें तो बड़ा ठीक रहे।

केदार—नहीं-नहीं क्या नाम भला उसका, इतनी परेशानी आप न उठावें !

तीनकोड़ी—वाह जी वाह ! भला इसमें परेशानी और झंझट क्या है भला ? शुभ काम जितनी जल्दी हो जाय उतना ही अच्छा। खिलाने पिलाने में बस बाबू सा'ब को थोड़ी-सी परेशानी उठानी पड़ेगी। और यदि हमने खाया-पिया नहीं तो पूरी मुसीबत उठानी पड़ेगी हमें ! साफ बात है बाबू सा'ब भूख का समय काफी हो गया है।

बैकुण्ठ—ठीक बात है लल्ला जी, आज तुम ठीक से भोजन करो ! जब कोई आराम से पेट भर भोजन पाता है तो मुझे बड़ा सुख मिलता है।

केदार—अरे बैकुण्ठ बाबू इस छोकरे की भगवान ने क्या नाम भला उसकी आत्मा में बस एक जठराग्नि को ही पैदा किया है ! आपके इस आश्रम में आने के पश्चात् पेट नाम के गढ्डे की बात मैं तो कतई भूल ही जाता हूँ। बस ऐसा लगता है जैसे ज्ञान के भंडार में मेरा दिमाग जल्दी-जल्दी ज्ञान बटोरना चाह रहा है।

बैकुण्ठ—आपकी बातें बड़ी रसीली और मजेदार होती हैं—ही-ही-ही-ही ! बस-बस सब बात छोड़ कर आपकी दुनियां की तारीफ करनी पड़ती है।

तीनकोड़ी—बातों में डूब कर वास्तविक काम को न भूल जाइयेगा बैकुण्ठ बाबू ! भूख ने अपना काम बहुत देर से आरम्भ कर दिया है !

बैकुण्ठ—बहुत अच्छा जी, बहुत अच्छा। ओ रे, कहां गया रे इसनिया, ओ इसनिया ! कहाँ गया रे !

ईशान का प्रवेश

ईशान—जी, एक थे अब दो हो गये !

तीनकौड़ी—रुष्ट नहीं हुआ करते, भैया तुमको भी हिस्सा दूँगा, समझे !

ईशान—शायद अभी किताब सुनाई जा रही होगी !

वैकुण्ठ—(लज्जित होकर कापी छिपाते हुए) अरे भाई, किताब कहां है भला। देख इसनियां, समझदार है ना तू । ये दो बाबू हैं ना, इनके लिये भोजन ले आ, अच्छा, जा जल्दी कर !

ईशान—अब भोजन में कहां से लाऊं ?

तीनकौड़ी—हे भगवान !

वैकुण्ठ—अरे बात को समझकर भीतर जाकर नीरू से कह आ कि···

ईशान—ये नहीं कर सकता बाबू सा'ब, अब मैं जाकर चूल्हा सुलगाने के लिये उनसे नहीं कह सकता । तुम्हारा भोजन लिये वह अभी तक बैठी हुई है !

वैकुण्ठ—मेरा खाना लिये बैठी हुई है अभी तक, पर सोच तो सही, इनको बिना भोजन कराये मैं कैसे भोजन पा सकता हूँ । तू एक बार जाकर उससे कह तो सही ! कहने से···

ईशान—ये तो मैं खूब जानता हूँ कि कहने से वो तुरत चूल्हा जलाना आरम्भ कर देगी । पर क्या आपको नहीं मालूम कि आज एकादशी है, व्रत में क्यों उनको कष्ट देते हो बाबू सा'ब ! (केदार के प्रति) बाबू साहब आज उनका व्रत है इसलिये आज तो क्षमा कीजिये, और घर जाकर खा-पीकर आराम से सो जाइये ।

तीन कौड़ी—अरे भैया, किसी भी मामले में राय देना एक बात है, पर बिना खाने के खाया क्या जायेगा इस बात को समझना बड़ी टेढ़ी खीर है, तुम्हारा क्या तुमने तो राय दे डाली ।

केदार—अरे तीन कौड़ी तू चुप रह तनिक देर भई···बैकुण्ठ बाबू अब परेशान न हों, आज आप रहने दीजिये ।

वैकुण्ठ—ओरे इसना, देख तो भले आदमी, क्या तेरे कारण मुझे घर-बार त्यागकर जंगल की शरण लेनी पड़ेगी । घर पर कोई अतिथि आये तो तू उनको खाने-पीने भी नहीं देगा भले आदमी, यह कहाँ की सभ्यता है ? अरे मूर्ख कहीं के, चल-चल काला मुँह कर, दफा हो यहाँ से !

(ईशान का प्रस्थान)

तीन कौड़ी—आप तो बाबू साहब नाराज हो गये। मैंने सोचा था कि खिलाने-पिलाने में आपको कोई परेशानी न होगी, तभी तो···पर अब देखता हूँ कि आपको परेशानी और दिक्कत दोनों ही हैं। और फिर···

बैकुण्ठ—दिक्कत बिल्कुल नहीं, और न परेशानी! आज एकादशी है ना, सो निरुपमा का उपवास है!

तीनकौड़ी—निरुपमा···

बैकुण्ठ—निरुपमा मेरी विधवा बेटी है, सो उसने उपवास किया है आज।

केदार—बैकुण्ठ बाबू, आज क्या नाम है भला उसका, आज्ञा दीजिये, फिर कभी देखा जायेगा।

तीनकौड़ी—अरे भाई तनिक ठहरो तो जा कहाँ रहे हो! बैकुण्ठ बाबू, तनिक सुनिये इसमें लजाने की कोई बात नहीं। तमाम बंगाल के तीन कौड़ी अभागे हैं, अगर अन्नपूर्णा के भण्डार पर भी पहुँच जायँ तो वहाँ भी मामला गोल हो जाय। खैर कोई बात नहीं, आप ये बात मेरे ऊपर छोड़ दीजिये, मैं बड़ा बाजार जाकर पूरी-साग आदि लिये आता हूँ। परेशान होने की कोई ऐसी बात नहीं है।

केदार—(बनावटी क्रोध से) अरे तीनकौड़ी, जो है सो भला—इतने दिन तूने मेरा सत्संग किया, पर क्या नाम है भला, तेरा लालची स्वभाव दूर नहीं हुआ रे! (कुत्ते की पूँछ बारह साल नलकी में रही पर टेढ़ी की टेढ़ी!) आज से मैं तुम्हारा मुंह भी देखना पसन्द नहीं करता।

(प्रस्थान)

बैकुण्ठ—ओह, सुनिये-सुनिये, ऐसी कोई बात नहीं, आप तो नाराज हो गये केदार बाबू, बैठिये तो तनिक!

तीनकौड़ी—अभी आप उनकी चिन्ता न कीजिये, मैं खूब अच्छी तरह से इन्हें जानता हूँ। सैकिण्डों में उनका क्रोध शान्त करके अभी आपके सामने लाता हूँ। आप समझे नहीं, जब पेट में आग जलने लगती है तो मुंह से बातें भी गर्म निकलने लगती हैं।

बैकुण्ठ—ही-ही-ही-ही—! अरे भई वाह ! तुम्हारी बातें बड़ी मजेदार होती हैं। लो सुनो (जोर देते हुए) यह लो, तुम प्रबन्ध कर लाओ, कुछ विचार मन में मत लाना, समझे, ना !

तीनकौड़ी—कुछ नहीं, कुछ नहीं। अगर आप इससे अधिक भी दे देते तब भी मैं बिल्कुल विचार न करता। मेरा स्वभाव वैसा बिल्कुल नहीं है।

(प्रस्थान)

ईशान का प्रवेश

ईशान—बाबू ! (बैकुण्ठ चुप) बाबू ! (फिर चुप) बाबू सा'ब ! (फिर चुप) आपका सारा भोजन ठण्डा हो गया है।

बैकुण्ठ—(क्रोध से) चल भाग यहाँ से, मैं भोजन-वोजन नहीं करता !

ईशान—मुझे क्षमा कर दो बाबू सा'ब ! भोजन ठण्डा हुआ जा रहा है !

बैकुण्ठ—नहीं, मैं नहीं खा सकता।

ईशान—बाबू, तुम्हारे पैर पकड़ता हूँ, क्रोध न करो, भोजन करने उठो।

बैकुण्ठ—मैंने एक बार कह दिया, दफा हो यहाँ से, तंग मत कर मुझे, मैं नहीं खाऊँगा।

ईशान—अगर गलती हो गई है तो मेरे कान उमेठ दो अच्छी तरह बाबू !

अविनाश का प्रवेश

अविनाश—भाई साहब ! यहाँ बैठकर क्या लिखा जा रहा है भला ?

बैकुण्ठ—नहीं-नहीं, भला यहाँ बैठकर क्यों लिखने लगा ? इसना के साथ थोड़ी बातें कर रहा था। इसना जा मैं अभी थोड़ी देर में आया।

अविनाश—भाई सा'ब आज पगार के रुपये लाया हूँ—ये लो दस-दस के दस नोट और सौ का पाँच।

बैकुण्ठ—पाँच सौ को तुम अपने पास ही रखो अब।

अविनाश—क्यों भाई साहब भला ?

बैकुण्ठ—खर्चा-वर्चा की आवश्यकता भी हो सकती है न तुम्हें ?

अविनाश—जब आवश्यकता होगी तो आप से माँग लूंगा।

बैकुण्ठ—तो यहीं रख दो। तुम्हारे हाथ में रुपये देने से भी तो बचते नहीं

हैं। जो आता है उसी पर तुम विश्वास कर बैठते हो। अगर रुपया बचाना है तो सबसे पहले आदमियों से बचना चाहिये, आदमी पहिचानना बड़ा जरूरी होता है।

अविनाश—(हँसता हुआ) इसीलिए तो पगार तुम्हारे हाथ सौंपकर मैं निश्चिंत हो जाता हूँ, भाई साहब !

बैकुण्ठ—अरे तू हँसता क्यों है, भला मुझे आज तक कोई ठग सका है। तुम समझते हो, उस दिन जो मैंने 'स्वर सूत्रसार' पुस्तक खरीदी थी सो उसने मुझे ठग लिया, पर मैं एक बात साफ कह दूँ कि संगीत के सम्बन्ध में ऐसी प्राचीन पोथी कोई कहीं से ला दे तो मैं उसे मुँह माँगा इनाम दे सकता हूँ। हीरों से सारी पोथी तोली जाय तब भी उसके मूल्य के बराबर नहीं हो सकती ! तीन सौ रुपये में तो एक तरह से मुफ़्त ही मिल गई समझो।

अविनाश—मैंने उस पुस्तक के सम्बन्ध में आपसे कुछ कहा तो है नहीं।

बैकुण्ठ—तभी तो मैंने तुम्हारे मन की बात जानली, अन्यथा कम-से-कम एकादिबार अवश्य उसके सम्बन्ध में पूछते-पाछते, या उसे देखते-दाखते। तुमने तो बस समझ लिया बुड्ढे को ठग लिया गया है।

अविनाश—भाई साहब, उसमें है ही क्या, अगर उल्टा पल्टा जाता तो मिट्टी हो जाती उसकी।

बैकुण्ठ—और बात क्या है, कीमत ही इस बात की है उसकी ! उसकी मिट्टी क्या आज की मिट्टी है ? वह ऐसी मिट्टी है कि लाख रुपये देकर भी यदि माथे से लगाने को मिल जाय तो भाग्य जग जांय !

अविनाश—भाई साहब, पिचत्तर रुपये इस महीने में मुझे देने होंगे ?

बैकुण्ठ—भला तू पिचत्तर रुपयों का क्या करेगा ? (अविनाश चुप) समझ गया, नीलाम में जाकर विलायती पौधे खरीदेगा, है ना ! अरे बड़ी वाहियात आदत पड़ गई हैं तुझ को। दिन-रात मालियों का मेला-सा लगा रहता है। न जाने कितने ही पौधों के लोग-बाग झूठे-झूठे नाम बताकर तुझे ठग ले जाते हैं, अरे हद भी तो कोई होती है ! फिर भी तू ब्याह नहीं करता है !

अविनाश—ब्याह से तो भाई साहब, पौधों की आदत अच्छी। उमर तो

मेरी चालीस की हो गई, भला व्याह किस तरह करलूं ।

वैकुण्ठ—क्या कहा, अरे अभी से तेरी उमर चालीस की हो गई रे !

अविनाश—अभी से कैसे भला ? समय तो ठीक पूरा ही लगा है, जैसे दूसरों को पूरा समय लगता है ।

वैकुण्ठ—असल में ये सब लापरवाही मेरी ही ओर से हुई है, अरे भाई लोग मुझे स्वार्थी समझेंगे ! छी-छी कितनी बुरी बात है । अब व्याह के लिये और देर करना ठीक नहीं है ।

अविनाश—एक आदमी मेरी प्रतीक्षा में बैठा है, में तो अब चला भाई सा' ब !

(प्रस्थान)

वैकुण्ठ—अवश्य वही माली होगा, मानिक तल्ला वाला ! पौधों का लड़के को एक तरह का नशा हो गया है ।

केदार का प्रवेश

वैकुण्ठ—ओह ! आप लौट आये, मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई । अच्छा अब आपकी क्या···

केदार—बैकुण्ठ बाबू, क्या नाम है भला उसका, आपके पुस्तकालय में संगीत के सम्बन्ध में शायद सब प्रकार की पुस्तकें हों, पर मेरा विचार है, चीन देश का संगीत-शास्त्र सम्भवतः आपके यहाँ न हो ?

वैकुण्ठ—(अत्यन्त चंचल मन से) नहीं तो भाई, मेरे पुस्तकालय में तो नहीं है, क्या कहीं उसका पता मिला है ?

केदार—पता क्या निकालता, एक हाथ की लिखी पुस्तक का ही जुगाड़ लगा लाया हूँ। यह पुस्तक, जो है सो भला है बड़ी अमूल्य। यह देखिये (स्वगत) एक चीनी जूता वाले से उसका पुराना वही-खाता माँग लाया हूँ ।

वैकुण्ठ—अरे, भाई ये तो खास चीनी भाषा में लिखी हुई अत्यन्त पुरानी पोथी प्रतीत होती है ! कुछ समझा नहीं जा सकता, विस्मय की बात है ! अक्षर भी बड़े मोती से जड़े हैं, कितनी स्पष्ट लिखाई है। वाह, वाह, बड़े काम की चीज दिखाई देती है । भला केदार बाबू, इसका मूल्य कितना है ?

केदार—क्षमा कीजिये, क्या नाम भला उसका, मूल्य-वूल्य का नाम......

बैकुण्ठ—भला ये कैसे हो सकता है केदार बाबू ! आप मेरे लिये इतना कष्ट उठाकर चीन देश की भाषा में लिखी पोथी तलाश लावें यह बात क्या कम है। आपने सदैव-सदैव के लिए मुझे खरीद लिया है। उस पर और अधिक भार मत चढ़ाइये, सह न सकूंगा।

केदार—(लम्बी साँस लेकर)—पर क्या कहूँ, शायद मूल्य में मैं ठग लिया गया हूँ।

बैकुण्ठ—जी नहीं, केवल ठगने का आपको वहम हो गया है। इन सब चीजों का मूल्य मैं जानता हूँ। बड़ा भारी मूल्य देने के बाद ऐसी चीजें मिल पाती हैं।

केदार—लेकिन वह तो क्या नाम है भला उसका, सौ रुपया माँग बैठा था। मैंने अस्सी कह दिया शायद पचासी में मामला निपट जाय !

बैकुण्ठ—पचासी ! अरे फिर तो धूल की कीमत में मिल रही है, धूल की कीमत में ! अभी जाकर उसे रुपये दे आओ, नहीं तो पीछे अगर मुकर गया तो कठिनाई होगी। लगता है कोई संकट आ गया है तभी तो इसे बेच रहा है, अन्यथा तो···।

केदार—पूरे संकट में। नहीं तो आप जानते हैं कि क्या नाम भला उसका, वह कोई भला ऐसी चीज बेच सकता है। सुना है देश में उसकी तीन सालियाँ हैं, तीनों का ही एक खानदानी चीनी से विवाह कर देना पड़ेगा। कन्यादान भी एक दान है, पर सालीदान तो दान नहीं है। बड़े भारी संकट में फंसा हुआ है, बिचारा।

बैकुण्ठ—(हंसते हुए) ओहो... ! आप तो बड़े रसिक मालूम होते हैं केदार बाबू।

केदार—वैकुण्ठ बाबू, रसिक बनना पड़ा है मुझे, रसिक। स्वयं भोगी हूँ न मैं। क्या नाम भला उसका, ससुराल में सालियाँ कितनी सुन्दर होती हैं। सालियाँ जैसी वस्तु संसार में मिलना कठिन ही नहीं महा कठिन है, लेकिन यदि वहाँ से हटाकर एकदम सिर पर आ जायँ तो क्या नाम भला उसका, बोझा

सम्हालना बड़ा कठिन हो जाता है ।

बैकुण्ठ—बोझा सम्हालना बड़ा कठिन हो जाय—ही-ही-ही-ही, क्या कहने आपके !

केदार—श्रीमान् जी मुझसे तो बोझा वास्तव में नहीं सम्हलता, एक तो साली फिर उसकी सुन्दरता बिना किसी दोष के, यानी सम्पूर्ण-सुन्दर। किसी भी काम के लिए आँख उठाता हूँ तो पत्नी सोचती है, साली को तलाश कर रहा हूँ और आँखें बन्द करता हूँ तो क्या नाम भला उसका, पत्नी सोचती है साली का ध्यान कर रहा हूँ। सोचिये तो तनिक ! और यदि खाँसता हूँ तो घर की मालकिन सोचती है, अवश्य इसमें कोई न कोई रहस्य छिपा है, और क्या नाम भला उसका, यदि खाँसी दबाता हूँ तो और भी अधिक न जाने क्या क्या सन्देह किया जाता है ! भला आप ही बताइये कि अब······

अविनाश का प्रवेश

अविनाश—भाईसा'ब ईशान कह रहा है, उधर आपका भोजन ठण्डा हो रहा है और आप हैं कि इतिहास की चर्चा कर रहे हैं अभी तक ।

बैकुण्ठ—इतिहास, वितिहास कुछ नहीं, यों ही तनिक केदार बाबू से गप-शप कर रहा हूँ ।

अविनाश—ओह केदार जी, आप यहाँ कैसे ? क्या भाई साहब पर कोई चक्कर चला रहे हो ?

केदार—हा-हा-हा-हा ! अरे अविनाश तुम तो सदैव बच्चे ही रहे हो भाई !

अविनाश—अरे भाई साहब आपको इतिहास सुनाने के लिए अन्य कोई आदमी नहीं मिला क्या जो केदार को पकड़कर बैठ गये ? यह ऐसे हजरत हैं कि यदि किसी को पकड़कर बैठ जाते हैं, तो फिर छोड़ने का नाम नहीं लिया करते !

बैकुण्ठ—छी···छी ! अविनाश, तुम्हें ऐसी बातें शोभा नही देतीं ।

केदार—ओह बैकुण्ठ बाबू आप तो परेशान हो गये तनिक-सी बात से ! अविनाश मेरा स्कूल का सहपाठी रहा है न, सो जब मिला तभी हँसी-मजाक की बात आरम्भ कर देता है, भला इसमें बुरा क्या है बैकुण्ठ बाबू ।

अविनाश—पर भैया, मेरा मजाक फिर भी तुम्हारे मजाक से बहुत हल्का

होता है। अभी उस दिन तुम रुपये ले गये थे, लगता है आज फिर तुम्हें रुपयों की आवश्यकता आ पड़ी है, सो भाई साहब को नया इतिहास सुनाने लगे हो।

केदार—भाई वाह अविनाश भैया ! कभी-कभी तो तुम्हारी बातें बावन तोले पाव रत्ती सही उतरती हैं, पता नहीं बैकुण्ठ बाबू क्या सोचते होंगे···!

बैकुण्ठ—(चंचल होकर) अरे केदार बाबू बड़ी बात कही तुमने, मैं कुछ भी ख्याल नहीं करता ! पर अविनाश तुम्हारा हास्य बड़ा नीरस होता है, कम-से-कम मित्र के साथ तो···!

अविनाश—भाई साहब, मैं हास्य इनसे बिल्कुल नहीं करता।

बैकुण्ठ—अरे अवि कहीं के, अच्छा हास्य नहीं, केदार बाबू मेरे घर आए हैं यह मेरे लिये सौभाग्य की बात है रे। तू मेरे सामने इनका अपमान करता है !

केदार—ह-ह-ह-ह ! आप तो रुष्ट हो गये बैकुण्ठ बाबू !

अविनाश—आप तो रुष्ट हो गये भाई सा'ब ! केदार का किस बात का अपमान !

बैकुण्ठ—चुप फिर बोले अवि ! जाओ यहाँ से, मैं तुमसे बात नहीं करना चाहता !

अविनाश—कसूर हुआ, भाई साहब, क्षमा करो। (बैकुण्ठ चुप) क्षमा करो भाई साहब त्रुटि हो गई। (बैकुण्ठ चुप) भाई साहब आप नाराज न होइये, क्षमा कर दीजिये !

बैकुण्ठ—अगर क्षमा चाहता है तो सुन। केदार बाबू की एक विवाह योग्य साली है, अतीव सुन्दरी, और तेरा विवाह भी अभी तक नहीं हुआ है, समझा ना मेरी बात !

केदार—योग्य है सब ओर से, और आप भी योग्य हैं, इसलिये मना करने की कोई बात ही नहीं उठती।

बैकुण्ठ—आप उचित कहते हैं, मेरे मन की एक ही बात कही आपने केदार बाबू।

अविनाश—पर भाई साहब मेरा मन कुछ और ही कहता है, मेरा मन विवाह करना नहीं चाहता है, पता नहीं क्या बात है।

केदार—भाई वाह, अविनाश भाई ! तुम्हारा हास्य खूब रहता है । ब्याह करने से पहले ही मना, क्या कहने तुम्हारे ! क्या नाम भला उसका, विवाह करने के पश्चात् यदि मना करते तो कुछ अर्थ भी लगाया जाता ।

बैकुण्ठ—लड़की तो रूपवती है !

अविनाश—आपने उसे देखा है क्या ?

बैकुण्ठ—जब केदार बाबू स्वयं कह रहे हैं, तब देखने की आवश्यकता ?

(अविनाश चुप रहता है)

केदार—कैसे विश्वास दिलाऊँ भई ! क्या नाम है भला उसका, वह मेरे परिवार की नहीं, मेरी साली है, मेरी पत्नी की छोटी बहिन ! भला तुप मेरा चेहरा देखकर डर क्यों गये, यकीन रखो मेरी कोई नहीं, केवल साली है । एक बार चल कर अपनी आँखों से देख आओ न !

बैकुण्ठ—इससे अच्छा और क्या हो सकता है, अवि ? तुम जाकर स्वयं देख आओ ।

अविनाश—जब घर में मैं बाहर के किसी अन्य आदमी को लाना ही नहीं चाहता, तब देख कर क्या करूंगा !

केदार—ये बात बिल्कुल ठीक है, लेकिन क्या नाम है भला उसका, बाहर की किसी की ओर देखने में भला हर्ज भी क्या है ? एक बार यदि देख आओ तो न घर का कोई नुकसान होगा न बाहर वाले किसी का कुछ घिस जायेगा ।

अविनाश—यदि यही बात है तो फिर देख आऊँगा । भाई साहब अब, तुम उठो, भोजन करलो । नीरु ने मुझे भेजा है ।

बैकुण्ठ—पर पहले केदार बाबू के लिये प्रबन्ध होना आवश्यक है ।

केदार—आप भी खूब हैं बैकुण्ठ बाबू !

अविनाश—बिना कहे भोजन स्वयं तो आ नहीं सकता, ईशान को बुलाकर तनिक कहना······ ।

केदार—अरे भाई, नहीं, नहीं ! ईशान, नैऋत की कोई आवश्यकता नहीं, उससे पहले ही बात हो चुकी है भाई ।

पूड़ी मिठाई का दोना हाथ में लिए तीन कौड़ी का प्रवेश

तीन कौड़ी—यह लो ले आया भोज्य सामग्री, बैठ जाओ मैं परसता हूँ।

बैकुण्ठ—अर भई तीन कौड़ी, तुम भी बैठ जाओ, परोसने का प्रबन्ध मैं कराये देता हूँ।

तीन कौड़ी—आप परेशान क्यों होते हैं बाबू सा'ब ! मैं तो पहले ही जीम आया हूँ।

केदार—अरे तू बड़ा बेअदब है, पेटू कहीं का !

तीन कौड़ी—लाचारी है भाई सा'ब। पैदा होते ही माँ मर गई, दूध के लिये रोया, पर देता कौन ! जहाँ जाता हूँ पहले ही चौपट हो जाता है। चाहे काम कितना ही अच्छा करूँ पर बाधा अवश्य आयेगी। आप ही अब कहो सन्तोष करूँ तो किसके लिये !

अविनाश—अरे केदार भाई, इस छोकरे को कहाँ से पकड़ लाये तुम ?

केदार—भला क्या नाम उसका, इसके लिये देश-देशान्तर तो घूमना पड़ा नहीं, अपने आप ही संयोग से आगया है। अब इसे छोड़ूं भी तो कहाँ छोड़ूँ। क्या नाम भला उसका मैं तो इसी चिन्ता में घुला जा रहा हूँ।

अविनाश—भाई सा'ब आप भोजन करने चलें।

बैकुण्ठ—सो ऐसा कैसे हो सकता है, पहले इसे तो चुकवा लें।

केदार—सो किसी तरह नहीं हो सकता, आप जाइये भोजन पाने, हम लोग तो······

बैकुण्ठ—आप लजाइये मत, खिलाने-पिलाने में मुझे बड़ा आनंद आता है।

तीन कौड़ी—अरे इसमें क्या है, आप कल भी देख सकते हैं, हम लोग कहीं भागे थोड़े ही जा रहे हैं !

केदार—अरे तीन कौड़ी—भला क्या नाम है उसका, अरे तू ऐसा कर, दौने को लेकर घर चला चल ! वहीं हम लोग खा-पी लेंगे, बेकार में इन को कष्ट हो रहा है, अभी तक खाना भी नहीं खाया है इन्होंने !

तीन कौड़ी—अरे भाई अब कष्ट किस बात का, कल की कल देखी जायगी।

(अविनाश हँस देता है)

बैकुण्ठ—केदार बाबू, आपका यह लड़का खूब बातें करता है,आपको खाना-पीना तो यहीं करना पड़ेगा, मुझे छोकरा बहुत प्यारा लगता है !

ईशान का प्रवेश

ईशान—बाबू सा'ब !

बैकुण्ठ—अभी आया भैया, अभी आया। ओह तो आप लोग जाने पर तुले हैं, अच्छा जाइये, कल······

तीन कौड़ी—कल नहीं, आपको व्यर्थ में कष्ट उठाना पड़ेगा।

(बैकुण्ठ अविनाश और ईशान का प्रस्थान)

तीन कौड़ी—(केदार से) भाई सा'ब यह लो बाकी के रुपये सम्हालो। मेरे पास ऐसी चीज ठहरती ही नहीं है।

केदार—पता नहीं क्या समझ कर तेरे बाप ने तेरा नाम तीन कौड़ी रख दिया, पर है तो हीरालाल। समझा न मेरी बात।

(दोनों का प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

केदार और अविनाश

केदार—अरे तो, आज चल दिया, क्या नाम भला उसका, बड़ा तंग किया तुम्हें।

अविनाश—बैठो न तनिक, तंग की क्या बात है। सुनो तो, जब मैं चला आया था उसके पश्चात् मनोरमा क्या कुछ मेरे बारे में कह रही थी ?

केदार—अरे क्या नाम है भला उसका, वह क्या कहेगी ? जब तुम्हारा नाम सुनती है तो उसके कपोल विलायती टमाटर जैसे लाल हो जाते हैं।

अविनाश—(हँसते-हँसते) ओहो ! इतनी लाज !

केदार—जी हाँ ! क्या नाम है भला उसका, खराब लक्षण तो यही हैं !

अविनाश—(केदार को धक्का देकर)—अच्छा ! मालूम होता है तुम्हारा माथा खराब हो गया है, सुनूँ तो भला, इसमें कौन से खराब लक्षण हो गये !

केदार—अरे भाई, क्या नाम भला उसका, यह नियम तो स्वाभाविक है।

जैसे तीर छूटता है ना, पहले पीछे की ओर खूब खिचाव होता है, उसके पश्चात् क्या नाम है उसका भला, जब चुटकी से छूट जाता है तो साँप की तरह हवा में दौड़ जाता है। आरम्भ में जहाँ लाज अधिक दिखाई दे, समझ लो प्रेम की दौड़ तीर से कम नहीं है।

अविनाश—मालूम पड़ता है केदार, तुमने मेरा नाम लेकर उससे हास्य किया होगा, तभी तो···? अच्छा यह बताओ कैसी लाज देखी तुमने? हो तो तुम भी गुरू न!

केदार—कोई एक बात हो तो, क्या नाम भला उसका, बताई जाय। आज मेरे पास काम तनिक ज्यादा है, मुझे जाने दो।

अविनाश—हा-हा-हा तनिक बैठो तो! सुनो भी तनिक, एक काम की बात करनी है मुझे तुमसे। मैंने एक अँगूठी खरीदी है, समझ गये न!

केदार—अरे ये तो मामूली बात है, इसमें समझने को क्या धरा है?

अविनाश—मामूली बात है? अच्छा, तो भला क्या समझे, तनिक बताओ तो?

केदार—अरे जब हाथ में रुपये हों, तो क्या नाम भला उसका, अँगूठी खरीदने में क्या लगता है, यही समझा और समझता ही क्या?

अविनाश—तो तुमने समझा धूल। मैं उस अँगूठी को तुम्हारे द्वारा मनोरमा को भेंट देना चाहता हूँ। तुम समझदार आदमी हो, कोई दोष की बात तो नहीं।

केदार—भाई, मुझे तो इसमें कोई दोष दीखता नहीं है। और अगर कोई दोष है भी तो भी क्या नाम है भला उसका, तो दोष को त्यागकर अँगूठी ले लेने से भी काम चल जायेगा।

अविनाश—भई तुम बड़ा हास्य करते हो मेरे साथ। मैं जो कहता हूँ तुम उसे सुनो, अगर अँगूठी के साथ एक चिट्ठी भी लिखकर भेज दूँ तो कैसा रहे?

केदार—इससे क्या हुआ?

अविनाश—तो लो, अँगूठी पकड़ो, मैं तुरत चिट्ठी लिखे देता हूँ।

(चिट्ठी लिखता है)

केदार—(स्वगत) चलो अँगूठी तो मिल गई। पर दोनों भाइयों के साथ

महनत भी खूब करनी पड़ रही है । अब यदि व्याह जल्दी हो जाय तो आराम का समय मिले ।

वैकुण्ठ का प्रवेश

वैकुण्ठ—(भीतर झाँककर—स्वगत) अच्छा अब तो केदार बाबू से घुटने लगी है । जबसे लड़की देखी है तब से तो अवि इसका पिंड ही नहीं छोड़ता है । इसका स्वभाव है सनकी, बस जिधर झुक गया तो बस झुक गया । पर लगता है केदार बाबू परेशान हैं, इनका उद्धार अवश्य करना चाहिये । (कमरे में घुसकर) ओह, केदार बाबू हैं । कहिये क्या समाचार हैं, सुनाइये तो तनिक ! मैंने भी इधर एक नया परिच्छेद लिख डाला है; सुनाने की इच्छा भी है !

केदार—अजी क्या पूछते हो, क्या नाम भला उसका, मेरा तो हाल बड़ा बेहाल है ।

अविनाश—(चिट्ठी छिपाकर) भाई सा'ब, केदार बाबू से एक आवश्यक काम की बात करनी थी।

वैकुण्ठ—(स्वगत) काम का तो ठिकाना ही कोई नहीं। लगता है लड़के का दिमाग चल गया है । (प्रगट में) पर अवि, केदार बाबू के बिना मेरा काम भी तो रुका हुआ पड़ा है ।

नौकर का प्रवेश

नौकर—बाबू सा'ब, मानिक तल्ला से एक माली आया है ।

अविनाश—उससे कह दे अभी वह चला जाय ।

(नौकर का प्रस्थान)

वैकुण्ठ—अरे जाके तनिक सुन तो आ, भला क्या कहता है माली, इतनी दूर से आया है । तब तक केदार बाबू के पास में बैठा हूँ ।

केदार—आप मेरे लिये चिन्ता न करें, क्या नाम भला उसका, मैं तो चल दिया, मुझे काम बहुत है आज ।

अविनाश—नहीं-नहीं, केदार बाबू तनिक देर और बैठे रहो !

वैकुण्ठ—आप बैठे रहिये । देखो अवि, पेड़ पौधों के बारे में जो तुम अध्ययन कर रहे हो, उसमें लापरवाही बिल्कुल मत कर बैठना । तुम्हारा यह काम

स्वास्थ्य के लिये बड़ा लाभदायक है, और आनन्दजनक भी।

अविनाश—भाई सा'ब, मैं बड़ी सावधानी से अध्ययन करता हूँ, आज तनिक एक आवश्यक कार्य आ गया है, इसीसे...

बैकुण्ठ—अच्छा तो फिर तुम लोग बैठो। केदार बाबू बड़े भले आदमी हैं बेचारे। इन्हें ज्यादा तंग करना ठीक नहीं है। (स्वगत) तनिक भी विचार नहीं इसको, असल में दोष इसका नहीं, इसकी उम्र का है!

तीन कौड़ी का प्रवेश

केदार—भला तुम यहाँ किसलिये?

तीनकौड़ी—डरने की बात कोई नहीं है भाई सा'ब! दो हैं—एक को मुझे दे दो, एक को तुम ले लो!

बैकुण्ठ—हाँ भाई, यह बात बिल्कु ठीक है। चलो, तुम मेरे कमरे में चलो।

केदार—अरे तीनकौड़ी, क्या नाम भला तेरा, तू मुझे किसी दीन का नहीं छोड़ेगा।

तीनकौड़ी—पर और सब तो कहते हैं कि तुम मुझे किसी दीन का नहीं छोड़ोगे। (पास जाकर) भाई साहब, रुष्ट क्यों होते हो। जिस दिन से तुम्हें देखा है, उसी दिन से अपने तईं भाई और चाचा तक मुझे अच्छे नहीं लगते, मैं तुम्हें इतना चाहता हूँ।

केदार—अरे बक-बक क्यों कर रहा है, क्या नाम है भला, तेरे बाप, भाई और चाचा हैं भी कहीं?

तीन कौड़ी—तुम तो विश्वास नहीं करोगे भाई सा'ब, पर हैं सब। उसमें न तो कुछ व्यय है न कोई महात्म्य। तीन कौड़ी अगर स्वयं बना लेता तो शायद न होते; पर मेरे भी बाप-भाई-चाचा सब कुछ हो सकते हैं!

बैकुण्ठ—ही-ही-ही-ही! लड़का ये सब बातें कैसी अच्छी करता है। आओ भाई चलो, मेरे कमरे में। (प्रस्थान)

अविनाश—केदारभाई, बहुत छोटा-सा लिख दिया है, समझ गये न! केवल एक सतर—"देवी के चरण कमलों में पुजारी का पूजोपहार।"

केदार—हाँ, ठीक है, बड़ा अच्छा लिखा है। कोई बात छूटी भी नहीं,

अच्छा तो अब चलता हूँ।

अविनाश—पर 'चरण कमल' शब्द यहाँ जँचा कहाँ भाई साहब, अँगूठी ही तो है !

केदार—हाँ तो क्या नाम उसका—'करकमलों' में लिख दो।

अविनाश—भाई साहब, पर करकमलों में प्रेमोपहार कुछ......कैसा लगता है।

केदार—तो फिर 'पूजा का उपहार' न करके, क्या नाम भला उसका......

अविनाश—केवल 'उपहार' लिखने से पढ़ने में सूनापन आ जाता है। पूजोपहार रहने दिया जाये।

केदार—जैसी इच्छा।

अविनाश—तो फिर कर कमलों का क्या किया जाय ?

केदार—तो फिर चरण कमल ही रहने दो ठीक है, क्या नाम भला उसका, मुझे काम है जाने दो अब।

अविनाश—तनिक ठहरो भाई सा'ब; अंगूठी के बारे में चरणकमल ऊटपटाँग-सा लगता है।

केदार—अरे वाह ! ऊटपटांग-सा क्यों लगेगा ! तुम तो 'चरण कमलों' में अर्पण करके छुट्टी माँगो न, उसके बाद, क्या नाम है भला उसका, वह करकमलों में उठायेगी कैसे, यही बात रह जाती है न, सो अगर वह अपने आप न उठा सकी तो और कोई उठा देगा।

अविनाश—अच्छा अगर पूजोपहार न लिखकर प्रणयोपहार लिखा जाय तो कैसा रहे ?

केदार—अगर वह तुरन्त लिख जाय तो सबसे बहतर।

अविनाश—पर ठहरो केदार बाबू, तनिक विचार कर लूं।

ईशान का प्रवेश

ईशान—उधर खाना जो ठंडा हो रहा है !

अविनाश—सुन लिया, तुम जाओ में खा लूंगा।

ईशान—आखिर दीदी बैठी कब तक रहेंगी ?

अविनाश—सुन लिया भाई, सुन लिया, तुम यहाँ से जाओ भी तो !

ईशान—(केदार से) आपने बड़े बाबू का तो खाना-पीना सब कुछ छुड़ा दिया, अब क्या छोटे बाबू का भी माथा खराब करना चाहते हो ?

केदार—ईशान भाई, ये ठीक है कि तुम मेरा दिया नहीं खाते, फिर भी क्या नाम भला उसका, तुम मेरी दशा के बारे में भी तो सोचो। तुम्हारे बड़े बाबू खूब खुला-सा लिखा करते हैं, और छोटे बाबू क्या नाम है भला उनका, बड़े संक्षेप में लिखते हैं। पर मेरे दुर्भाग्य से दोनों की लिखावट समान ही हो जाती है। अविनाश बाबू, तुम्हारा भोजन जब तैयार है, क्या नाम भला उसका, तो तुम भोजन करने जाओ, मैं भी चल दिया।

अविनाश—क्यों, चले क्यों जाओगे ? तुम भी भोजन यहीं करलो न ! जा रे इसना, बाबू के लिये भी भोजन की तैयारी कर।

ईशान–जब पहले से आपने सूचित नहीं किया, तब अब मैं कैसे तैयारी करूँ।

अविनाश—अरे तू तो पूरा मूर्ख है, कहता है कैसे करूँ। जा-जा जल्दी तैयारी कर।

ईशान—बड़े बाबू तो बड़े बाबू थे ही, अब यह भी वैसे ही हुए जा रहे हैं, मेरा तो अब इस घर में टिकना मुश्किल है !

(प्रस्थान)

अविनाश—यहाँ देवी शब्द उस समय बदलना पड़ेगा यदि प्रणयोपहार लिखा जाय ! देवी के साथ प्रणय कसे किया जायेगा ?

केदार—भला ऐसा क्यों नहीं होगा ? क्या नाम भला उसका, तो फिर स्वर्ग की देवियाँ जीती किस प्रकार हैं। स्त्री जाति जहाँ भी रहे स्वर्ग में या पृथ्वी पर अथवा पाताल में, क्या नाम भला उसका, उसके साथ प्रणय हो सकता है, होता है ! तुम इसकी चिन्ता न करो। (स्वगत) अब मेरा पिण्ड तो छोड़ो, देवता !

तीन कौड़ी का प्रवेश

तीन कौड़ी—अरे बड़े भाई साहब, केदार बाबू ! आप अपना स्थान बदल

लें, मैं यहाँ रहूँगा और आप वहाँ चले जायँ !

केदार—भला क्या बात हुई ऐसी ?

तीन कौड़ी—हे भगवान् ! पोथा है या आफत ! मैं अगर उसमें घुस गया तो बस कितनी ही तलाश क्यों न की जाय मिल नहीं सकता किसी को। मुझे पोथा पढ़ने को देकर बुड्ढा कहीं चला गया तो मैं भाग आया वहाँ से !

वैकुण्ठ का प्रवेश

वैकुण्ठ—अरे तीन कौड़ी, मेरे पास से क्यों भाग आये तुम ?

तीन कौड़ी—आपने पोथा तो इतना बड़ा लिख दिया, पर तनिक-सी बात भी आपकी समझ में नहीं आई कि मैं क्यों भाग आया ?

वैकुण्ठ—अच्छा एक बार आप चलें केदार बाबू !

केदार—चलिये। (स्वगत) राम के हाथ से मर जाता तो भी मर जाता और रावण के हाथ से मर जाता तो भी मर जाता। बात एक ही है, मरना मरना है, पर अविनाश की एक-एक लाइन से तो मैं उकता ही गया।

अविनाश—केदार बाबू आखिर तुम जा कहाँ रहे हो ? भाई सा'व मेरा काम अभी······

वैकुण्ठ—(क्रोधित होकर) जब देखो दिन और रात तेरा तो काम ही बाकी रहता है ! केदार बाबू सीधे आदमी हैं, थोडा बहुत इनको आराम भी करने दोगे या नहीं, इतना विचार तो किया होता। आओ केदार बाबू चला जाय !

(दोनों का प्रस्थान)

केदार—क्या नाम भला उसका, आओ चलें।

अविनाश—अरे तीन कौड़ी, मनोरमा तुम्हारी कौन लगती है रिश्ते में।

तीन कौड़ी—दूर का एक रिश्ता है, जिससे वह मेरी बहिन लगती है, पर एक बात ध्यान में रखियेगा कि आप उससे इस बारे में कहें कुछ नहीं, क्योंकि उसे लजाना पड़ेगा ऐसी बात सुनकर।

अविनाश—तो क्या वह लजाती बहुत है, तीन कौड़ी बाबू ?

तीन कौड़ी—मेरे प्रसंग से बहुत लजाती है वह।

अविनाश—मैं तुम्हारे बारे में कुछ नहीं पूछ रहा, मैं तो अपने विषय में पूछ रहा हूँ, क्योंकि उनकी सगाई मेरे साथ···क्या तुम्हें यह बात मालूम है ?

तीन कौड़ी—हाँ-हाँ समझ गया, सो तो होगी ही। मेरी भी एक लड़की से सगाई हुई थी सो ब्याह से पहले ही वह लाज के मारे मृत्यु लोक चली गई।

अविनाश—क्या कहा, मर गई वह ?

तीन कौड़ी—केवल लाज से ही नहीं, यकृत की शिकायत भी उसे थी।

अविनाश—और मनोरमा के···

तीन कौड़ी—ऐसी कोई शिकायत नहीं।

अविनाश—भई, मैं ऐसी कोई बात नहीं पूछ रहा, मैं तो उसके मन की बात पूछ रहा हूँ।

तीन कौड़ी—बाबू साहब, आपकी ये बड़ी-बड़ी बातें मेरे दिमाग में घुसती ही नहीं हैं, समझूं कैसे ? क्योंकि स्त्री का मन इस अभागे को कभी मिला ही नहीं है, और न कभी इसकी इच्छा ही हुई है। मैं तो इसी तरह बड़े आनन्द में हूँ।

अविनाश—छोड़ो इन बातों को। मेरी बात सुनो, मेरी इच्छा है मनोरमा को एक अंगूठी उपहार देने की और सोचता हूँ उसके साथ एक लाइन की एक चिट्ठी भी दे दूं !

तीन कौड़ी—एक लाइन ही तो लिखेंगे, चट से लिख दीजिये, हर्ज ही क्या है !

अविनाश—लो सुनो, मैंने लिखा है—'देवी के चरण कमलों में विमुग्ध भक्त का पूजोपहार।' क्या राय है तुम्हारी इस बारे में।

तीन कौड़ी—आप चाहे जो लिखिये, आपकी अपनी बात है। मैं कुछ कहूँ, ये बात ठीक नहीं है, क्योंकि मेरी तो वह बहन लगती है।

अविनाश—अरे भाई, समझो तो, मैं यह बात नहीं कह रहा। अंगूठी क्या चरणों में दी जाती है ? शायद 'कर कमलों में' लिखने से···

तीन कौड़ी—हाँ-हाँ-हाँ, तनिक-सी बात, केवल चिट्ठी ही तो है सो चरण-कमल हो या कर कमल, कुछ भी हो काम चल जायेगा। कौन अदालत में जाकर

जवाब देना पड़ेगा।

अविनाश---अरे भाई, मेरी इच्छा है जो कुछ भी लिखा जाय, उसका अर्थ सीधी तरह से समझ में आ जाना चाहिये।

तीनकौड़ी—अरे साहब, अंगूठी ही तो है, इसमें अर्थ वर्थ की क्या आवश्यकता है!

अविनाश—अरे अँगूठी से ज्यादा बातों की कीमत होती है, क्या यह भी तुम नहीं जानते।

तीनकौड़ी—अगर बाबू साहब बातों का कोई मूल्य होता, तो मेरी दशा ऐसी न होती, जैसी आप देख रहे हैं।

अविनाश—भाई तुम क्या कह रहे हो, मेरी समझ से बाहर की बात है तुम्हारी। तनिक ध्यान से मेरी बात सुनो तो पता चले। मेरी इच्छा है अगर मैं उस चिट्ठी वाली लाइन को इस तरह लिख दूं—प्रेमिका के कर-कमलों में अनुरक्तदास का प्रणयोपहार। तो शायद अधिक ठीक रहे।

तीनकौड़ी—हाँ ठीक रहेगा।

अविनाश—ठीक रहेगा! मुंह से कह देने भर से ही काम नहीं हो जायगा, कि 'ठीक रहेगा।' भले आदमी! तनिक दिमाग पर जोर डालकर सोचकर तो बताया होता।

तीनकौड़ी (स्वगत) हे भगवान् इसमें तो क्रोध भी है, बुड्ढे में कम से कम इतना क्रोध तो नहीं है। (प्रगट में) अगर सोचने की बात है तो मुझे तो पहले की लाइन अच्छी लगी थी।

अविनाश—ऐसा भला क्या अवगुण है इसमें?

तीनकौड़ी—(स्वगत) अवगुण नहीं तो फिर क्यों सोचो इसके बारे में। बेकार में चक्कर में डाल दिया मुझे! (प्रगट) अविनाश बाबू सच तो यह है कि किसी भी बात के बारे में सोचिये, कोई न कोई अवगुण अवश्य निकल ही आता है। और अगर किसी बात के बारे में सोचा न जाय, तो कोई बात होती ही नहीं हैं, मेरी समझ तो बस इतनी है।

अविनाश—हाँ यह हुई पते की बात! तुम्हारी बात अब समझ में आई।

तुम्हारा कहना है कि विवाह से पहले ही 'प्रेमिका' कहने से लोग कुछ सोचने लगेंगे !

तीनकौड़ी—(स्वगत) लाज रखली भगवान् ने (प्रगट) बात तो यही है। अविनाश बाबू एक बात और भी है, आपस की बात है, यदि आपने प्रेमिका लिख भी दिया तो होता क्या है, काई गैर थोड़े ही लिख रहा है यही रहने दीजिये !

अविनाश—नहीं, कोई आवश्यकता नहीं—पहले की लाइन ही ठीक जँचती है !

तीनकौड़ी—राय तो मेरी भी यही है !

अविनाश—पर तनिक सोचकर देखो तो सही, कहीं वाक्य खटकता तो नहीं है ?

तीनकोड़ी—(स्वगत) हे भगवान् लाज रख। ये तो फिर कह रहा है सोचने के लिये। (प्रगट) स्पष्ट बात यह है अविनाश बाबू कि बचपन से ही मैंने कभी किसी के लिए कुछ नहीं सोचा है। इसलिये सोचने की मेरी आदत बिल्कुल ही नहीं है।

अविनाश—उफ़ ! अरे तुम जरा चुप भी रहोगे या नहीं, अपनी ही बात बक रहे हो, मुझे भी कुछ सोचने दोगे या नहीं।

तीनकौड़ी—आप खूब सोचिये, मुझसे क्यों कहते हैं आप सोचने के लिए। तनिक रुकिये मैं केदार बाबू को बुलाकर ला रहा हूँ। वह मुझसे अधिक सोचते भी हैं और आपकी समस्या भी हल हो जायगी। (स्वगत) मेरे लिए तो वह बुड्ढा ही अच्छा !

(प्रस्थान)

केदार और बैकुण्ठ के साथ तीन कौड़ी का पुनः प्रवेश

बैकुण्ठ—केदार बाबू से तुम्हें फिर क्या आवश्यकता पड़ गई अवि ? मैं इन को अपनी पुस्तक का नया परिच्छेद सुना रहा था। तीन कौड़ी इनके पीछे पड़ गया, और जब पैरों से लिपट गया तो…

अविनाश—मेरा वह काम अभी समाप्त नहीं हुआ, इसीलिये…

बैकुण्ठ—(क्रोधित होकर) तुम्हारा काम समाप्त नहीं हुआ तो मेरा

परिच्छेद ही कहाँ समाप्त हुआ था ? बस तुम···

अविनाश—तो आप इनको ले जायँ ।

केदार—क्या नाम भला उसका, तुम्हारा भी तो वह काम आवश्यक है अविनाश, अब और देर करना ठीक भी तो नहीं हैं, भाई !

वैकुण्ठ—(केदार से) वाह ! आप इसकी चिन्ता क्यों करते हैं (अविनाश से) अविनाश अपने काम के लिये इन्हें इस तरह से तंग और परेशान मत किया करो भाई। अगर तुम्हारे बर्ताव से तंग आकर इन्होंने यहाँ आना बन्द कर दिया तो ?

तीन कौड़ी—बाबू सा'ब आप इस बात की चिन्ता बिल्कुल न करें ! भगवान ने हमको वह ताकत दी है कि बिना बुलाये अथवा दुत्कारने पर भी हम संयम से काम लेते हैं और आना जाना पूर्ववत् चालू रखते हैं। बाज-बाज तो हमारे बारे में हँसकर कहते हैं कि अगर ये मर भी गये तब भी मित्रता रखेंगे और आना-जाना बन्द न करेंगे !

केदार—अरे मूर्ख ! चुप नहीं होता तू !

तीन कौड़ी—पहले से कह देना ठीक है भाई सा'ब ! ताकि बाद में ये कुछ ख्याल न करें ।

ईशान का प्रवेश

ईशान—(केदार और अविनाश से) आप दोनों के लिये थाल लग गये हैं बाबू सा'ब !

तीन कौड़ी—और मेरे लिये रास्ता बन्द है,क्यों ना? जन्मते ही जिसकी माँ धोखा देकर मर गई, भला मित्र लोग ही उसकी क्या भलाई कर सकते हैं। पर भाई सा'ब इस बात पर विचार तो करो कि तुम्हारा तीन कौड़ी कभी बिना तुम्हें भाग दिये कोई चीज कभी नहीं खाता है !

केदार—तो फिर !

तीन कौड़ी—खैर चट से जाकर तुम खा आओ। देर करने से शायद मैं भूख न सम्हाल सकूँ। देर होने से समझूँगा कि छत्तीस व्यंजन उड़ रहे हैं।

वैकुण्ठ—ऐसी क्या बात है भाई तीन कौड़ी, तुम क्या बिना भोजन के रह

जाओगे ! ऐसा कभी हो नहीं सकता है। ओ इसना !

ईशान—मैं जाता हूँ, मुझे कुछ नहीं मालूम !

(प्रस्थान)

अविनाश—चलो भाई तीन कौड़ी प्रबन्ध तो हो ही जायेगा !

तीन कौड़ी—आप लोग चलिये, खींचातानी से लाभ ? खिलाने का मार्ग बैकुण्ठ बाबू जानते हैं, उस दिन की बात भूला थोड़े ही हूँ।

(तीन कौड़ी और बैकुण्ठ का प्रस्थान)

अनिवाश—अच्छा उस लाइन के बारे में ?

केदार—जी, क्या नाम भला इसका, भोजन के पश्चात् ठीक करेंगे।

तीसरा दृश्य

केदार

केदार—हे भगवान् साली का विवाह तो बिना किसी रुकावट के पूर्ण हो गया। पर बैकुण्ठ के होते हुए मैं बिना खटके नहीं रह सकूँगा। उपद्रव कितने किये गये, पर बूढ़ा है कि कान पर जूँ भी नहीं रेंगती !

बैकुण्ठ का प्रवेश

बैकुण्ठ—ओह ! केदार बाबू कहिये क्या समाचार हैं ? आपका चेहरा रोना-सा प्रतीत होता है, कहिए कोई शिकायत तो नहीं आपको ?

केदार—जी, क्या नाम भला उसका—डाक्टर कहता था कि तुम मानसिक परिश्रम बिल्कुल मत करो।

बैकुण्ठ—भई बात तो पूरी फिकर की है, ऐसा करो कुछ दिन घर त्यागकर यहीं विश्राम करो, मेरे विचार से यही ठीक रहेगा !

केदार—सोच तो मैं भी ऐसा ही रहा हूँ।

बैकुण्ठ—हाँ, यही ठीक है बेणी बाबू।

केदार—बेणी बाबू नहीं, विपिन बाबू—

वैकुण्ठ—हाँ विपिन बाबू ! आपकी जो बहूरानी है उनके क्या लगते हैं वह ?

केदार—विपिन बाबू उनके चाचा लगते हैं ।

वैकुण्ठ—हाँ, शायद चाचा ही लगते हों, सो उनके लिए किसी ने रहने को मेरा यह कमरा ही बता दिया । सो—

केदार—क्या नाम भला उनका—उन्हें इसमें तो आराम ही रहेगा !

वैकुण्ठ—आप बात समझे नहीं, इसी कमरे में तो मैं लिखा-पढ़ा करता हूँ ।

केदार—सो बात आपकी ठीक है, क्या नाम भला उनका—उन्हें इसमें क्या हानि है जो वह आपके लिखने पढ़ने के लिए आपत्ति करेंगे ! क्या नाम भला—आप बड़े आराम से लिखिये, वह मना नहीं करेंगे ।

वैकुण्ठ—भला वह आपत्ति या मना क्यों करने लगे । बेचारे बड़े भले आदमी हैं वे, पर एक बात उनमें बड़ी खराब है, बिस्तर पर लेटे लेटे वह प्रायः गीत गुनगुनाया करते हैं, इससे लिखने में······

केदार—भला इसमें चिन्ता की क्या बात है, क्या नाम भला उनका—उन्हें बुलाकर आप कह क्यों नहीं देते !

वैकुण्ठ—ना भाई ना—वे भले आदमी हैं, इसकी आवश्यकता नहीं है ।

केदार—तो मैं ही, उन्हें बुलाकर क्या नाम भला—डाटे देता हूँ ।

वैकुण्ठ—अरे नहीं केदार बाबू ! ऐसा मत कीजिये ! लिखते समय गाना तो खैर मुझे भी अच्छा लगता है, पर बात यह है कि मैं सोचता हूँ यदि कोई और कमरा होता तो अच्छा होता ! मैं भी ठीक से काम कर लेता और वह भी जी भरकर गा लेते ।

केदार—वाह वैकुण्ठ—वाह वैकुण्ठ बाबू ! तब तो—क्या नाम भला उसका—उन्हें सदैव एक आदमी की आवश्यकता रहती ।

वैकुण्ठ—ये तो आप बिल्कुल ठीक कहते हैं, हैं आदमी बड़े मिलन सार ! या तो हर समय गपशप करेंगे, या गाते रहेंगे ! ऐसी बात नहीं, मैं उनका आदर करता हूँ ! पर आपसे छिपाना क्या केदारबाबू—आप कुछ विचार मत कीजियेगा मेरे 'स्वर-सूत्रगार' पोथी का कहीं पता ही नहीं चल रहा है ।

केदार—अरे ! भला आपने वह रखी कहाँ थी, बतलाइये तो सही ?

बैकुण्ठ—आप तो जानते ही हैं, अलमारी के ऊपर इसी कमरे में रखी थी। इधर इस कमरे में आजकल लोग बराबर आते जाते रहते हैं मैं किसी से कह भी क्या सकता हूँ, पर जब कभी मेरी दृष्टि अलमारी के उस स्थान पर जाती है तो उसे सूनी देखकर इतना दुख होता है मानों किसी ने मेरी पसली की एक हड्डी निकाल ली हो !

केदार—हाँ ध्यान आया, सुनिये तो तनिक क्या नाम भला उसका–मैंने देखा है अविनाश आपकी किताबें प्रायः ले जाया करता है।

बैकुण्ठ—अरे क्या कहते हो ? अविनाश तो मेरी पुस्तकें पढता ही नहीं हैं।

केदार—पढ़ता नहीं–क्या नाम भला उसका—बेच दिया करता है।

बैकुण्ठ—बेच दिया करता है ?

केदार—तो आपको पता नहीं—क्या नाम भला उसका–नया प्रेम ठहरा, नया शौक है खर्चा काफी अधिक है न ! मैंने कई बार उससे कहा, अगर ऐसी ही बात है—तो क्या नाम भला उसका–तनुख्वाह के रुपयों में से कुछ अपने पास रख लिया करो। पर इसमें उसे लाज आती है, ऐसा ही कहता था !

बैकुण्ठ—लड़का है अभी। प्रेम की उपेक्षा भी नहीं कर सकता, और फिर बड़े भाई के सम्मान का ध्यान भी उसे पूरा रखना पड़ता है।

केदार—अच्छा जी—क्या नाम भला उसका—जैसे भी होगा मैं आपकी पोथी का उद्धार करूँगा ! चाहे किसी मूल्य पर हो।

बैकुण्ठ—हाँ,—रुपये-पैसे का ख्याल मत करना, उसका उद्धार अवश्य करना, मैं आजीवन ऋणी रहूँगा।

केदार—(स्वगत) बाज़ार में तो उसे कोई चार पैसे में भी न पूछेगा। सौदा ठीक है, धर्म रक्षा भी होगी और रुपया भी थोड़ा बहुत हाथ आयेगा ही।

(प्रस्थान)

अविनाश का प्रवेश

अविनाश—भाई सा'ब !

बैकुण्ठ—क्या बात है अवि ?

अविनाश—मुझे थोड़े रुपयों की एक आवश्यकता आ गई है !

बैकुण्ठ—इसमें लजाने की कौन सी बात है, भैया ! मैं तो कहता हूँ कि अपनी पगार के रुपये अपने पास ही रखा करो। मैं तो हो गया बूढ़ा, इधर-उधर कहीं रुपये रख दिये और बस भूल गया, न कोई हिसाब न किताब। मुझे तो याद ही कुछ नहीं रहता।

अविनाश—भाई साहब ! यह आज नयी बात कैसे कह रहे हो।

बैकुण्ठ—इसमें नई बात कैसे ? तुम्हारा विवाह हो गया, गृहस्थी आदमी बन गये और मैं बन गया अब सन्यासी ! समझे ना।

अविनाश—ब्याह ! भाई साहब ब्याह आपने ही तो मेरा करा दिया, यदि उस ब्याह के कारण ही मुझे दूसरा समझने लगे हो तो जाने दो, अब इधर कहा तो कहा फिर कभी रुपये पैसे के बारे में कुछ नहीं कहूँगा।

बैकुण्ठ—ओ-ओ...अरे...अरे सुन तो मेरी बात, बड़ी जल्दी क्रोध हो आया, तनिक बात तो सुन जा।

'दूसरों की बातें सहन करूँ कैसे' गाते हुये
विपिन का प्रवेश

बैकुण्ठ—सुनाओ बैणी बाबू ?

विपिन—विपिनबिहारी है मेरा नाम।

बैकुण्ठ—ओ हाँ, विपिन बाबू। आपके विस्तर पर जो ये पुस्तकें पड़ी हैं, उन्हें क्या आप पढ़ा करते हैं ?

विपिन—भला इन्हें पढ़ने क्यों लगा, बजाया करता हूं !

बैकुण्ठ—बजाते हैं। तो आपके लिये तबला या मृदंग...

विपिन—ये सब, मैं बजाना जानता ही नहीं, मैं पुस्तक ही बजाया करता हूँ। हाँ बात याद आ गयी बैकुण्ठ बाबू ! कई दिन से कहने की सोचता हूँ, पर समय पर बात याद नहीं रहती, मेरे कमरे में जो आपकी अल्मारी और टेबिलें पड़ी रहती हैं आज उन्हें हटवा लें, क्योंकि मेरे मिलने वाले बहुत से आदमी आते हैं इनसे उनको कष्ट होता है ! यानी उसमें बैठने के लिये जगह ही नहीं रहती।

बैकुण्ठ—पर ले कहाँ जाऊँ ? और कोई कमरा भी तो नहीं है। बराबर

के उधर के कमरे में केदार बाबू हैं। डाक्टर ने उनको विश्राम करने को कहा है, और इधर जो ये कमरा है उसमें पता नहीं कौन-कौन हैं। मैं तो जानता भी नहीं, मेरे कहने का अर्थ है बैणी बाब......

विपिन—बैणी बाबू नहीं, विपिन बाबू।

वैकुण्ठ—अच्छा जी विपिन बाबू। अगर इन्हें एक कोने में चिपटा कर रख दिया जाय तो मेरा विचार है आपकी परेशानी बिल्कुल दूर हो जाय।

विपिन—परेशानी तो खर दूर हो जायगी, पर कष्ट तो रहेगा ही...खास-कर मैं किचर-बिचर वाली जगह पसन्द नहीं करता, खुली जगह पसन्द करता हूँ।—'सहन करूँ कैसे, मैं बातें दूसरों की।'

ईशान का प्रवेश

वैकुण्ठ—अरे बड़ा अच्छा हुआ, तू आ गया। जरा मेरी बात सुनना—इस कमरे में बैणी बाबू को—

विपिन—बैणी नहीं, विप्नि बाबू।

वैकुण्ठ—हाँ, विपिन बाबू को बड़ी तकलीफ है!

ईशान—तो फिर तकलीफ उठाने की आवश्यकता भी क्या है? इनके पुरखे मेरा मतलब है आप दादों से, उनका घर भी तो कहीं न कहीं होगा ही, वहीं क्यों नहीं चले जाते!

वैकुण्ठ—अरे फिर वही छोटे मुँह बड़ी बात! मूर्ख कहीं का!

विपिन—कैसा काठ का उल्लू है, बात करने की तमीज भी नहीं है।

ईशान—पहले से आगाह करता हूँ...अगर गाली बकी तो...

वैकुण्ठ—अरे इसना, तनिक चुप भी रह।

विपिन—तू जानता नहीं शायद कि मैं कौन हूँ। इस घर में मेरे पाँव की धूल भी नहीं रहना चाहती, समझे! मैं तो चला।

वैकुण्ठ—वैणी बाबू मत जाइये, मैं हाथ जोड़कर क्षमा मांगता हूँ।

(वैकुण्ठ को धक्का देते हुये प्रस्थान)

वैकुण्ठ—अरे इसना! देख तू बहुत सर पर चढ़ गया है मगर बता तो तूने ऐसा क्यों किया, मालूम होता है तू मुझे घर में टिकने ही नहीं देगा।

ईशान—क्या कहते हैं आप ? मैं नहीं टिकने दूंगा।

बैकुण्ठ—देख तू हमारे यहाँ काफी दिनों से है सो हम तो तेरी बातें सुनने के आदी हो गये हैं, पर बाहर वाले तेरी बात कैसे सह लेंगे, बता तो तू। अरे तनिक ठंडे मिजाज से बातें किया कर भाई !

ईशान—मैं ठंडे मिजाज रखूं तो रखूं कैसे, इन लोगों के हाल-चाल और रंग-ढंग देखकर तन-बदन में आग लग जाती है।

बैकुण्ठ—अरे देख तो ये हमारे नये रिश्तेदार हैं, अगर इनका अपमान करोगे तो अविनाश बाबू का दिल दुखेगा, वह मुँह से कुछ कह भी न पायेगा, और भीतर ही भीतर घुलता रहेगा।

ईशान—इस बात को मैं न समझूं, ऐसी बात नहीं है बाबू साहब ! इसीलिये तो मैं छोटी उमर में ब्याह करने की बात कहा करता था, अगर ठीक उमर में ब्याह होगया होता तो ऐसी हालत पैदा ही कभी नहीं होती।

बैकुण्ठ—अच्छा तू खिसक यहाँ से, ज्यादा बातें मत बना। मैं अकेले में ये सब बातें सोच समझ लूँ पहले।

ईशान—हाँ आप खूब सोच समझ लीजिये, हाँ और मैं जो बात कहने आया हूँ उसे भी सुन लीजिये। वह रानी की न चाची न मामी न बुआ, पर एक बुढ़िया आई है सो वह नीरू दीदी को इतने कष्ट दे रही है कि कुछ कहते बनता ही नहीं, और मैं अब और अधिक सह नहीं सकता।

बैकुण्ठ—अरे क्या अपनी नीरू को ! वह तो ऐसे किसी बखेड़े में पड़ती ही नहीं थी, फिर क्या बात हो गई कि—

ईशान—वह खूसट बुढ़िया दिन भर नौकरानी की तरह उन्हें काम में घसीटे रहती है, और कमीनी काले मुँह की ऊपर से कहती क्या है कि तुम छोटे भैया की कमाई पर रईसी किया करते हो। अगर बुढ़िया के दाँत होते तो बाबू सा'ब सच कहता हूँ सारे के सारे झाड़ देता।

बैकुण्ठ—नीरू भी तो कुछ कहती है कि नहीं ?

ईशान—आखिर वह है तो अपने ही बाप की बेटी। फूल-सा चेहरा सूखकर मुर्झा गया, पर फूटे मुँह से उसने एक भी बात नहीं कहीं, सीधी है न बेचारी।

बैकुण्ठ—ऐसे समय की एक कहावत है—'सांच को कहीं आंच नहीं', जो सहता है, अन्त में उसी की जीत होती है—

ईशान—मैं ये सब बड़ी-बड़ी ज्ञान की बातें तो जानता नहीं हूँ बाबू सा'ब। मैं एक बार छोटे बाबू से—

बैकुण्ठ—खबरदार इसना ! तुझे मेरे सर की कसम है, अगर अविनाश से तूने कुछ भी कहा तो ?

ईशान—तो फिर क्या मैं चुपचाप बैठा रहूँ ?

बैकुण्ठ—मैंने एक बात सोच निकाली है, और मैं समझता हूँ कि ये रास्ता ठीक भी रहेगा। यहाँ जगह भी कम है, इन लोगों को काफी तकलीफ रहती है। दूसरे अविनाश अब घर गृहस्थी हो गया है। उसका खर्च भी बढ़ गया है, इसलिये मैं अब और अधिक उस पर भार नहीं डालना चाहता। सोचता हूँ यहाँ से चला जाऊँ तो ठीक रहेगा।

ईशान—आपकी ये बात है तो ठीक, पर—

बैकुण्ठ—पर वर की कोई बात नहीं है इसना, जब जैसा समय आता है, वैसा करना ही पड़ता है।

ईशान—फिर आपका लिखना-पढ़ना कैसे चलेगा बाबू सा'ब।

बैकुण्ठ—(हँसकर) अरे मेरा पढ़ना-लिखना ! लिखना-पढ़ना भी कोई काम है। मेरे इस काम से सभी हँसा करते हैं। मैं क्या इस बात को जानता नहीं हूँ। पोथी पत्रा सब यहीं पड़ा रहने दो। संसार में किसी को लिखने-लिखाने की क्या आवश्यकता ? तू तो समझदार है, सब समझ जाता है न।

ईशान—लेकिन छोटे बाबू से तो कह सुनकर जाना ही चाहिये।

बैकुण्ठ—अगर उससे कहा तो वह कभी नहीं जाने देगा। वह तो मेरे जाने के लिए कभी भी 'हाँ' कर ही नहीं सकता। यहां से तो मुझे छिपकर बिना किसी को बताये ही जाना पड़ेगा। बाद में उसको चिट्ठी लिखकर बता दूँगा। तनिक नीरू से भी मिल आऊँ।

(दोनों का प्रस्थान)

तीनकौड़ी श्रौर केदार का प्रवेश

तीनकौड़ी—वाह भाई साहब ! तुमने तो मुझे खूब चकमा देकर अस्पताल भिजवाया। पर मैं भी पूरा गुरू हूँ। तुमने मुझे चकमा दिया मैं अस्पताल वालों को चकमा दे आया। आपने सोचा होगा अस्पताल में मर जाऊँगा मैं, पर यह हस्ती यों ही नहीं मिट जायेगी भाई साहब !

केदार—कहने की आवश्यकता ही क्या है ? सामने देख रहा हूँ आपको स-शरीर मौजूद हैं।

तीनकौड़ी—बड़ा अच्छा किया जो आप एक दिन भी मुझे देखने नहीं गये, अन्यथा—

केदार—अन्यथा क्या हो जाता ?

तीनकौड़ी—यमराज ने सोच लिया जब इसका दुनियाँ में ही कोई नहीं तो मैं ही क्यों इसकी कदर करूँ, इसलिये उसने भी पूछा तक नहीं। साधारण जीव समझकर जिसे दुनियाँ में कोई नहीं पूछता उसने भी घृणा से छोड़ दिया। भाई-साहब क्या बताऊँ आपको इस तीनकौड़ी के भीतर कितनी सार वस्तु है, यह देखने के लिये मैडीकल कालेज के तमाम लौंडे छुरियाँ ताने खड़े थे—मुझे भी उन्हें देखकर अपने ऊपर गर्व होता था। खैर मेरी बात तो समाप्त हो गई अब तुम अपनी सुनाओ। लगता है कि अबकी बार तो खूब जमकर बैठे हो गणेशजी की तरह !

केदार—चल-चल अधिक बक-बक मत कर ! यह मेरे रिश्तेदारों का घर है, क्या तुझे इस बारे में बिल्कुल पता नहीं है।

तीनकौड़ी—पता क्यों नहीं, क्या मुझसे कुछ छिपा है ! पर हाँ, बूढ़े बैकुण्ठ बाबू कहीं दिखाई नहीं पड़ते, बात क्या है ? क्या उन्हें कहीं चलता कर दिया ? यही तुममें सबसे बड़ा दोष है, मतलब निकला कि बस···

केदार—अरे तीन कौड़िया ! अगर फिर तूने कभी ऐसी बात कही तो याद रख ऐसे कान मलूँगा कि क्या किसी ने मले होंगे !

तीनकौड़ी—पर बिना सच बात कहे मैं चुप भी नहीं रह सकता। तुम मेरे कान ही तो ऐंठ सकते हो सो खूब ऐंठ दो, पर मैं तो सच बात कहूँगा ही।

समझे। अगर बैकुण्ठ बाबू को तुमने धोका दिया तो बड़ा अधर्म होगा! मेरे साथ तुमने जो कुछ किया वह बात अलग है।

केदार—ओह! भला इतनी धर्म की बातें कहाँ से सीख आया रे!

तीनकौड़ी—तुम कुछ भी कह सकते हो, और यह बात भी है कि दुनियाँ में हम और तुम जैसे भी जिन्दा हैं, पर धर्म खतम हो गया हो ऐसी बात नहीं हैं। अभी धर्म है। जब मैं अस्पताल में था तो हर समय मुझे बैकुण्ठ बाबू की बात याद रहती थी, भूल भी कैसे जाऊँ? अस्पताल में पड़ा-पड़ा सोचता था—'अब तीनकौड़ी तो है नहीं, केदार के हाथ से उन्हें कौन बचायेगा? मुझे उस समय बड़ा दुख होता था।

केदार—सुन कान खोलकर तीनकौड़ी, तू अगर मुझे यहाँ फिर जलाने आया तो बस समझ ले—

तीनकौड़ी—तुम तो बेकार डरते हो भाई साहब! अब मुझे अस्पताल भेजने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। मैं यहाँ दो दिन से अधिक ठहर भी नहीं सकता, फिर यह स्थान मेरे लिये इतना असह्य है कि···

केदार—तो तू मुझे जलाता क्यों है, अगर जाना हो तो दो दिन बाद ही क्यों, दो दिन पहले ही सही—

तीनकौड़ी—तुम चार सौ बीस करे जाओ, पर मैं यहाँ से तब तक टस-से-मस नहीं हो सकता जब तक बैकुण्ठ बाबू का पूरा पोथा न सुन लूँ? मैं जानता हूँ कि तुम उन्हें धोका अवश्य दोगे। भाग्य के लिखे को मैंट तो कोई नहीं सकता, लेकिन मुझे उनका पूरा पोथा सुनना ही चाहिये!

केदार—(स्वतः) इस नमकहरामी को चाहे मारो चाहे गाली दो, पर यह यहाँ से जाने का नाम नहीं लेता। (प्रगट में) अरे मुझसे कुछ पैसे ले जाओ और बाजार में जाकर खा पी आओ!

तीनकौड़ी—अरे भाई सा'ब खाने की तो तुम्हें याद ही नहीं दिलानी चाहिये।

केदार—तो क्या नाम भला उसका—जब भूख लगी है तो तू खायेगा क्यों नहीं!

तीनकौड़ी—अरे ये अचानक परिवर्तन कैसे हो गया, जो तुम भी धर्म की

बातें करने लगे। क्या कुछ भला बुरा होने वाला है, तुरत ही।

केदार—चल तुझे बाजार लिये चलता हूँ।

(दोनों का प्रस्थान)

ईशान और वैकुण्ठ का प्रवेश

वैकुण्ठ—मैं तो सोच रहा था, इन पोथी पत्रों को साथ नहीं ले जाऊँगा, पर नीरू तो सुनकर रोने लगी। सोचा विचारी ने अपने बुढ़ापे के खिलौनों को बाबूजी यों किसलिए छोड़े जाते हैं। चल उठा किसी में बाँध लें। अरे जल्दी कर इसना।

ईशान—क्या कहा बाबू सा'ब ?

वैकुण्ठ—बड़ों का छोटों पर जितना मोह होता है, क्या कभी छोटों का बड़ों पर उतना मोह हुआ है, या हो सकता है, क्यों रे मैं ठीक कह रहा हूँ न !

ईशान—देख तो यही रहा हूं मैं !

वैकुण्ठ—जब मैं चला जाऊँ तो अविनाश को कोई खास दुख तो नहीं होगा रे !

ईशान—मेरे ख्याल से कोई नहीं, मालूम तो ऐसा ही होता है। हाँ···

वैकुण्ठ—हाँ, चूँकि उसकी नई गृहस्थी है, फिर नाते रिश्तेदारों की भी कमी नहीं हैं—क्यों मेरी बात ठीक है न इसना ?

ईशान—हाँ बाबू सा'ब मैं भी यही बात सोचता हूँ।

वैकुण्ठ—मेरे ख्याल से नीरू के लिये उसके हृदय में, नीरू को तो वह बहुत प्यार करता है ?

ईशान—पहले तो वह बहुत प्यार करते थे, पर अब···?

वैकुण्ठ—तो क्या अवि को सब कुछ मालूम हो गया है ?

ईशान—अगर ये बात न होती तो क्या बुढ़िया को इतनी हिम्मत हो सकती थी, हो सकता है वह सह दे रहे हों ?

वैकुण्ठ—भाई तेरी बातें बड़ी रूखी होती हैं इसना ! तू बात क्या करता है लट्ठ मारता है। अरे क्या तू मीठी बात करना भी नहीं जानता ? छोटेपन से तू हमारे साथ है, तुझे पालपोस कर बड़ा आदमी बनाया है, एक दिन के लिये

भी तुझे अपने से अलग नहीं होने दिया। और तू···तू ही है, ऐसी बात करता है कि बस···अरे क्या मेरे जाने पर अविनाश को दुख नहीं होगा। जा···जा··· जायगा नहीं क्या यहाँ से मूर्ख कहीं का ! ले जा अपनी शक्ल यहाँ से, मैं देखना नहीं चाहता इसे। कहता है उसने जानबूझ कर मेरी नीरू को कष्ट दिया है। ओ पाजी हरामजादे कहीं के। तेरी बातें सुनकर तो कलेजा मुँह को आता है। चल तू मेरे सामने से, मुँह काला कर—

'सहन करूँ कैसे मैं दूसरों की बातें' गाते हुए विपिन का प्रवेश

विपिन—(स्वगत) सोचा था बूढ़ा शायद वापिस बुलाये, पर ये है भी एक नम्बर ! वापिस बुलाने का नाम तक नहीं लिया। अरे बूढ़ा तो यहीं है (प्रगट में) बैकुण्ठ बाबू मैं अपना सामान लेने आया हूँ। अपनी गुड़गुड़ी और बैग भूल गया था यहीं। अरे ओ इसना जल्दी से कोई मजूर तो ले आ रे !

बैकुण्ठ—अरे आप जा क्यों रहे हैं, आप यहीं रहें, कहीं न जायँ !

विपिन—बैणी नहीं, विपिन बाबू कहिये ना ?

बैकुण्ठ—जी हाँ विपिन बाबू ! आप नाराज मत हुइये। हम इस कमरे को खाली किये देते हैं, आप ही रहिये यहाँ पर !

विपिन—फिर इन पुस्तकों का क्या होगा यहाँ ?

बैकुण्ठ—रुष्ट न हों विपिन बाबू। अभी सब कुछ हटाये लेते हैं।

(बैकुण्ठ बाबू अलमारी से पुस्तकें उतारने लगते हैं।)

ईशान—(स्वगत) भगवन् ! यह वही किताबे हैं, जिन्हें हमारे बाबू प्राणों से भी अधिक प्यार करते थे। बिल्कुल विधवा के बच्चों की तरह इन्हें झाड़ पोंछ कर धूल से बचाया करते थे; पर आज वह स्वयं अपने हाथों से धूल में इनको फेंक रहे हैं। हे भगवान !

(आँसू पोंछता है)

विपिन—मैं केदार के कमरे में अपनी जो है सो अफीम की डिबिया भूल आया हूँ, तनिक उसे लेने जा रहा हूँ।

(सहन करूँ कैसे गाते हुए प्रस्थान)

तीनकौड़ी का प्रवेश

तीनकौड़ी—ओह धन्य भाग ! आप मिल गये बड़े बाबू !! अच्छे तो हैं न।

बैकुण्ठ—अरे वाह भैया तीन कौड़ी, तुम खूब समय पर मिले । बड़े दिनों बाद आज दिखाई दिये, कहीं चले गये थे क्या ? हो तो मजे में ?

तीनकौड़ी—फिकर छोड़िये पुरानी बात की । अब बहुत दिन तक देखा करेंगे । आज मैं उस दिन की बात की क्षमा माँगने आया हूँ, अपनी पोथी निकालिये और मुझे खूब सुनाइये जीभर कर !

वैकुण्ठ—अरे भाई तीनकौड़ी पोथी-ओथी सब मैंने छोड़छाड़ दी । अब तुम को यह बूढ़ा और कभी तंग न करेगा तुम आराम से यहाँ रहो ।

तीनकौड़ी—तो क्या अब आप बिल्कुल नहीं लिखा करेंगे ?

बैकुण्ठ—अरे हाँ भाई यह लिखने विखने का तो मैंने विचार बिल्कुल ही त्याग दिया अब ।

तीन कौड़ी—क्या यह बात बिल्कुल सत्य है ?

बैकुण्ठ—हाँ भाई शौक ही गिर गया ।

तीन कौड़ी—ओ-फ् तब तो मेरी जान बच गई ! अच्छा अब तो मुझे छुट्टी मिल गई न, अब मैं जा सकता हूँ न ?

बकुण्ठ—अच्छा तुम जाओगे कहाँ, तीन कौड़ी ?

तीन कौड़ी—दुर्भाग्य जहाँ खदेड़ कर ले जाय अभागे तीन कौड़ी को । सोचा था, खदेड़ने का समय अभी नहीं आया । आपकी पोथी बहुत सुनती है, सब सुनके ही जाऊँगा । खैर···आपने अच्छा ही किया मेरे लिये—अच्छा बिदा दीजिये···प्रणाम !

वैकुण्ठ—जहाँ जाओ सुखी रहो बेटा, भगवान तुम्हारा भला करे !

तीन कौड़ी—(स्वगत) अन्दर ही अन्दर कुछ गड़बड़-सी दीख रही है । कुछ समझ में बात नहीं आती ! (प्रगट) भाई ईशान आज तुम से बड़े दिन बाद, भेंट हुई, पर हमेशा की तरह तुम डंडा लेकर मेरे पीछे क्यों नहीं पड़े ? क्या कोई क्रान्ति हो गयी है ?

अविनाश का प्रवेश

अविनाश—भाई सा'ब । न जाने ऐरे गैरे पचकल्यानी कहाँ से आपने घर में इकट्ठे कर लिये हैं, मेरी तो नाक में दम आ गया है। घर में रहना इन्होंने दूभर कर दिया है।

वैकुण्ठ—अरे अवि क्या कहते हो ? वह क्या मेरे अपने हैं कुछ, सब के सब तुम्हारे ही तो अपने···

अविनाश—वह मेरे कौन हैं ? सब के सब केदार के अपने रिश्तेदार या मिलने वाले हैं, और आपने ही उन सब को घर में स्थान दिया है। यही कारण है कि मैं उनसे कुछ भी नहीं कह पाता। अगर आप से हो सके तो घर सम्हालें मैं तो घर छोड़ रहा हूं। मुझ से तो घर सम्हाले नहीं सम्हला है। मैं तो चला···

वैकुण्ठ—पर घर छोड़ने की बात तो मैं ही सोच रहा हूं !

तीन कौड़ी—इससे तो अच्छा यह है कि वही लोग घर छोड़ जायं, जिनके कारण आपको घर छोड़ना पड़ रहा है ! फिर वह लोग होते ही कौन हैं घर में रहने वाले।

अविनाश—पता नहीं घर में एक बुढ़िया कहाँ से आ गई है, उसने सारा घर आसमान पर उठा रखा है। मेरी तो नाक में दम कर दिया है। एक भी नौकरानी घर में नहीं टिक सकी। मैंने सब कुछ सह लिया पर सहने की हद होती है। आज मेरे सामने उस खूसट ने नीरु पर हाथ उठाया है। अभी-अभी मैं उसे गंगा के पार पहुँचा के आ रहा हूं। मुझ से नहीं देखा गया यह सब !

ईशान—बने रहो छोटे बाबू ! भगवान तुम्हें हजार वर्ष की उमर और दें !

वैकुण्ठ—पर मैंने सुना था कि वह बुढ़िया बहू की कुछ लगती थीं। उनको तुमने···

तीन कौड़ी—लगती वगती कुछ नहीं हैं। बुढ़िया केदार की बूआ है। उस डायन से तो ब्याह करके केदार के फूफा ही न जी सके, औरों की क्या कही जाय ! जब विधवा होकर माँ के यहाँ गई तो भाई को खा गई। और जब आखिर में केदार ने देखा कि उसके भी जान के लाले पड़ गये हैं तो उस खूसट को उसने तुम्हारे घर में ठूंस दिया !

अविनाश—भाई सा'ब। आप अपनी पुस्तकें नीचे क्यों डाल रहे हैं, टेबिल कहाँ गई, जिस पर वह रखी जाती थीं।

ईशान—इस कमरे में जो साहब रहते हैं न, उनको इन किताबों से और बड़े बाबू से तकलीफ पहुँचती है, सो उन्होंने बड़े बाबू को कमरा खाली करने का नोटिस दे दिया है!

अविनाश—तो क्या भाई साहब कमरा छोड़ेंगे?

विपिन का प्रवेश

विपिन—'पराई बातें मैं कैसे सहूँ'—

अविनाश—(धक्का देते हुये) बाहर हो, बाहर। अभी चले जाओ यहाँ से अभी! इसी मिनट, इसी सैकिंड चलो···चलो···चलो यहाँ से। निकल जाओ!

बैकुण्ठ—अरे···रे···ओ मूर्ख तू क्या करता है। बैणी बाबू से···

विपिन—बैणी बाबू नहीं, विपिन बाबू।

बैकण्ठ—हाँ रे तू विपिन बाबू की आबरू ले रहा है। अरे तुझे हो क्या गया?

तीन कौड़ी—केदार को इस समय बुलाना ठीक होगा, ताकि अपनी आँखों से सब कुछ देख ले।

(प्रस्थान)

ईशान विपिन को जबरन बाहर कर देता है

विपिन—ओ रे भाई इसना, कम से कम एक मजदूर तो बुला देता। मेरा हुक्का और कैबनेस का बेग···

(प्रस्थान)

बैकुण्ठ—इतना हराम जादा पन—ओ हरामजादे! पाजी कहीं के। तू ने एक शरीफ आदमी का···तुझे आज···

ईशान—आपकी इच्छा बड़े बाबू! आज मैं बहुत खुश हूँ। चाहे मुझे मारो, चाहे गाली दो, जो कुछ जी में आवे करो। मैं बहुत प्रसन्न हूँ।

केदार के साथ तीनकोड़ी का प्रवेश

केदार—क्या नाम भला उसका, अविनाश बाबू मुझे बुलाया था आपने?

अविनाश—हूँ ! हाँ मैंने आपको बुलाया था। कांठी तैयार है आपके लिये, पधारिये तो सही यहाँ !

केदार—अरे भैया तुम्हारा हास्य—क्या नाम भला उसका—औरों से बड़ा कड़ा होता है।

बैकुण्ठ—ओरे···अविनाश ! तुझे आज हो क्या गया है। केदार बाबू आप बुरा न मानें आज इसको पता नहीं क्या हो गया है ! भला कहीं अपने रिश्ते-दारों के साथ ऐसा व्यवहार किया जाता है रे ! मेरी समझ में तो कुछ भी आता नहीं है !

अविनाश—मुझे सबकुछ मालूम है, आज सबको घर से निकालकर दम लूँगा।

तीनकौड़ी—अरे साहब आप इनको पहचानते ही नहीं, आप इन्हें सामने के दरवाजे से निकालेंगे तो यह पीछे के दरवाजे से घुस अवश्य आयेंगे, किसी न किसी तरह !

अविनाश—घबराओ मत तुम्हारा नम्बर भी आनेवाला है अब !

तीनकौड़ी—हा-हा-हा-हा ! सबको एक मार्ग से मत भगाना भूलकर भी। सारे ग्रह यदि फिर इकट्ठे हो गए तो बस बना बनाया काम फिर बिगड़ गया ही समझो !

केदार—अविनाश बाबू ! क्या नाम भला उसका—तो मेरे लिए कर-कमलों के बजाय चरणतले ही निश्चय हुआ तुम्हारा।

अविनाश—जी हाँ, जो जिस लायक होता है, उसे वही स्थान मिला करता है। कर्म गति—

केदार—अगर यही बात है इसनू तो जाओ एक बढ़िया सा ताँगा ले आओ जिसमें सामान रखा जा सके !

तीनकौड़ी—मैं तो सोच रहा था, शायद अबकी बार अकेला ही जाना पड़ेगा यहाँ से ! आखिर मसल मशहूर है—'जे न मित्र दुख होयँ दुखारी।' तुम सब ने भी साथ दिया। मैं बराबर देखता आ रहा हूँ कि इस तीनकौड़िया को सब लोग छोड़ देते हैं, पर तुम लोग अन्त तक साथ निभाते हो। मैं तो तुमसे

लिये बेफ़िक्र रहता हूँ इसलिये बेफ़िक्र रहता हूँ इसलिये बेफ़िक्र रहता हूँ इसलि
[illegible] आख़िर है [illegible] आख़िर है [illegible] आख़िर है [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ही कहीं [illegible] ही कहीं [illegible] ही कहीं [illegible]
ओरे इसना ! बैकुण्ठ—ओरे इसना ! बैकुण्ठ—ओरे इसना ! बैकुण्ठ—

पात्र-परिचय

राजा विक्रम	इसकी रानी सुमित्रा
देवदत्त	राजा का ब्राह्मण
मंत्री	
सेनापति	
राजकुमार सैन	रानी का भाई
शंकर	राजकुमार सैन का कर्मचारी
चन्द्रसेन	राजकुमार सैन का चाचा
रेवती	चन्द्रसैन की पत्नी
अमाला	पहाड़ी राज्य का एक सरदार
ईला	सरदार की पुत्री

इनके सिवाय सिपाही कर्मचारी आदि

प्रथम दृश्य

(राज्य-महल की वाटिका--राजा विक्रम और उसकी रानी सुमित्रा)

राजा--रानी ! क्या बात हुई ? तुम्हें देर हो गई ।

रानी--मेरे राजा ! क्या तुम यह नहीं जानते कि मैं जहाँ भी हूँ केवल तुम्हारे लिए हूँ । तुम्हारे घर के काम-काज के कारण ही मैं रुकी रही, लेकिन तुमसे दूर नहीं थी ।

राजा--छोड़ो इस काम-काज को । मेरा हृदय नहीं चाहता कि संसार का कोई कार्य मुझे तुमसे पृथक रक्खे । तुम केवल मेरे लिए हो ।

रानी--नहीं राजा ! मैं तुम्हारे हृदय में तुम्हारी प्रिय पत्नी की तरह हूँ । परन्तु तुम्हारे संसार की रानी की तरह हूँ ।

राजा--मेरी प्यारी रानी ! कहाँ गए वे दिन जब हमारी तुम्हारी पहली भेंट हुई थी, और हमारी प्रसन्नताएँ केवल हमारे लिए ही थीं । उस समय हमारा संसार हमारे हृदय में नहीं जागा था । एक दीर्घ शांति में हमारा प्रातः हुआ था । तुम्हारी आँखों में विचित्र लज्जा थी । ऐसा ज्ञात होता था मानो ओस की एक बूंद फूल की पत्तियों से लिपटी हुई थी । तुम्हारे होठों पर मुस्कान इस प्रकार खिलती थी मानो एक नन्हा-सा दीपक हलकी-फुलकी हवा में जल रहा हो । तुमने मुझे हृदय से लगा लिया था । जब हम दोनों अलग होने लगे तो तुम्हारे बोझल चरण उठते ही नहीं थे । तुम जाना ही नहीं चाहती थीं । उस वक्त कहाँ था घर का काम-काज ? कहाँ था संसार का जंजाल ?

रानी--राजा ! क्या बातें कर रहे हो ? उस समय हम लड़का और लड़की थे और इस समय हम राजा और रानी हैं ।

राजा--राजा और रानी केवल नाम के हैं । हम इससे कुछ अधिक हैं । हम एक दूसरे से प्रेम करते हैं ।

रानी--तुम मेरे राजा भी हो और पति भी । मुझे तुम्हारे पीछे चलने

से बड़ी शान्ति मिलती है। तुम पहले राजा हो और फिर कुछ और।

राजा—क्या तुम्हें मेरे प्यार की आवश्यकता नहीं ?

रानी—मुझसे प्रेम करो, परन्तु मेरे प्रेम को नष्ट न करो।

राजा—यदि मैं स्त्री के हृदय को समझ सकता ?

रानी—राजा ! अगर तुम सारा प्रेम मुझ पर व्यय कर दोगे तो एक दिन मुझसे हाथ धोना पड़ेगा।

राजा—इन व्यर्थ की बातों को छोड़ो। पक्षियों के नीड़ प्रेम से शान्त हैं। होठों को होठों की रक्षा करनी चाहिए। शब्द तो बहुधा व्यर्थ होते हैं।

एक सेवक का प्रवेश

सेवक—महाराज ! मंत्री जी दर्शन के लिए उपस्थित होना चाहते हैं। किसी आवश्यक विषय पर आपकी आज्ञा लेना चाहते हैं।

राजा—नहीं इस समय नहीं।

(सेवक का प्रस्थान)

रानी—राजा ! उसे भीतर आने दो।

राजा—राजकाज तो होते ही रहेंगे। रसीला समय कभी-कभी आता है वह फूल की पत्ती की तरह कोमल होता है। कर्त्तव्य को अवकाश दे देना भी कर्त्तव्य है।

रानी—महाराज ! मैं प्रार्थना करती हूँ कि आप राज-काज की तरफ़ अधिक ध्यान दिया करें।

राजा—तुम बड़ी कठोर हृदय स्त्री हो। क्या तुम सोचती हो कि मैं सर्वथा तथा सर्वदा तुम्हारे कहने में चलता रहूँगा। लो मैं जा रहा हूँ।

(प्रस्थान)

राजा का पुरोहित देवदत्त आता है।

रानी—गुरूजी ! यह तो बताइये कि फाटक पर कोलाहल क्यों हो रहा है ?

देवदत्त—वह कोलाहल ! मुझे आज्ञा दीजिए ताकि मैं सैनिकों को लेकर उस कोलाहल को दूर कर दूं। पाजी ! भूखे लोग।

रानी—हास्य न कीजिए। मुझे बताइए कि बात क्या है ?

देवदत्त—कुछ भी नहीं। केवल भूख है। पाजी लोग भूखे हैं, लोग कोला-

हल कर रहे हैं और तुम्हारी वाटिका के कोमल पक्षियों को भयभीत कर रहे हैं।

रानी—गुरूजी ! मुझे बताओ कि कौन भूखे हैं।

देवदत्त—उन पाजियों की प्रारब्ध ही भ्रष्ट है। राजा की दीन-हीन प्रजा दीर्घकाल से एक जून दो रोटी खाकर जीवित रही है। परन्तु अब उन गधों को भूख सहन ही नहीं होती है। यह कितने आश्चर्य की बात है ?

रानी—शोक ! राजा की पृथ्वी अन्न से भरी पड़ी है, परन्तु उसकी प्रजा दाने-दाने को तरस रही है।

देवदत्त—अन्न तो उसका है, जिसकी पृथ्वी है। वह दीनों के लिए नहीं होता। जब राजा भोजन करता है तब भूखे किसान फाटक के कोने में खड़े हो जाते हैं। उनको या तो जूठे टुकड़े मिल जाते हैं या धक्के।

रानी—इसका अभिप्राय है कि यहाँ का कोई राजा नहीं है।

देवदत्त—एक नहीं, सैकड़ों राजा हैं। राजा का प्रत्येक कर्मचारी राजा बना फिरता है।

रानी—क्या राजा के अधिकारी लोग देखभाल नहीं करते।

देवदत्त—आपके अधिकारियों पर कोई दोष नहीं लगाया जा सकता। वह परदेश से खाली हाथ आए थे और अब राजा की प्रजा खाली हाथ है।

रानी—परदेश से ? क्या वह लोग हम लोगों के सम्बन्धी हैं।

देवदत्त—जी हाँ ! सम्बन्धी हैं, मित्र हैं और मित्र के मित्र हैं।

रानी—जयसेन के सम्बन्ध में तुम क्या कहते हो ?

देवदत्त—वह संघर प्रान्त पर राज्य करता है। और सब वस्तुएँ समेटकर अपने घर भेज देता है। केवल हड्डियाँ शेष रह जाती हैं।

रानी—और शीलसेन ?

देवदत्त—वह व्यापार का मंत्री है। समस्त व्यापारियों का आधा लाभ स्वयं समेट लेता है।

रानी—और अजीत ?

देवदत्त—वह विजयकोट का सूबेदार है, और हर समय हँसता रहता है। वह जो कुछ चाहता है, प्राप्त कर लेता है। फिर हँसे क्यों नहीं।

रानी—कितनी लज्जा की बात है ? मैं अपने पिता के राज्य से ये कूड़ा कर्कट अवश्य बाहर निकालूंगी और अपनी प्रजा को बचाऊँगी । अब तुम जाओ। राजा आ रहा है।

राजा आते हैं ।

रानी—मैं अपनी प्रजा की माता हूँ । मैं उनकी ठंडी साँसें नहीं सुन सकती। राजा ! उन्हें बचाओ ।

राजा—तुम क्या चाहती हो ?

रानी—जो अधिकारी लोग प्रजा पर अत्याचार कर रहे हैं, उन्हें बाहर निकाल दो ।

राजा—तुम जानती हो कि वह कौन है ?

रानी—हाँ, मैं जानती हूँ ।

राजा—वह तुम्हारे सम्बन्धी के सम्बन्धी हैं ?

रानी—मेरा कोई सम्बन्धी नहीं, वे डाकू हैं और मैं प्रजा की माता हूँ । वे डाकू लोग तुम्हारे सिंहासन के पीछे खड़े होकर अपना आखेट खोजा करते हैं।

राजा—जयसेन शीलसेन और अजीतसेन ।

रानी—उन तीनों की सफ़ाई कर दो ।

राजा—परन्तु वह विना युद्ध किए नहीं भागेंगे ?

रानी—तो फिर उनसे संग्राम करो ।

राजा—संग्राम ? पहले मैं तुम्हें विजय कर लूं फिर दूसरों को विजय करने की बारी आएगी ।

रानी—राजा ! मैं तुम्हारी रानी हूँ । मैं तुम्हारी प्रजा को बचाऊँगी ।

(रानी का प्रस्थान)

राजा—तुम इसी तरह मुझे निराश कर दिया करती हो । तुम पर्वत के सर्वोच्च शिखर पर बैठी हो, जहाँ मैं पहुँच नहीं सकता । तुम अपने ईश्वर को ढूंढ़ने निकल जाती हो मैं तुम्हारे पीछे-पीछे मारा-मारा फिरा करता हूँ ।

देवदत्त का प्रवेश

देवदत्त—महाराज ! महारानी कहाँ हैं ? आप अकेले क्यों हैं ?

राजा—ब्राह्मण ! यह तुम्हारी ही करतूत है। तुम यहाँ आया करते हो और यहाँ महारानी को राजकाज की सूचना दे जाया करते हो।

देवदत्त—महाराज ! प्रजा चिल्ला रही है और उसके चिल्लाने का उच्च स्वर रानी के कानों में भी घुसता जाता है। वह हाहाकारी स्वर बहुत ऊँचा हो चुका है। वही स्वर आपके विश्राम में धक्का लगा रहा है। महाराज मुझसे भय करने की आवश्यकता नहीं है। मैं तो रानी जी से वेतन लेने आया था। घर में अनाज नहीं है और ब्राह्मणी कोलाहल कर रही है ?

(देवदत्त बाहर जाता है।)

राजा—मैं अपनी प्रजा के लिए प्रसन्नता चाहता हूँ। यह अन्याय और अत्याचार क्यों है ? ये बलवान लोग निर्बलों का रक्त क्यों चूस रहे हैं ?

प्रधान मन्त्री आता है।

राजा—समस्त प्रदेशी डाकुओं को मेरे राज्य की सीमा से बाहर निकाल दो। मैं पीड़ितों के आँसू अधिक समय तक नहीं देख सकता।

मन्त्री—महाराज ! जो बुराई दीर्घकालीन होने के कारण जड़ पकड़ चुकी है, वह एक दिन में कैसे जा सकती है ?

राजा—जड़ पर जोर से कुल्हाड़ी चला दो। सौ साल का पुराना पेड़ भी एक क्षण में गिराया जा सकता है।

मन्त्री—उसके लिए हमें अस्त्र-शस्त्र और सैनिकों की आवश्यकता है।

राजा—सेनापति कहाँ हैं ?

मन्त्री—वह भी विदेशी हैं।

राजा—तो उस भूखी प्रजा को भीतर बुला लो। मेरा कोष खोल दो। भूखों की ठंडी साँसें बन्द होनी चाहिएँ। उनको रुपया दो; उनको अनाज दो और अगर वे राज्य चाहें तो उनको राज्य भी दे दो। परन्तु, उनसे कह दो कि कोलाहल न करें। जो करना हो शान्ति से करें।

(राजा बाहर जाता है)

रानी और देवदत्त आते हैं।

मन्त्री—महारानी ! मैं आपके चरण-स्पर्श करता हूँ।

रानी—यह क्या है ? हमारे देश में कितना अंधेर मचा हुआ है ?

मन्त्री—आपकी क्या आज्ञा है—महारानी?

रानी—समस्त विदेशी अधिकारियों को इकट्ठा करो।

मन्त्री—मैंने सबके पास निमन्त्रण-पत्र भेज दिए हैं।

रानी—कब दूत भेजे ?

मन्त्री—एक महीना हो गया। मैं उनके उत्तरों की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। मुझे भय है कि वे उत्तर नहीं देंगे।

रानी—राजा के पत्र का उत्तर नहीं देंगे।

देवदत्त—राजा तो उनके लिए एक समाचार की तरह है, चाहें वे मानें या न मानें।

रानी—मन्त्री ! तम अपने सैनिक जमा करो मैं स्वयं उनसे उत्तर लेना चाहूँगी।

(मन्त्री बाहर जाता है।)

देवदत्त—महारानी ! वे आयेंगे नहीं !

रानी—तो फिर राजा उनसे लड़ेगा।

देवदत्त—राजा नहीं लड़ेगा।

रानी—तो फिर मैं लड़ूँगी।

देवदत्त—तुम ?

रानी—मैं अपने भाई कश्मीर के राजा कुमारसेन के पास जाऊँगी। और उनकी सहायता से विद्रोहियों का सिर कुचलूंगी। गुरुजी ! तुम मुझे यहां से भागने में सहायता देना। यह तुम्हारा कर्तव्य है।

देवदत्त—प्रजा की माता ! मैं तुम्हारे चरण-स्पर्श करता हूँ।

(देवदत्त जाता है)

राजा आता है।

राजा—रानी तुम क्यों जा रही हो ? मेरी समस्त अभिलाषाएँ प्रकट हो चुकी हैं। क्या इसी कारण तुम्हें मुझपर घृणा हो गई है।

रानी—मुझे लज्जा आती है। मैं अकेली तुम्हारे हृदय की स्वामिनी नहीं

बनना चाहती, तुम्हारे हृदय पर प्रजा का भी अधिकार है।

राजा—क्यों रानी ! क्या यह बात सत्य है कि तुम बहुत ऊँचाई पर खड़ी हो और मैं रेत में भटक रहा हूँ। मैं अपनी शक्ति को पहचानता हूँ। परन्तु मैंने अपनी शक्ति को तुम्हारे प्रेम में परिवर्तित कर दिया है।

रानी—राजा ! मुझ से घृणा करो ! मुझे भूल जाओ। मैं तुम्हारे विरह के दुःख को भूल जाऊँगी। एक स्त्री के सौंदर्य के सामने अपनी शक्ति नष्ट न करो।

राजा—इतना प्रेम और इतना त्याग ! तुम्हारे त्याग ने मेरे हृदय पर एक चोट लगाई है। मेरे वक्ष में एक घाव हो गया है और वह घाव बिल्कुल नंगा है, पर तुम मुझे धूल में फेंकना चाहती हो।

रानी—मैं तुम्हारे चरणों में गिरती हूँ। तुम्हारी रानी ने सदा ही त्रुटियाँ की हैं, और आप सदा ही उसे क्षमा करते रहे हैं। जब मेरा कोई दोष नहीं है तो मुझ पर रुष्ट क्यों हो ?

राजा—उठो, मेरी हृदयेश्वरी। मेरे पास आओ। अपनी सुडौल बाहें मेरे गले में डाल दो। ताकि मेरे जीवन के समस्त मार्ग अन्यों के लिए बन्द हो जाएं और ये विश्व केवल तुम्हारा विश्व बनकर रह जाए।

(बाहर की एक आवाज़)

रानी—यह तो देवदत्त है। हाँ गुरुजी ! क्या सूचना है ?

देवदत्त का आगमन

देवदत्त—समस्त विदेशी हाकिमों ने राजाज्ञा को ठुकरा दिया है और वह विद्रोह के लिए तैयार हो रहे हैं।

रानी—सुन लिया राजन् तुमने ?

राजा—ब्राह्मण ! राजा की बाटिका खुला न्यायालय नहीं है।

देवदत्त—महाराज ! हम राजा से खुले न्यायालय में तो मिल नहीं सकते क्योंकि वह बाटिका नहीं है।

रानी—ओ नीच कुत्ते ! जो राजा के टुकड़ों पर पलकर मोटे हुए हैं वो अपने स्वामी के सामने भौंकने की हिम्मत कर रहे हैं।

देवदत्त—महाराज ! अब खुले न्यायालय में तर्क की आवश्यकता नहीं रही।

क्या अब भी आपको मार्ग स्पष्ट प्रतीत नहीं होता ? अपने सिपाही लेकर जाइये और इन नीचों का सिर कुचल दीजिए।

राजा—पर हमारा सेनापति भी तो विदेशी है।

रानी—तो आप स्वयं चले जाइए।

राजा—रानी ! मैं एक बात नहीं समझता। क्या मैं तुम्हारे लिए घृणा का पात्र हूँ या एक स्वप्नमात्र अथवा तुम्हारे हृदय में एक चुभता हुआ काँटा। मैं कभी भी यहाँ से एक पग नहीं हिलूंगा। मैं उनसे सन्धि करूँगा। उनका इसमें कोई दोष नहीं। एक ब्राह्मण और एक महिला ने मिलकर साज़िश की, कि साँप को उसके बिल से जगाया जाय। वे लोग जो इतने दुर्बल हैं कि अपनी रक्षा भी नहीं कर सकते, वे सदैव दूसरों के लिए कष्ट पैदा किया करते हैं।

रानी—आह ! यह देश कितना दुर्भाग्यशाली है ? और वह महिला कितनी दुर्भागिनी है जो इस देश की रानी है।

राजा—कहाँ जा रही हो ?

रानी—मैं तुम्हें छोड़ रही हूँ।

राजा—मुझे छोड़ रही हो ?

रानी—हाँ, विद्रोहियों से मैं स्वयं लड़ूँगी।

राजा—स्त्री ! मुझसे हास्य कर रही हो।

रानी—मैं बिदा लेने आई हूँ।

राजा—तुम मुझे त्यागकर नहीं जा सकती ?

रानी—मैं जानती हूँ कि मैं तुम्हें निर्बल बना रही हूँ। इसलिए तुम्हारे पास नहीं रहना चाहती हूँ।

राजा—ऐ घमण्डी स्त्री ! जाओ, मैं तुमसे वापिस आने के लिए कभी नहीं कहूँगा। लेकिन याद रखना ! मुझसे सहायता की आशा बिल्कुल नहीं रखना।

(रानी जाती है।)

देवदत्त—महाराज ! आपने रानी को अकेले ही जाने दिया।

राजा—वह नहीं जाएगी। मुझे पूरा विश्वास है।

देवदत्त—महाराज ! मेरा विचार है वह जा रही हैं।

राजा—यह तो त्रिया चरित्र है। वह मुझे केवल धमका रही है। मुझमें जीवन पैदा करना चाहती है और मैं उसके इन उपायों को पसन्द नहीं करता। मैं इसे जता देना चाहता हूँ कि हर बार यह मुझे खिलौना नहीं बना सकती। इसे पछताना पड़ेगा। हे मेरे ब्राह्मण मित्र ! क्या मैं यह कड़वा पाठ पढ़ लूँ कि राजा के लिए प्रेम नाम की कोई वस्तु नहीं होती और स्त्री से पाठ पढ़ लूँ जिसे मैंने हृदय की रानी बना लिया था। देवदत्त ! हम बचपन से इकट्ठे खेले हैं। क्या तुम एक क्षण के लिए भी भूल सकते हो कि मैं राजा हूँ और मेरे वक्ष में भी जनसाधारण की तरह एक हृदय है और उस हृदय में भी टीस है।

देवदत्त—मेरे मित्र ! मेरा हृदय तुम्हारे लिए है। वह तुम्हारा प्रेम भी स्वीकार करता है और क्रोध भी।

राजा—तो फिर तुम मेरे घर में साँप को क्यों बुला रहे हो ?

देवदत्त—महाराज ! आपके घर में आग लगी हुई थी। मैं तो केवल आपको जगाने के लिए एक समाचार लाया था, इसमें मेरा क्या अपराध है ?

राजा—जगाने से क्या लाभ ? जब कि सारा संसार स्वप्नवत् है। मुझे अपने लिए एक छोटा-सा स्वप्न चुन लेने देते और उसी स्वप्न में मुझे मर जाने देते। आज से पचास साल बाद कौन स्मरण करेगा कि हम पर क्या बीती थी। जाओ देवदत्त ! मुझे अकेला छोड़ दो। और राजाओं के दुख पर मनन करने दो।

एक परदेशी दरबारी का प्रवेश

दरबारी—महाराज ! हमारा न्याय कीजिए। हमने क्या बिगाड़ा था ? हम तो रानी के साथ इस देश में आए थे।

राजा—कैसा न्याय ?

दरबारी—हम पर झूठे आरोप लगाये जारहे हैं, हमारा अपराध तो केवल यह है कि हम अपराधी हैं।

राजा—कौन जानता है कि वह अपराध झूठे हैं या सच्चे ? लेकिन मुझे जब तक तुम पर भरोसा है, क्या तुम चुपचाप नहीं रह सकते। क्या राजा ने कभी तुम पर सन्देह किया ? सन्देह तो दुर्बल मनुष्यों के हृदय में पैदा हुआ

करता है, और विद्रोहियों से तो मैं किंचित भी नहीं डरा करता। विद्रोहियों को मैं पैरों तले कुचल दिया करता हूँ, पर मैं गन्दी बात या ओछी बात अपने दिमाग से सोच ही नहीं सकता, तुम इस समय जा सकते हो।

(दरबारी जाता है)

मंत्री और देवदत्त आते हैं

मंत्री—महाराज रानी ने महल त्याग दिया है, वह घोड़े पर सवार हो कर जा रही है।

राजा—क्या कहा ? महल छोड़कर चली गई।

मंत्री—हाँ महाराज !

राजा—तुमने रोका क्यों नहीं ?

मंत्री—वह चुपचाप निकल गईं।

राजा—तुम्हें फिर पता कैसे चला ?

मंत्री—मुझे पुजारी ने बताया, जब वह राजप्रसाद के मंदिर के सामने से निकलीं !

राजा—बुलाओ पुजारी को ?

मंत्री—महाराज रानी अभी बहुत दूर नहीं गई होंगी, वह अभी-अभी प्रसाद से निकली हैं। आप अब भी उन्हें वापिस ला सकते हैं।

राजा—रानी को वापिस लाना आवश्यक नहीं है, बड़ी बात तो यह है कि वह मुझे छोड़कर चली गई है। राजा के सिपाही, राजप्रसाद, बंदीघर लोहे की शृंखलाएँ कोई भी तो उसे रोक सके बाँध कर।

मंत्री—कलंक का टीका माथे पर लग जायेगा, चारों ओर से आक्षेप लगाये जायेंगे।

राजा—आक्षेप लगाने वालों की जिह्वा अपने विष में ही जल जायगी।

देवदत्त—जब सूर्य को ग्रहण लगता है तो आदमी मध्यान के समय टूटे हुए शीशे पर कालिख लगाकर सूर्य को देखते हैं। ऐ महारानी ! तुम्हारे नाम पर धब्बा तो आयेगा और बहुत से मुख तुम्हारे विरुद्ध बातें करेंगे, पर तुम सूर्य की तरह ही चमकती रहोगी।

राजा—पुजारी को मेरे पास लाओ (मंत्री बाहर जाता है) में अब भी उसके पीछे जाकर उसे वापिस ला सकता हूँ, क्या सदैव मेरा कार्य यही रहेगा कि वह मुझ से दूर-दूर भागती रहे और में उसके भागते हुये हृदय के पीछे भागता रहूँ। ए स्त्री ! जाओ, दिन-रात भागती रहो बिना घर के, बिना प्रेम के, बिना शांति के तुम जहाँ जाना चाहती हो जाओ ! में बहुत सुन चुका। में अब और अधिक नहीं सुनना चाहता (पुजारी बाहर जाना चाहता है) इधर आओ। मुझे यह बताओ कि जब वह मंदिर के सामने से निकली तो क्या वह प्रार्थना करने कुछ देर रुकी थी ? क्या उसके नेत्रों में आँसू थे ?

पुजारी—महाराज ! केवल एक पल के लिये महारानी ने अपना घोड़ा रोक कर मन्दिर की ओर देखा था। देखने के साथ ही उन्होंने सिर झुका लिया और फिर तुरत घोड़े में ऐड़ लगा दी जिससे घोड़ा हवा से बातें करने लगा। मन्दिर में प्रकाश कम था, इसलिये नहीं कह सकता कि उनकी आँखों में आँसू थे या नहीं।

राजा—उसकी आँखों में आँसू ? तुम इसके बारे में सोच भी नहीं सकते पुजारी ! तुम जाओ (पुजारी बाहर जाता है) हे ईश्वर ! तू जानता है कि बस मेरी एक ही त्रुटि है और वह है कि में इस स्त्री से प्रेम करता हूँ। में इसके प्रेम के लिए अपना राज्य, अपनी सारी दुनियाँ निछावर कर देने को तैयार था, पर इस स्त्री ने मुझसे छल किया।

मन्त्री आता है।

मन्त्री—महाराज मैंने घुड़सवार रानी के पीछे दौड़ा दिये हैं।

राजा—उन्हें वापिस बुलाओ, एक स्वप्न था जो टूट चुका है। तुम्हारे घुड़सवार स्वप्न को कैसे पकड़ सकेंगे। तुम मेरी फौज तैयार करो में स्वयं युद्ध के लिए जाना चाहता हूँ। अब में स्वयं विद्रोहियों का सिर कुचलूंगा।

मन्त्री—जो आज्ञा महाराज ! (मन्त्री जाता है)।

राजा—देवदत्त तुम उदास हो गये। एक चोर मेरे घर में घुसा था सो वह लूट का माल छोड़कर भाग गया। अब तो मुझे स्वतन्त्रता है, में बहुत प्रसन्न हूँ। लेकिन मित्र ! मुझे अपने शब्द भी धोखा दिखाई दे रहे हैं। एक तीर सा

मेरे हृदय में उतरा जा रहा है।

देवदत्त—महाराज अब आपके पास प्रेम और टीस के लिए कोई अवसर न रहा, अब आप राजा हैं, और राजा बनकर लोगों को दिखाना होगा।

राजा—मित्र अभी मेरा हृदय पूरी तरह स्वतन्त्र नहीं हुआ, अब मुझे विश्वास है कि वह लौट आयेगा, जब उसे प्रतीत होगा कि विश्व इससे प्रेम नहीं करता और स्त्री का विश्व केवल एक पुरुष का हृदय होता है तो वह अवश्य लौट आयेगी। वह एक साधारण से मार्ग पर चली गई है, वह साधारण मार्ग बड़े मार्ग से अवश्य आकर मिलेगा। जब भी उसका गर्व दूर हो जायेगा वह अवश्य मेरे पास आयेगी।

एक कर्मचारी आता है।

कर्मचारी—महारानी का एक पत्र। (पत्र देता है और बाहर चला जाता है)।

राजा—ओह ! पछताना तो उसे आरम्भ से ही हो गया था (पत्र पढ़ता है) केवल दो शब्द। मैं अपने भाई के पास काश्मीर जा रही हूँ और उसकी सहायता से विद्रोहियों को दबाऊँगी। आह ! मेरी इतनी तौहीन ! काश्मीर से सहायता।

दूसरा दृश्य

(काश्मीर में एक कैम्प। राजा और उसका सेनापति बातें कर रहे हैं)

सेनापति—महाराज यदि आज्ञा हो तो मैं आपके लाभ की एक बात कहूँ। हमारे देश में विद्रोह तो समाप्त हो गया, समस्त विद्रोही आपके समक्ष घुटने टेक चुके हैं, आप काश्मीर में बैठे अपनी शक्ति क्यों घटा रहे हैं। इस समय राजधानी में आपका रहना अत्यन्त आवश्यक है।

राजा—अभी युद्ध समाप्त नहीं हुआ !

सेनापति—पर रानी के भाई कुमारसेन को तो दंड मिल चुका। उसकी सेना परास्त हो गई, वह अपनी जान लिये भागा फिरता है। उसका चाचा चन्द्र-सेन राजा गद्दी पर बैठने के लिए बड़ा बेचैन है। उसे गद्दी पर बिठा दीजिये और इस अभागे देश को छोड़ दीजिए।

राजा—में यहाँ दंड देने के लिए नहीं ठहरा हुआ बल्कि एक युद्ध के लिये ठहरा हूँ। जिस प्रकार एक चित्रकार के लिए चित्र उसी प्रकार मेरे लिये युद्ध आवश्यक है। में नित्य एक चित्र में रंग भरना चाहता हूँ। ज्यों-ज्यों इस चित्र में रंगों का उभार होता जाता है, त्यों-त्यों मेरा युद्ध समाप्त होता जाता है। और जब वह चित्र समाप्त होगा तो फिर खेद के साथ इस देश से मुझे लौटना पड़ेगा।

सेनापति—महाराज ! पर यह कब तक ? अभी आपको बहुत से कार्य करने शेष हैं। मन्त्री समाचार भेज रहा है। वह बार-बार एक ही बात कह रहा है कि ये युद्ध हमारे देश को नष्ट कर रहा है !

राजा—में केवल अपने हाथ की वर्तमान वस्तु को देखता हूँ। तलवारों की जीत ! यह युद्ध और तुम्हारी शानदान वर्दी ! तुम अपना कर्तव्य निभाओ। तुम्हारी सम्मति तो तलवार की नोंक के साथ होनी चाहिए।

सेनापति बाहर चला जाता है

यही मुक्ति का मार्ग है। बन्दी स्वतन्त्र हो गया, उसके बंधन टूट गये। बदला प्रेम से बढ़ी शक्ति है ! बदला स्वतन्त्रता है, एक ऐसी स्वतन्त्रता जो प्रेम की मिठास से कोसों दूर होती है।

सेनापति आता है

सेनापति—महाराज एक गाड़ी आई हुई प्रतीत होती है। सम्भवत: संधि के लिए दूत आया है, उसके सिपाही नहीं है !

राजा—संधि युद्ध के बाद होतीहै, इसके लिये अभी समय नहीं है।

सेनापति—हमें दूत की बात तो सुन लेनी चाहिए, पश्चात्...

राजा—इसके पश्चात् युद्ध पूर्ववत् जारी रखना चाहिये।

एक सिपाही आता है

सिपाही—महाराज रानी आपसे मिलना चाहती हैं।

राजा—क्या कहा ?

सिपाही—रानी मिलना चाहती हैं।

राजा—कौन सी रानी ?

सिपाही—हमारी रानी सुमित्रा !

राजा—सेनापति, तुम जाकर पता लगाओ तो भला कौन है ?

सेनापति और सिपाही जाते हैं

राजा—जब से मैंने काश्मीर में युद्ध आरम्भ किया है, रानी तीसरी बार मेरे पास आई है, परन्तु यह स्वप्न नहीं है, यह तो युद्ध है। अचानक परेशान होना और अपने आपको बाटिका में पाना। वह फूल ! वह रानी ! इन वस्तुओं का यहाँ क्या आदर है ? यहाँ तो मुझ पर किसी का बस नहीं है। वह मुझे बन्दी बनाने आई है, पर उसकी यह भूल है। वह मुझे युद्ध-भूमि से विजय करके नहीं ले जा सकती। वह बिजली की कड़क को अपने बस में नहीं कर सकती !

सेनापति आता है

सेनापति—महाराज, हमारी रानी आपसे मिलना चाहती हैं, मुझे बड़ा दुख हुआ कि मैं स्वतन्त्रता पूर्वक उन्हें आपके समक्ष नहीं ला सका।

राजा—स्त्री से मिलने के लिए यह स्थान उपयुक्त नहीं है।

सेनापति—लेकिन महाराज !

राजा—कुछ नहीं, मेरे सिपाहियों को आदेश दो कि वह मेरे कैम्प के सामने पहरा लगायें। दुश्मन मेरे कैम्प में आ सकता है, परन्तु एक स्त्री नहीं।

सेनापति बाहर जाता है

शंकर—महाराज मैं शंकर हूँ। राजकुमार सेन का नौकर। आपने मुझे बन्दी बना लिया है।

राजा—हाँ, यह मैं जानता हूँ।

शंकर—आपकी रानी आपकी प्रतीक्षा में बाहर खड़ी हैं।

राजा—उसे मेरे कैम्प से बहुत दूर जाकर प्रतीक्षा करनी चहिये !

शंकर—महाराज, मैं आपसे कहने आया था कि रानी आपसे क्षमा माँगने आई हैं, और वह चाहती हैं कि आप अपने हाथ से उन्हें दण्ड दें। वह यह भी मानती हैं कि सारा अपराध उन्हीं का है इसीलिये वह आपसे प्रार्थना करती हैं कि आप ईश्वर के लिये उनके भाई के देश को छोड़ दें और उनके भाई के अपराध को क्षमा करें।

राजा—बूढ़े मनुष्य ! तुझे यह तो ज्ञात होना चाहिये कि यह युद्ध है, और यह युद्ध उसके भाई से हो रहा है, उस स्त्री से नहीं। मेरे पास समय कहाँ कि मैं उस स्त्री की नेकी और बदी पर सोचूं। तुम तो पुरुष हो, क्या तुम नहीं जानते कि जब युद्ध आरम्भ हो जाता है तो अन्त तक लड़ना पड़ता है।

शंकर—महाराज ! आप यह भी जानते हैं कि आप एक स्त्री के विरुद्ध युद्ध कर रहे हैं। और वह आपकी रानी है और हमारा राजा भी उसी स्त्री की सहायता के लिए लड़ रहा है, और वह भी इसलिये कि वह इस स्त्री का भाई है ! महाराज क्या यह बात राजाओं के लिए शोभा देती है कि घर के झगड़े को इतना खींचा जाय कि बहुत से देश उसकी लपेट में आ जायें।

राजा—बूढ़े ! तुम सीमा से बहुत आगे बढ़ रहे हो, जाओ रानी से जाकर कह दो कि जब तक उसका भाई कुमारसेन हार नहीं मानता, तब तक उसकी क्षमा के लिये यहाँ कोई बात नहीं उठा सकता।

शंकर—महाराज वह तो इतना ही असम्भव है जितना कि सूर्य के लिये पृथ्वी पर उतरना। हमारा राजा जब तक जीवित है हथियार नहीं डाल सकता।

राजा—तो फिर युद्ध जारी रहेगा। क्या तुम नहीं जानते कि एक समय ऐसा भी होता है जब बहादुरी बहादुरी नहीं होती, वरन् गर्व हो जाता है। तुम्हारा राजा बचकर नहीं जा सकता, मैंने उसे चारों ओर से घेर लिया है।

शंकर—हाँ, वह इस बात को जानता है और वह यह भी जानता है कि अभी एक बहुत बड़ी दरार शेष है।

राजा—इसका अर्थ ?

शंकर—मेरी बात का अर्थ···मृत्यु। मृत्यु का दरवाजा विजय का दरवाजा होता है, जिससे मनुष्य बचकर निकल जाया करता है।

(वह बाहर जाता है)

एक अन्य कर्मचारी आता है।

कर्मचारी—महाराज ! राजा का चाचा चन्द्रसेन और उसकी चाची रेवती आपसे मिलना चाहते हैं।

राजा—उन्हें भीतर ले आओ।

(कर्मचारी बाहर जाता है)

चन्द्रसेन और रेवती प्रवेश करते हैं।

राजा—मैं प्रणाम करता हूँ महाराज !

चन्द्रसेन—दीर्घायु हो राजन् !

रेवती—ईश्वर के लिये आपकी विजय हो।

चन्द्रसेन—उसके लिये क्या दंड स्वीकार किया आपने ?

राजा—यदि वह शस्त्र डाल दे तो मैं उसे क्षमा कर दूँगा।

रेवती—जी हाँ, यह बहुत होगा ? और अन्त में तो क्षमा करना ही है। समझ में नहीं आता जब ऐसी बात है तो फिर युद्ध की तैयारियाँ क्यों हैं ? राजा शरारती बच्चों की तरह तो हुआ नहीं करते और न युद्ध बच्चों का खेल है।

राजा—मेरा लक्ष्य डाका डालना नहीं, अपितु अपनी बात मनवाना था, वह शीश जिस पर मुकुट हो अपनी तौहीन स्वीकार नहीं कर सकता !

चन्द्रसेन—मेरे बेटे, उसे क्षमा कर दो, क्योंकि वह अभी बच्चा ही है, तुम उससे मुकुट और राज्य ले सकते हो। उसे देशनिकाला दे सकते हो, पर उसको मृत्युदंड कभी मत देना।

राजा—मैं उसके प्राण कभी और किसी भी दशा में नहीं लूंगा।

रेवती—तो, फिर ये फौजें किसलिये पड़ाव डाले पड़ी हैं। तुम सिपाहियों का रक्त बहा रहे हो, जो निर्दोष हैं; और उसे क्षमा कर रहे हो जो वास्तविक अपराधी है।

राजा—मैं तुम्हारी बात समझा नहीं ?

चन्द्रसेन—कुछ नहीं, वह कुमारसेन से तनिक रुष्ट हो गई है, क्योंकि उसने हमारे देश को संकट में डाल दिया है, और आपको भी सताया है जब कि आप हमारे सम्बन्धी हैं।

राजा—जब वह बन्दी होगा, तो उसके साथ पूरा-पूरा न्याय किया जायगा।

रेवती—मैं इसलिये आपके पास आई हूँ कि आपको बतला दूँ उसे हमने नहीं छुपाया है, जनता ने उसे छुपा रखा है; उनके खेत जला डालो, गाँवों को

भस्म कर दो, उन्हें भूखा मार डालो, फिर वह उसे ले आयेंगे।

चन्द्रसेन—तनिक संतोष करो महाराज! आप राज प्रासाद में पधारिये, आपके स्वागत के लिये सारा काश्मीर बेचैन है।

राजा—आप चलें, मैं आ जाऊँगा।

(वह बाहर चले जाते हैं)

ओह! यह नरक की आग। इस स्त्री का हृदय लालच और घृणा से भरा था। क्या इसके चेहरे में अपना ही प्रतिबिम्ब तो दिखाई नहीं दिया। क्या मेरी अपनी ही आग तो इसके नेत्रों में नहीं जल रही थी? क्या मेरे होंठ कातिल की तलवार की तरह बल तो नहीं खा रहे। नहीं! मेरी इच्छा तो युद्ध है? मैं न अत्याचार करना चाहता हूँ न मेरे मन में घृणा है। युद्ध की आग प्रेम की आग की तरह होती है, इसे दबाया नहीं जा सकता। इसे जो भी छुएगा भस्म हो जायेगा।

कर्मचारी आता है।

कर्मचारी—महाराज, ब्राह्मण देवदत्त आपसे मिलना चाहते हैं?

राजा—देवदत्त आ गया? उसे अन्दर बुलाओ। नहीं, नहीं, ठहरो। मुझे तनिक सोचने दो! मैं उसे जानता हूँ, वह मुझे युद्ध के मैदान से वापिस लेने आया होगा। ब्राह्मण! तुमने नदी के कगारों के नीचे विस्फोट की सुरंग उस समय लगाई जब कि पानी छलक गया। तुम यह चाहते हो कि नदी का पानी तुम्हारे खेतों को हराभरा बनाये! क्या यह बाढ़ तुम्हारे मकानों और तुम्हारे राज्यको बरबाद नहीं करेगी? डर और घृणा अन्धी होती है। इसकी आयु तो कम होती है, पर वह बहुत शीघ्र ही मस्त हाथी की तरह नष्ट-भ्रष्ट कर देती है। जब मेरी शक्ति समाप्त हो जायगी तब मुझे किसकी सम्मति की आवश्यकता होगी!

मैं ब्राह्मण से नहीं मिलूंगा।

(कर्मचारी बाहर जाता है)

चोर पहाड़ियों का सरदार भीतर आता है।

अमारो—महाराज मैं आपकी आज्ञा के अनुसार यहाँ पहुँच गया हूँ! मैं आपको अपना राजा स्वीकार करता हूँ।

राजा—तुम यहाँ के सरदार हो ?

अमारो—हाँ महाराज ! मैं त्रिचूर का सरदार हूँ, आप हमारे राजा हैं, और मैं आपका दास ! मेरी एक बेटी है उसका नाम ईला है । वह युवती और रूपवती है, वह आपके राजप्रसाद के योग्य है । बाहर प्रतीक्षा कर रही है, मुझे आज्ञा दीजिये ताकि उसे आपके पास भेज दूँ ।

(वह बाहर निकल जाता है)

ईला एक कर्मचारी के साथ भीतर आती है ।

राजा—वह सूर्य की किरण की तरह प्रवेश हो रही है, इससे पहले तो यहाँ अँधेरा सा प्रतीत होता था, वह युवती भी है और सुन्दर भी ! इधर आओ । ए सुन्दरी । तुमने युद्ध के मैदान को किसी और मैदान में बदल दिया है । युद्ध देवता के हृदय में छेद करने के लिये आखिर काश्मीर ने एक श्रेष्ठतीर चला ही दिया । मुझे कुछ ऐसा लगता है कि मैं जंगल में फिर रहा था, और तुम्हें ढूंढ़ रहा था । पर तुम पृथ्वी पर दृष्टि गढ़ा कर चुपचाप क्यों खड़ी हो, तुम्हारी टाँगें भी काँप रही हैं ।

ईला—राजा ! मैंने सुना है कि आप बहुत बड़े राजा हैं ! मुझे प्रार्थना कर लेने दीजिये !

राजा—ऐ कोमल लड़की ! उठो यह पृथ्वी इस योग्य नहीं है कि तुम्हारे चरण छू सकें । तुमने पृथ्वी पर क्यों घुटने टेक दिये, मेरे पास कुछ भी नहीं है, जिसे मैं तुमको दे सकूँ ।

ईला—मेरे पिता ने मुझे आपको दे दिया है, मैं स्वयं को आपके हाथों से वापिस नहीं लेना चाहती हूँ । आप बहुत बड़े राजा हैं, बहुत से देश आपके अधीन हैं आप मुझे इसी मिट्टी में छोड़ कर जा सकते हैं आपको मेरी आवश्यकता भी क्या हो सकती है ?

राजा—तो क्या मुझे किसी चीज की आवश्यकता ही नहीं ? मैं अपना हृदय तुम्हें किस प्रकार दिखाऊँ कि इसका अतुल कोष कहाँ है ? कहाँ है इसका राज्य ? काश मेरे पास राज्य न होता, केवल तुम होतीं······

ईला—तो पहले मेरी जान ले लीजिये, जैसा कि आप जंगल की हर वस्तु

के साथ करते हैं और उसका हृदय तीरों से छेद देते हैं।

राजा—पर ऐसा क्यों ? तुम्हें मुझ से घृणा क्यों है ? क्या मैं तुम्हारे योग्य बिल्कुल नहीं हूँ। मैंने अपने बाहुबल से कितने ही राजाओं को नीचा दिखाया है, क्या तुम अपना हृदय मुझे नहीं सौंप सकतीं।

ईला—परन्तु मेरा हृदय मेरा अपना नहीं है। कई महीने व्यतीत हो चुके मैं इसे एक अन्य व्यक्ति को दे चुकी हूँ। वह मुझे बचन देगया और चला गया कि पुराने जंगल के पेड़ों की परछाईं के नीचे वह अवश्य आयेगा। दिन व्यतीत हो गये, पर मैं इस जंगल में उसकी प्रतीक्षा कर रही हूँ। मैं अब भी उसी की प्रतीक्षा में हूँ। यदि वह आ गया और उसने मुझे वहाँ न पाया तो फिर क्या होगा ? यदि वह सदैव के लिये चला गया तो जंगल की परछाइयाँ अधूरी रह जायँगी। राजा ! मुझे स्वीकार न करो। मुझे उसके हाथों से न छीनो। मुझे कोई छोड़ गया है, और फिर पाने के लिये आने वाला है !

राजा—कितना भाग्यशाली है वह व्यक्ति ! ए लड़की मैं तुम्हें यह बताता हूं कि देवता हमारे प्रेम से जला करते हैं। मैं तुम्हें एक भेद बतलाता हूँ। एक समय था जब मैं सारी दुनियाँ से घृणा करता था, पर तब भी मैं प्रेम से प्रेम करता था। मैं अपने स्वप्न से जागा तो देखा कि दुनियाँ तो वहाँ की वहीं है, पर मेरा प्रेम एक बुलबुले की तरह फट गया। भला वह कौन है जिसकी तुम प्रतीक्षा कर रही हो ?

ईला—वह काश्मीर का राजा है, उसका नाम कुमारसैन है।

राजा—कुमारसैन ?

ईला—आप उसे जानते हैं, प्रत्येक मनुष्य उसे जानता है। काश्मीर के प्राण हैं कुमारसैन !

राजा—कुमारसैन ? काश्मीर का राजा ?

ईला—हाँ वह तो आपका मित्र होगा ?

राजा—लड़की ! क्या तुम्हें नहीं मालूम कि उसका सूर्य अस्त होगया है। उसकी आशा पर जीवित न रहो। वह एक घायल जानवर की तरह अपने प्राण बचाने भागा फिर रहा है। इन पहाड़ियों में एक गया गुजरा भिखारी भी उससे

अच्छी दशा में होगा !

ईला—महाराज में कुछ भी तो नहीं समझी ?

राजा—तुम नारियाँ तो केवल अपने प्रेम की बड़ाई में ही प्रसन्न रहती हो, तुम नहीं जानतीं कि दुनियाँ में कौनसा तूफान चल रहा है। तुम तो केवल यह जानती हो कि आँखों में आँसू भरकर आशाओं पर जीवित रहा जाय। ऐ सुन्दर लड़की ! इस दुनियाँ में कुछ निराश होना भी सीखो ?

ईला—मुझे सच बात बतलाइये, मुझे धोखा न दीजिये, मैं एक साधारण नारी हूँ। पर मैं हूँ उसी की, मेरा प्रेम उन्हें जंगलों में ढूँढ़ रहा है, और यदि वह सच्चा है तो ढूँढ़ भी अवश्य निकालेगा। मैं अपने घर से बाहर नहीं निकली, पर मैं उन्हें ढूँढ़ अवश्य लाऊँगी, आप मुझे मार्ग बतला दें।

राजा—उसके दुश्मन के सिपाही उसका पीछा कर रहे हैं, उसकी मृत्यु सिर पर मडरा रही है।

ईला—आप उनके कैसे मित्र हैं, क्या आप उन्हें बचायेंगे नहीं ? एक राजा दुख और संकट में हो और दूसरा बैठा देखता रहे, क्या राजा होकर अपने मित्र की सहायता करना आपका कर्तव्य नहीं है ? मैं यह जानती हूँ कि सारी दुनियाँ उसे प्रेम करती है, पर इस संकट के समय सारी दुनियाँ कहाँ चली गई महाराज ?

महाराज ! आप बहुत बड़े हैं, पर आपके बल का लाभ क्या ? यदि आप दूसरे बड़े आदमी को नहीं बचा सकते। क्या आप अलग रहेंगे ? फिर मुझे मार्ग दर्शाइये, मैं अपना जीवन बलिदान करूँगी। एक अबला का जीवन।

राजा—प्रेम किये जाओ लड़की, प्रेम किये जाओ, वह तुम्हारे अमूल्य हृदय का राजा है। मैं अपना प्रेम खो बैठा हूँ, पर मैं स्वयं को प्रसन्न करने के लिये तुम्हें प्रसन्न करूँगा। मैं तुम्हें प्रेम की स्वार्थी दृष्टि से नहीं देखता। फिर यदि सूखी टहनी पर कोई हरा फूल लटका दिया जाय तो भी वह टहनी हरी नहीं हो सकती। मुझ पर विश्वास करो मैं तुम्हारा मित्र हूँ ! मैं उसे तुम्हारे पास लाऊँगा।

ईला—महाराज मेरा जीवन आपके लिये है, आपने मेरी बड़ी सहायता की।

राजा—जाओ लड़की ब्याह के कपड़े पहिनो, मैं अपने गीत की गति बदलने वाला हूँ।

(ईला बाहर चली जाती है)

यह युद्ध भी कितना घृणित है। शांति से भी बुरा है। ऐ भगोड़े! तुम मुझसे अधिक भाग्यशाली हो! तुम जंगलों में मारे-मारे फिर रहे हो, पर एक स्त्री का प्रेम तुम्हारा पीछा कर रहा है! तुम्हारी पराजय विजय में बदल रही है! तुम्हारा सूर्य डूबा नहीं था, वरन् बादलों में छुप गया था!

देवदत्त आता है।

देवदत्त—महाराज मुझे बचाइये! वह लोग मेरा पीछा कर रहे हैं?

राजा—कौन हैं, वह लोग?

देवदत्त—महाराज आपके सिपाही हैं वह! आधे घण्टे से मुझे घेरे हुये हैं। मैंने इन्हें कविता सुनाई। वह समझते थे कि मैं मूर्ख हूँ। फिर मैंने कालीदास सुनाना आरम्भ किया, पर वह लोग सोगये। मैं कैम्प छोड़कर आपके पास आ गया।

राजा—उन सिपाहियों को दंड दिया जायगा, गधे कहीं के। जब वन्दी कालीदास सुना रहा है तो वह क्यों सो जाते हैं?

देवदत्त—दंड के बारे में तो फिर भी सोचा जा सकता है, पहले तो हमें यह निश्चित करना है कि इस युद्ध को बन्द करके हमें घर चल देना चाहिये—मैं अब तक यह सोचा करता था कि केवल वही लोग विरह में कष्ट पाते हैं, जिनके पास धन होता है, और जो ऐश्वर्य के साथ रहते हैं। पर जब से मैं यहाँ आया हूँ, तब से जानने लगा हूँ कि एक गरीब ब्राह्मण भी प्रेम का शिकार बन सकता है।

राजा—प्रेम और मृत्यु! अपने शिकार ढूँढ़ने में चुनाव नहीं किया करते। इस मामले में वह तुरत दाब लेते हैं। हाँ मित्र! हमें अब वापिस ही चलना है, पर जाने से पूर्व एक कार्य करना होगा कि त्रिचूर के सरदार से ज्ञात करो कि कुमारसैन कहाँ छुपा है, यदि तुम्हें वह मिल जाय तो उससे कह दो अब हम शत्रु नहीं हैं, और यदि तुम्हें वहाँ कोई और मिले, एक लड़की—!

देवदत्त—हाँ हाँ मैं जानता हूँ, वह आपके विचारों में बसी हुई है, पर हमारे शब्द भी उसे छू नहीं सकते !

राजा—मित्र तुम बसंत के पहले झोंके की तरह मेरे पास आये हो। अब फूल ही फूल होंगे चारों ओर बीते दिनों की बहार की तरह !

(देवदत्त बाहर जाता है।)

चन्द्रसेन आता है।

राजा—मैं तुमको एक समाचार सुनाता हूँ, मैंने कुमारसेन को क्षमा कर दिया है।

चन्द्ररसेन—आपने क्षमा कर दिया होगा, पर इस समय मैं काश्मीर का राजा हूँ। अब न्याय मुझे करना होगा। अब मेरे हाथों से उसे दंड मिलेगा ?

राजा—भला क्या दंड देंगे उसे ?

चन्द्रसेन—उसका राज्य छीन लिया जायेगा !

राजा—असम्भव ! मैं उसका राज्य नहीं छीन सकता !

चन्द्रसेन—काश्मीर की गद्दी पर आपको क्या हक है ?

राजा—एक विजय का अधिकार ! वह गद्दी मेरी है और मैं उसी को सोपता हूँ।

चन्द्रसेन—आप राज्य उसे सौंपते हैं, क्या मैं कुमार सेन को बचपन से नहीं जानता ? क्या आप समझते हैं कि वह अपने बाप की राजगद्दी को आपसे पुरस्कार की तरह ले लेगा ? वह पुरुस्कार ले सकता है, पर आपके हाथों भीख नहीं।

एक दूत आता है।

दूत—महाराज ! यह समाचार आया है कि कुमारसेन एक बन्द गाड़ी में आपके पास हथियार डालने आ रहे हैं।

(दूत चला जाता है।)

चन्द्रसेन—यह बात कभी नहीं मानी जासकती कि शेर अपनी लोह-शृंखलाओं को माँगने आ रहा है ? क्या जीवन इतना प्यारा है ?

राजा—पर वह बन्द गाड़ी में क्यों आ रहा है ?

चन्द्रसेन —वह लोगों को अपना मुँह नहीं दिखाना चाहता। देखने वालों

की हस्ती उसके हृदय में तीर की तरह लगेगी। महाराज जब वह आये तो दीपक बुझा दीजियेगा। इस प्रकाश में उसे दुख होगा।

देवदत्त आता है।

देवदत्त—कुमारसैन अपनी इक्षा से आ रहा है।

राजा—मैं उसका राजसी स्वागत करूँगा। समस्त सिपाहियों से कह दो कि वह विवाह के उत्सव की तैयारियाँ करें!

बूढ़े ब्राह्मण आते हैं।

सब के सब—महाराज की जय!

पहला ब्राह्मण—महाराज हमने सुना है कि आप हमारे राजा को राज्य वापिस कर देंगे, इसलिये हम आपको आशीरवाद देने आये हैं! आपने काश्मीर को संकट से बचा लिया है।

(वह आशीरवाद देते हैं, राजा सिर झुकाए खड़ा रहता है, ब्राह्मण वाहर चले जाते हैं, शंकर आता है।)

शंकर—(चन्द्रसैन से) महाराज क्या यह सच है कि कुमारसैन हथियार डालने आ रहा है?

चन्द्रसैन—हां यह सच है।

शंकर—यह बात बिलकुल झूठ है, ऐ मेरे राजा! मैं तुम्हारा पुराना सेवक हूँ, मैंने बड़े कष्ट उठाये हैं, पर कभी मुंह नहीं खोला। पर ये मैं कैसे सहन कर सकता हूँ कि आप काश्मीर की सड़कों पर चलकर बंदीघर के सींखचों में बन्द होने आ रहे हैं।

सिपाही आता है।

सिपाही—महाराज बन्द गाड़ी आ पहुँची है।

राजा—क्या यहाँ पर कोई वाद्य नहीं है? आज्ञा दो कि विवाह के बाजे बजें? (दरवाजे के पास पहुँचकर) मेरे मित्र मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ!

रानी सुमित्रा आती है, उसके हाथों में रूमाल से ढकी एक थाली है।

राजा—सुमित्रा! मेरी रानी!

रानी—महाराज तुम दिन-रात जिसे पहाड़ियों में ढूंढ़ते रहे, तुमने खेतों और

गाँवों में जिसके लिये हल चलवा दिये, आज उसने अपने हाथों अपना सर आपके पास भेजा है। इस सर पर आज मृत्यु मंडरा रही है, जो मुकुट से अधिक मूल्यवान है। यह लीजिए काश्मीर के युवराज का सिर।

राजा—मेरी रानी !

रानी—अब मैं आपकी रानी नहीं रही, क्योंकि मृत्यु का अधिकार मुझपर भी हो गया है।

(रानी गिरकर मर जाती है।)

शंकर—राजा ! मेरे स्वामी ! मेरे सुन्दर बच्चे ! राजा को ऐसा ही करना चाहिये था। तुमने सदैव के लिये गद्दी पाली। यही समय देखने के लिये भगवान् ने मुझे अब तक जीवित रखा था। तुमने काश्मीर की लाज रखली। अब मेरे दिन भी पूरे हो गये ! तुम्हारा नौकर तुम्हारे पीछे-पीछे ही आ रहा है।

ईला विवाह के कपड़े पहिने आती है।

ईला—मैं विवाह के वाद्य सुनकर आगई हूँ। कहाँ है मेरा प्रीतम ! मैं तैयार हूँ।

मालिनी

पात्र-परिचय

मालिनी	राजा की कन्या
महिषी	रानी
राजा	
सुप्रिय	एक श्रेष्ठ ब्राह्मण
क्षेमंकर	एक दूसरा ब्राह्मण सुप्रिय का मित्र

अन्य दूसरे पात्र प्रतिहारी, प्रहरी, ब्राह्मण गण आदि ।

पहला दृश्य

राज अन्तःपुर

मालिनी और काश्यप

काश्यप—दुख का भय, सुख की आशा त्याग दो वत्स, त्याग दो। विषय लालसा को दूर कर दो। संसार के समस्त बन्धन तोड़ दो, और प्रमोद-प्रलाप की चंचलता छोड़ दो, रात दिन मन में धारण करो स्वच्छ बुद्धि का प्रकाश, जिससे मोह, शोक बस में होकर दूर हो जायँ।

मालिनी—भगवन् मैं कमजोर हूँ, बंदनी हूँ, आँखों से मुझे कुछ भी दिखाई नहीं देता। सन्ध्या के समय कमलों के भीतर कैद हो जाने वाली भ्रमरी हूँ मैं, सोने की प्रतिमा-सी जड़ मृतक सी, पर फिर भी जब तुम कृपा करते हो मुक्ति का संगीत मेरे कानों में बज उठता है।

काश्यप—आशीर्वाद देता हूँ मैं, रात्रि का शीघ्र ही अन्त होगा, सूर्य रूपी ज्ञान के प्रकाश में, जाग्रत जगत के जयजयकार में, श्रेष्ठ लग्न में सुप्रभात में तुम्हारे फूलों के कारागार का द्वार खुल जायगा। वह महाक्षण आने ही वाला है। तीर्थ-पर्यटन के लिये मैं तो अब चला।

मालिनी—दासी का प्रणाम स्वीकार करो।

(प्रस्थान)

महाक्षण आने ही वाला है। हृदय चंचल हो गया है, कमल के पत्तों पर पड़ी बूँद के सदृश्य मेरा मन अस्थिर है। जब आँखें मूँदती हूँ तो आकाश का कोलाहल सुनाई पड़ता है। न जाने कौन क्या-क्या तैयारियाँ मुझे घेरकर कर रहे हैं। लगता है मेरे चारों ओर अदृश्य मूर्तियाँ घूम रही हैं। कभी बिजली-सी चमक आती है और प्रकाश दे जाती है। वायु की तरंगे शब्द कर-करके आघात करती हैं। न जाने बार-बार मर्मस्थल में व्यथा-सी क्या चुभती है। कुछ समझ में नहीं आता, जगत में आज बार-बार मुझे कौन बुला रहा है।

राजमहिषी का प्रवेश

महिषी—ओ बेटी, मेरी प्यारी बिटिया। मैं क्या करूँ! तुझे लेकर कहाँ जाऊँ? अरी बेटी, इस कच्ची उमर में तुझे क्या यह सब कुछ अच्छा लगता है। अरे तेरी वेषभूषा कहाँ गई? तेरे अलंकार कहाँ गये? मेरी 'सोने की उषा' आज 'स्वर्ण प्रभाहीन' सी हो रही है। क्या मां कभी अपने नेत्रों से यह सब दोष देख सकती है।

मालिनी—क्या कभी भिखारिन राजा के यहाँ जन्म नहीं लेती। गरीब परिवार में तू जो मां होकर जन्मी थी सो क्या भूल गई राजेश्वरी? बोल मां वह कहाँ जायेगी जो तेरे उस पिता की दरिद्रता जगत प्रसिद्ध थी। इसीसे आज मैंने तुम्हारे पिता का दैन्य अलंकार धारण किया है, यही तो मेरी शोभा है।

महिषी—तू मेरे पिता को उलाहना अपने पिता के गर्व में आकर देती है। अरी ओ गर्वित पुत्री! क्या तुझे मैंने इसीलिए अपने गर्भ में धारण किया था? क्या तू नहीं जानती मेरे पिता तेरे पिता से सौगुने धनी मानी हैं, इसीलिये धन रत्न से वह इतने उदासीन हैं।

मालिनी—यह बात तो सभी जानते हैं कि जिस दिन चाचा ने तुम्हारे पिता को पितृ-धन से वंचित किया था उसी दिन उन्होंने घर द्वार क्षोभ में आकर छोड़ दिया था। धन-जन, सम्पदा सभी कुछ त्याग दिया था निर्विकार मन से, और उसी दिन एकमात्र पैतृक देवमूर्ति अपनी दरिद्र कुटी में ले आये थे, उनके उस धर्म को ही जन्मकाल में मुझे सौंपा है मां तुमने, और कुछ नहीं। रहने दो न मां, अपने उस पितृकुल के दारिद्र घन को सदैव के लिये अपनी पुत्री के हृदय में। मेरे पिता का जो कुछ धन रत्नभार है उसे राजपुत्र के लिये रहने दो।

महिषी—मेरी बेटी तुझे यहाँ कौन समझाता है। तेरी बातें सुनकर न जाने क्यों मेरी आँखें भर आती हैं। जिस दिन तूने मेरी गोद में जन्म लिया था, शब्द-विहीन मूढ़ शिशु के रूप में, कौन जानता था तब कि दो दिन पश्चात् वही नन्हीं कली इतनी बातें करने लगेगी। तेरा मुख निहारा करती हूँ और मेरा हृदय डर से काँपता रहता है। अरी ओ सोने सी बच्ची तुझे यह धर्म मिला कहाँ से, भला किस शास्त्र से मिला? मेरे पिता का धर्म तो पुराना था वैदिक

अनादिकाल का और ये धर्म तो बिल्कुल संसार से न्यारा है, वेदों से न्यारा, आज का गढ़ा गया नया धर्म। भला कहाँ से घर में विधर्मी सन्यासी आते हैं ? मैं यह रूप देखकर दुखित होती हूँ। डर के मारे मरी जाती हूँ। भला क्या-क्या मन्त्र तुझे वे सिखाते हैं, जो तेरे सरल निष्कपट हृदय को मिथ्या के जाल में लपेट लेते हैं। सभी कहते हैं, वह बौद्ध है, जादू जानते हैं, प्रेत सिद्ध कर रखे हैं, पिशाच पन्थी हैं। मेरी बेटी, मेरी बात सुन, मेरी ! धर्म भला कोई ढूंढ़ना पड़ता है। धर्म तो सूर्य के समान, सदैव चमकता, सदैव एक-सा रहता है। तू उसी धर्म को अपना जो सरल है, सत्य है, सनातन है। पूर्ण भक्ति से आचार व्रत और क्रिया कर्म करो। रात-दिन शिवपूजा करो और भगवान से वर माँगो, जिससे उन जैसे ही पति मिलें। वह देवता तेरे पति ही बनेंगे। जो शास्त्र और वेदों में लिखे हैं। पंडित जिनके बारे में सोचा करते हैं। पुरुषों का तो नित्य धर्म बदलता रहता है देशकाल के अनुसार। वे सदैव हाहाकार करते रहते हैं शान्ति के लिए, सन्देहसागर में। शास्त्रों के शास्त्रार्थ में ही रक्तपात करते रहते हैं, पर रमणी का धर्म उसके हृदय में रहता है, गोद में सदैव पति और पुत्र के रूप में।

राजा का प्रवेश

राजा—शान्त होओ पुत्री, कुछ दिन के लिये अब ! क्योंकि ऊपर आकाश में आँधी के मेघ उमड़ रहे हैं।

महिषी—महाराज, ये झूठा डर कहाँ से साथ ले आये !

राजा—झूठा डर नहीं ! हायरी अबोध पुत्री मेरी ! यदि तू नया धर्म घर में लाना ही चाहती है तो क्या तू समझती है कि वह वर्षा ऋतु की नदी सदृश्य है जो किनारों को धसकाते हुये सब कुछ समेटे लिये चली जाती है, सबकी दृष्टि को अपनी ओर आकर्षित करती हुई। क्या लज्जा और त्रास उसके लिये कुछ नहीं हैं। अपना धर्म अपना ही होता है—जो सदैव निभृति हृदय में छिपा रहता है। उसे देखकर कोई हँसे नहीं, कठोर परिहास न करे, बस यही मेरा कहना है। यदि कोई धर्म धारण ही करना है तो करो, पर मन में और हृदय में धारण करो।

महिषी—महाराज ! इस तरह तिरस्कार क्यों करते हो, मानों मेरी बेटी ने कोई भारी-अपराध किया हो ? एक उन्हीं के ग्रन्थों में तो सारा सत्य नहीं लिखा ? क्या सत्य के बारे में अन्य ग्रन्थों में और किसी स्थान पर कुछ नहीं लिखा ? वे ब्राह्मण कहाँ हैं जो ऐसा कहते हैं, बुलाओ तो उन्हें ? ताकि वह मेरी पुत्री से सीख जायं कि वास्तव में धर्म है क्या ? उनके अधूरे धर्म को त्याग दो ! छीः-छीः ! मेरी प्यारी बेटी मैं तुम से नये धर्म की दीक्षा लूँगी और ब्राह्मणशास्त्र की जीर्ण शृंखला के बन्धन को तोड़ दूंगी। तुम्हें वे निर्वासन का दण्ड देंगे ! तुम निश्चित रहो महाराज ! तुम शायद मन में सोचते होगे यह कन्या तुम्हारी कन्या है, अन्य साधारण कन्याओं की नाईं। पर ये वैसी साधारण कन्या नहीं है, यह दीप्त अग्नि- शिखा है। मैं जो कुछ आज कहती हूँ सो तुम उसे सुनो—यह कन्या मानवी नहीं, कोई देवी है. जो तुम्हारे घर को पवित्र करने आई है। इसकी अवहेलना न करो। अचानक अपने खेल को समेट कर चली जायेगी। तब तुम हा-हाकार करोगे और फिर राज्य-पाट देकर भी इसे न पा सकोगे !

मालिनी—पिता जी प्रजा की प्रार्थना पूरी कीजिये ! मुझे निर्वासन दे दीजिये, क्योंकि महाक्षण निकट आ गया है !

राजा—क्यों पुत्री ! पिता के घर तेरे लिये क्या कमी है ? वाह्य जगत बड़ा जड़ और क्रूर है, क्या तू समझती नहीं कि वह माता-पिता की गोद नहीं है।

मालिनी—पिताजी मेरी बात सुनिये ! वास्तव में जो मुझे चाहते हैं, वही मेरा निर्वासन चाहते हैं। मां-मेरी बात सुन—मैं अपने चित्त की व्याकुलता को समझा सकने में असमर्थ हूँ। मां तू मुझे छोड़ दे, बिना किसी दुख और क्लेस के, पेड़ से टूटे पत्ते की तरह ! मैं सबसे जाकर कहूँगी कि राजदरवार में आकर बाहर का संसार मुझे मांग रहा है। पता नहीं क्या काम है, आज मेरा महाक्षण आगया है।

राजा—अरी अबोध बालिका भला तू कहती क्या है ?

मालिनी—पिताजी ! तुम नरपति हो, राजा का कर्तव्य पूरा करो ! मेरी मां ! तुम्हारे और भी तो पुत्र पुत्रियां हैं, फिर मेरी ममता क्यों नहीं छोड़ देतीं।

मुझे अपने मृदु-प्यार में अब और न बाँधो।

महिषी—सुनिये ! इसकी बात तो सुनिये !! मेरे मुख से बात तक नहीं निकली, बस तेरा मुख देखा करती हूँ ! क्यों बेटी जहाँ तू जन्मी है, क्या वहाँ तेरा स्थान नहीं है। मेरी लाड़ली ! क्या तू जगत लक्ष्मी है जो तेरे ऊपर ही सारे संसार का भार आ पड़ा। यह अपार संसार तेरे बिना मातृ-हीन है क्या ? जो वहाँ नये आदर से जायेगी। फिर हमारी रक्षणी कौन होगी, तेरे चले जाने के बाद ?

मालिनी—मैं जागकर भी स्वप्न देखा करती हूँ—नींद में सुनती हूँ, मानो आँधी चल रही हो पूरे वेग से! नदी में तूफान उठा है, अंधेरी रात है, नाव किनारे बँधी हुई है, पर कर्णधार कोई नहीं, कैसे पार होगी ? बिना घर के समस्त यात्री हताश हुये बैठे हैं। लगता है अब [illegible] सकती हूँ, मानो मैं कूल का पता जानती हूँ—मेरे छूने मात्र से ही नाव गतिमान हो जायगी, उसमें प्राण आजायेंगे, और वह पूरे वेग से चलने लगेगी। ऐसा मेरे मन में विश्वास न जाने कहाँ से आजाता है। मैं राज-कन्या हूँ, मैंने कभी वाह्य जगत तक नहीं देखा, एक ही स्थान पर रहती हूँ जन्मने से अब तक—चारों ओर सुख की दीवारें हैं—मुझे न जाने कौन यहाँ से निकालकर लिये जा रहा है। बन्धन तोड़ दो महाराज ! माँ छोड़दे मुझे, मैं कन्या नहीं, आज राजकन्या नहीं, मेरे तो अन्तर में हैं अग्निमय बाणी, वही हूँ मैं आज !

महिषी—महाराज सुनलिया आपने ? क्या कह रही है भला ये। समझ में नहीं आता क्या यह बालिका की बात है ? क्या यही है तुम्हारी कन्या। क्या मेरी ही कोख से जन्म लिया है इसने ?

राजा—बिल्कुल वैसे ही जैसे रात्रि उषा को जन्म देती है वैसे ही तुमने इसे जन्म दिया है। कन्या रात्रि की कुछ नहीं, विश्व की है, और विश्व को ही प्राण देती है, ऐसी है यह हमारी कन्या !

महिषी—महाराज इसीलिये मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि मोह-माया का जाल ढूंढ़देखो, कहाँ है ? जिससे यह देव-प्रतिमा बंध जाय। (कन्या के प्रति) यह तेरा कैसा वेश है जो मुँह पर बालों की लटें आ पड़ी हैं ! छीः बेटी स्वयं

का इतना अनादर ! आ, मेरे पास आ बेटी, ताकि तेरे केस अच्छी तरह बाँध दूँ । लोग क्या कहेंगे तुझे ? निर्वासन ! यदि यही ब्राह्मण का धर्म हो तो बेटी भले हो, हम भी सीख लें तुझसे नये धर्म को, और ये ब्राह्मण भी देखलें नये धर्म का उदय ! इधर तो आ उजाले में तेरा मुँह देखूँ बेटी ।

(महिषी और मालिनी का प्रस्थान ।)

सेना पति का प्रवेश

सेना पति—महाराज ! ब्राह्मणों के कहने से सारी प्रजा विद्रोही हो गई है, सारी प्रजा राजकुमारी का निर्वासन चाहती है !

राजा—तो शीघ्रता करो सेनापति, सामंत और नृपतियों को ले आओ !

[राजा और सेनापति का प्रस्थान]

दूसरा दृश्य

मंदिर के प्रांगण में ब्राह्मण गण

ब्राह्मण गण—निर्वासन ! निर्वासन !! राजकन्या का निर्वासन चाहते हैं हम !!!

क्षेमंकर—ब्राह्मण देवता आपकी बात का सार यही है । संकल्प दृढ़ रखना । समझे । भाइयो, और किसी शत्रु से डर नहीं, केवल नारी से डर लगता है । उसके सम्मुख अस्त्र टूट जाते हैं । सारे तर्क और युक्तियाँ परास्त हो जाती हैं । बाहुबल अपना मस्तक झुकाता है । हृदय में कुछ इसी तरह घर कर लेती है सम्राज्ञी-सम मनोहर महा सर्व नाशिनी !

चारुदत्त—आओ सब राज दरबार में चलें और जाकर कहें—रक्षा करो, रक्षा करो, महाराज ! आर्य-धर्म को ग्रसना चाहती है नागिनी और वह भी तुम्हारे ही नीड़ में से ।

सुप्रिय—धर्म ? पंडितो, मूर्खों को उपदेश देते हो—धर्म क्या है ? क्या धर्म यही है कि किसी निर्दोष को निर्वासित कर दिया जाय !

चारुदत्त—लगता है तुम कुल-शत्रु विभीषण हो । सभी सुकार्यों में विघ्न डालना ही क्या तुम्हें शोभा देता है ?

सोमाचार्य—धर्म की रक्षा के लिये हम सब ब्राह्मण समाज में एकत्रित हुये हैं। तुम सर्वनाश से दीवार तोड़क बीच में कहाँ से आगये ?

सुप्रिय—धर्माधर्म और सत्यासत्य का भला विचार कौन करेगा ? अपने विश्वास में भी क्या तुम सुदृढ़ हो ? शोर मचाकर और गुटबन्दी करके क्या तुम सत्य की मीमांसा करोगे ? युक्ति भी है कुछ तुम्हारे पास ?

चारुदत्त—बड़ा गर्व होगया है तुमको सुप्रिय !

सुप्रिय—प्रियवर यह मेरा गर्व नहीं है मैं अत्यन्त अज्ञानी हूँ। गर्व तो उन्हीं को है जो आज अनेकों धर्मशास्त्रों में से दो-चार शब्द जानकर निष्पाप और निरपराध राजकुमारी को घर के बाहर खींच कर भिक्षुक के पथ पर डाल देना चाहते हैं। केवल इसलिये कि उसके और हमारे शास्त्रों के कुछ अक्षरों में प्रभेद है।

क्षेमंकर—भला तर्क में किसकी मजाल है जो तुमसे जीत सके ?

सोमाचार्य—ब्राह्मणो निकाल दो सुप्रिय को सभा के बाहर, दूर कर दो इसको यहाँ से !

चारुदत्त—हम राजकुमारी का निर्वासन चाहते हैं, जिनका मत हमसे नहीं मिलता वह सभा के बाहर इसी समय चले जायँ।

क्षेमंकर—शान्त होओ, बन्धुवर !

सुप्रिय—भ्रम से मुझे चुन लिया है ब्राह्मणदेव ! मैं तुम्हारी हाँ में हाँ मिलाने वाली छाया नहीं हूँ। मैं शास्त्र प्रति ध्वनि नहीं हूँ, जिस शास्त्र को मानने वाले हैं यह सब ब्राह्मण, उस में कहीं नहीं लिखा–'जिसकी शक्ति उनका धर्म।' यह मत तो दानवी है—'जिसकी लाठी–उसकी भैंस।' (क्षेमंकर से) चल दिया भाई, मुझे बिदा दो !

क्षेमंकर—तुम्हें बिदा नहीं होने दूँगा ! तुम्हारे तर्क में ही दुविधा है, कार्य करने में तुम पर्वत समान दृढ़ हो। मेरे बन्धु क्या तुम जानते नहीं आज घोर दुःसमय आया है ? सुप्रिय आज मौन रहो।

सुप्रिय—मेरा विवेक मुझे धिक्कार रहा है बन्धु ! इस मूढ़ता का दम्भ अब और नहीं सहा जाता मुझ से। योग यज्ञ, क्रिया-कर्म, व्रत-उपवास क्या इसी को धर्म मानकर विश्वास करलूं बिना किसी संशय के ? बालिका को निर्वासन दण्ड

दिलाकर ही धर्म की रक्षा करोगे। मन में सोच देखो, विवेक को जागृत करके कि मिथ्या को तो उसने सत्य नहीं कहा ? वह भी कहती है—'सत्य ही धर्म है,' उसका धर्म दया है समस्त जीव-मात्र से प्रेम। और यही समस्त धर्मों का सार भी है। इससे अधिक और जो कुछ है भला उसका प्रमाण क्या है ?

क्षेमंकर—भाई स्थिर होओ, मूल धर्म तो एक ही है, विभिन्न धर्म बिल्कुल वैसे ही आधार हैं जैसे जल एक है पर जलाशय भिन्न-भिन्न हैं। हम जिस सरोवर से पीढ़ियों से अपनी-अपनी प्यास बुझाते आये हैं यदि वहाँ नया जल एकदम पृथ्वी के उदर से आ जाय तो निश्चय ही वह सरोवर के समस्त किनारों को नष्ट-भ्रष्ट कर देगा तोड़-तोड़ कर, और जब पृथ्वी से जल निकलना बन्द हो जायगा तब क्या बिना किनारों वाले सरोवर में जल ठहर जायगा हमारे पीने के लिए। तुम्हारा हृदय शीतल है तुम्हें ऐसे सरोवर की आवश्यकता नहीं है, पर क्या सरोवर रूपी ज्ञान को एकत्रित करके दूसरों के हितार्थ अपने हृदय में एकत्रित नहीं करोगे। क्या तुम यही चाहते हो कि पुरखों के समय की सुदृढ़ तट-भूमि सनातन प्रेम पुष्ट सौन्दर्य की श्यामलता, बड़े यत्नों से पाला गया, पुराना वृक्ष, पितृ धर्म प्राणों से भी अधिक प्यारी पुरानी पुरातन प्रथा, हमारे पुरातन कर्म, और सदैव-सदैव की चिर-परिचत नीति कुछ भी न रहे ? ऐसे मूढ़ अनेक हैं जो चेतना खोकर भी सत्य जननी की गोद में निद्रा मग्न हैं, जो जननी को पहचानते भी नहीं हैं, उन्हें चेतना देने के लिए जननी के शरीर पर आघात मत करो। सदैव धैर्य रखो, बन्धु जो क्षमायोग्य वस्तु हैं उन्हें क्षमा करो। ज्ञान लोक में अपना कर्तव्य पालन करो।

सुप्रिय—यह अधीन सदैव तुम्हारे ही पथ पर चलता है, तुम्हारे बचन सदैव शिरोधार्य रहेंगे। सच है, कभी भी मुक्ति-सूचिका पर संसार का कर्तव्य भार नहीं टिक सकता।

उग्रसेन का प्रवेश

उग्रसेन—क्षेमंकर कार्य सिद्ध है, सेना ब्राह्मणों के बचन सुनकर चंचल हो उठी है, अब बाँध बस टूटना ही चाहता है।

सोमाचार्य—राज्य सेना !

चारुदत्त—क्या कहा ! यह कैसा काण्ड है ! क्रमशः कहीं यह विपरीत विद्रोह में न बदल जाय ।

सोमाचार्य—क्षेमंकर इतना आगे बढ़ना अच्छा नहीं होता ।

चारुदत्त—ब्राह्मणों की जय धर्म बल में ही है, बाहुबल में नहीं । याग यज्ञ से सिद्ध होगी । आओ बन्धु दूने उत्साह से मन्त्र पाठ करें । शुद्धाचार से योगासन से हम ब्रह्मतेज अर्जन करें; और एकाग्र मन से अपने इष्टदेव को पूजें ।

सोमाचार्य—सिद्धिदात्री ! जगदात्री देवी तुम कहाँ हो ! तुम्हारे चरणों के दास सेवक कभी व्यर्थ काम तो नहीं कर सकते । हे दर्प हारिणी तुम्हीं नास्तिकों के दम्भ को चूर-चूर करती हो । आज तुम विश्वास बन अपने भक्तों को प्रत्यक्ष दिखला दो । संहारिणी के वेश में सबके सामने आ खड़ी हो । आज अट्टहास्य हँसकर, हे मुक्तकेशी, खड्गहस्ते पाषण्डदलिनी ! आओ बन्धुवर प्रलय शक्ति का सब मिल कर एक कंठ से भक्ति भरे स्वर में आह्वान करें ।

ब्राह्मणगण—(एक आवाज में)—हम सब हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हैं कि आ प्रलंयकारी माँ ।

मालिनी का प्रवेश

मालिनी—आ गई मैं !

क्षेमंकर और सुप्रिय को छोड़कर समस्त ब्राह्मण पृथ्वी पर लोट प्रणाम करते हैं ।

सोमाचार्य—देवि यह क्या ? यह कौन-सा भेष है तुम्हारा ! दयामयी आज तुम म्लान वेश में आई हो, नरकन्या का रूप धारण करके ! यह कैसा अपूर्व रूप है तुम्हारा ! यह कैसा प्यार का प्रकाश है तुम्हारे नेत्रों में ! यह तो संहारमूर्ति नहीं है माता ! भला माँ कहाँ से आई हैं आप ? और मां आप क्या सोचकर आई हैं भला, क्या करना चाहती हैं...और !

मालिनी—हे ब्राह्मगण में पिता का घर छोड़कर निर्वासन के लिए चली हूँ, तुम लोगों ने प्रार्थना करके बुलाया इसीलिए में आई हूँ ।

सोमाचार्य—निर्वासन ! भक्तों के आह्वान पर स्वर्ग से देवी का निर्वासन !

चारुदत्त—हाय, हाय क्या करें माँ, तुम्हारी सहायता के विना यह भ्रष्ट

संसार बच नहीं सकेगा !

मालिनी—अब में लौट नहीं सकती ! में जानती थी कि मेरे लिए तुम्हारा द्वार खुला है, मेरे ही लिए तुम सब बैठे हो, इसी से में जाग उठी हूँ सोने से। तुम लोगों ने ही तो प्रार्थना की थी राज दरबार में मेरे निर्वासन के लिए !

क्षेमंकर—राज कन्या !

सब के सब—राजा की पुत्री !

सुप्रिय—धन्य है, धन्य है।

मालिनी—मुझे निर्वासित कर दिया गया है, इसीलिये मेरा स्थान तुम्हारे घर में ही है। तो भी सच सच बताओ मुझे, तुम मुझे क्यों चाहते हो ? क्या मुझ से तुम्हारा कोई काम है। सचमुच ही तुमने क्या मेरा नाम लेकर पुकारा था वाह्य जगत से, उस समय जब में एकान्त में बगीची में छिपी बैठी थी ? तब तो वह स्वप्न नहीं था, और शायद इसीलिए मेरा हृदय रो उठा था बिना कोई बात सोचे समझे ही !

चारुदत्त—आओ, आओ ना मां जननी, प्रसन्नचित्त करुणामयी जननी हमारे बीच विराजी रहो सदा। सदैव इसी तरह।

मालिनी—में आज आ तो गई ही हूँ, पर मुझे ये तो बताओ कि तुम्हारा कौन सा कार्य सिद्ध करना है। मैंने तो राजा के यहाँ जन्म लिया है, राजकन्या हूँ, वाह्य संसार का कुछ भी नहीं देखा मैंने कि यह संसार कितना बड़ा है, कितना विराट है ! में बिल्कुल नहीं जानती कि आपको क्या कष्ट है। मैंने तो सुना है पृथ्वी माँ दुखमय है, में तो तुम्हारे साथ उस दुख का ही परिचय चाहती हूँ।

देवदत्त—माँ तुम्हारी बात सुनकर हमारे नेत्रों से अश्रु बहे जा रहे हैं।

सब के सब—हम सब पाखंडी मनुष्य हैं माँ !

मालिनी—आज मुझे ऐसा प्रतीत होता है, मानों मेरा हृदय अमृत का पात्र है, जो इस विश्व की क्षुधा को मिटा सकता है, और वह शांति का अमृत तुम्हें दे सकता है। जितने दुख जहाँ भी कहीं हैं उन्हें दूर कर सकता है ! उधर देखो, ऊपर ! नीले आकाश से सारे बादल दूर हो गये हैं, चन्द्रमा का प्रकाश फैल

गया है। संसार कितना विशाल है, आकाश कितना शान्त है। रात में चाँदनी फैलाकर जगत को वक्ष से किसने लगा लिया है, राजमार्ग, उदारमंदिर, वास भवन, वृक्षश्रेणी दूर नदी का तट इन सब को। पूजा का घन्टा बज रहा है, मेरा अंग-अंग प्रसन्नता से गदगद हो फूल उठा है, नेत्रों में अश्रुकण भरे आ रहे हैं, प्रसन्नता के मारे। कहाँ से आ गई मैं आज तुम्हारे इस प्रकाशनीय जगत में, विस्तृत सर्व जन जगत में !

चारुदत्त—देवी, तुम विश्वदेवी हो !

सोमाचार्य—धिक्कार है ऐसी जिह्वा को। जब तुम्हारे निर्वासन के लिये उसने कहा तो क्यों नहीं उसके सौ-सौ टुकड़े हो गये।

देबदत्त—आओ विप्रगण हम सब मिलकर जयजयकार करते हुए देवी को राज्य घर में भेज आयें।

सब के सब—(एक आवाज में) जय जननी की ! जय लक्ष्मी माता की ! जय करुणामयी देवी की !

(क्षेमंकर और सुप्रिय के सिवाय सब के सब
मालिनी को घेर कर प्रस्थान करते हैं)

क्षेमंकर—मोह तो दूर हुआ—कहाँ चले सुप्रिय ?

सुप्रिय—मुझे छोड़ दो, छोड़ दो मुझे !

क्षेमंकर—शान्त हो ओ सुप्रिय—क्या तुम भी अँधों की तरह जन समूह में बह जाओगे !

सुप्रिय—क्षेमंकर क्या यह स्वप्न है ?

क्षेमंकर—तो अब तक स्वप्न में लीन थे, आँखें खोलकर चारों ओर देखो वास्तविकता को।

सुप्रिय—झूठ ! सब मिथ्या है ! तुम्हारे स्वर्ग, देवी देवता सब मिथ्या हैं। व्यर्थ ही इस संसार में मैं अब तक भटकता रहा। कभी भी किसी भी शास्त्र से शाँति नहीं मिली, शंकाओं से सदैव हृदय रोता रहा। आज मुझे अपना धर्म मिल गया है, अपने हृदय के बिल्कुल निकट ही। ये समस्त देवता तुम्हारे शास्त्रों के देवता हैं, मेरे नहीं हैं ! उनमें भला प्राण कहाँ है, वह मेरे प्राणों में भला

बोलते क्यों नहीं हैं ? वह शंकाओं को समाधान क्यों नहीं करते ? क्या वे व्यथाओं पर शान्त सुधा बरसाते हैं ? देवी तुम कौन हो, जिसने मेरी जीवन रूपी नाव पर आज अपने चरण रखे हैं। मेरी जीवन नाव में यह कैसी गति आ गई ? इतने दिन बाद आखिर मृत्य लोक में ही मानव के घर ही में मैं अपना जीवन देवता पागया।

क्षेमंकर—हाय ! हाय मित्र ! वह बड़ा भयंकर समय होता है जब हृदय माया मरीचिका में पड़ सब कुछ भूल जाता है, उस समय शास्त्र मानव की इच्छायें बन जाते हैं और धर्म कल्पना बन जाता है। यह प्रकाशमयी रात्रि जिसने जल-थल-समस्त जगत को अपने सौंदर्य से प्रकाशित कर दिया है, क्या यह सनातन है कल प्रातः ही सूर्यदेव क्या अपनी हजारों हजार भुजाओं से इसे नहीं घेर लेगा, तब क्या महाकोलाहल के कारण ही कठोर रण विश्व रण-स्थल में नहीं होगा तब वह प्रकाशित रात्री स्वप्नवत माया सी जान पड़ेगी। जिस सौंदर्य मोह ने तुम्हारा हृदय घेर रखा है वह भी तो इसी चाँदनी सा है, उसे ही तो तुम धर्म कहते हो। एक बार आँखें खोलकर चारों ओर देखो—कितना क्लेश है, कितना दुःख है, कितना कष्ट है, कितनी विकट निराशा है मानव के चहुँ ओर। वह धर्म क्या इस जगत की मद्यपान के समय की पिपासा को शान्त कर देगा ? इस जगत में तुम्हारा यह क्षीण मोह भला किसके क्या काम आयेगा ? तपती धूप में खड़े हो रण रंगभूमि पर, अब भी क्या मग्न हो डूबे ही रहोगे इस स्वप्न में, और समझते रहोगे अपने को स्वर्ग में ! और कुछ नहीं है······सखे !

सुप्रिय—नहीं······नहीं।

क्षेमंकर—देखो दृष्टि उठाकर अपने सामने देखो, बन्धु अब रक्षा न हो सकेगी, अग्नि लग चुकी है। पुरानी अट्टालिका जलकर नष्ट हो जायगी, वह सारा भरत खण्ड जिसके घर-घर में मानव जन्मे हैं नहीं बच सकेगा ! अब भी क्या तुम्हारे नेत्र स्वप्न देख रहे हैं। खाण्डव दहन जब हुआ था, समस्त पक्षी अपने वक्ष से चिपटे बच्चों के स्मरण मात्र से तव आकाश में उड़ते फिरते थे और अपने करुण क्रन्दन से स्वर्ग को हिला दिया था। हे सुप्रिय उसी प्रकार उद्वेग से अधीर

पितृकुल अनेक स्वर्गों से आ आकर आशंका से व्याकुल हुआ फिर रहा है शून्य में दुखी कंठ स्वर से आर्त करता हुआ भारत के आकाश पर, स्मरण करो—आर्यधर्म का महादुर्ग है पुण्यधारा काशी की तीर्थ नगरी। इसके द्वार पर भला कौन-सा प्रहरी है ? क्या आज स्वप्न में वह अपने कर्तव्य को भूली रहेगी ! हे सुप्रिय आँख उठाकर अपने चारों ओर देखो। बात करो। कहो क्या मुझे अकेला छोड़ कर तुम माया के पीछे चले जाओगे, विश्वव्यापी इस दुर्योग में, प्रलय की रात्रि में।

सुप्रिय—सखे मैं कभी नहीं जाऊँगा, कभी नहीं ! सदैव तुम्हारे ही साथ रहूँगा, अपने सब आराम त्याग कर, समस्त जीवन के सुख त्याग कर।

क्षेमंकर—तो सखे मैं चल दिया।

सुप्रिय—भला कहाँ ?

क्षेमंकर—देशान्तर को, जब घर में आग लग चुकी हो, ओई आशा शेष न हो, बाहर से रक्तस्रोत लाऊँगा, वही इस अग्नि को बुझा सकेगा ! जाऊँ सेना लेने को ?

सुप्रिय—यहाँ की सेना भी तो तैयार है।

क्षेमंकर—यह आशा झूठी है। अब तक वह दलबल सहित मुग्ध कीट पतंगों की तरह जन शिखा में जल मरी होगी। सुनो, होने वाली जय ध्वनि सुनो। सुनली न ? मदान्ध नगरी आज धर्म की चिता पर उत्सव दीप जला रही है।

सुप्रिय - यदि तुम्हें जाना ही है भाई तो इस कठिन प्रवास में मैं भी तुम्हारे साथ ही चलूंगा।

क्षेमंकर—तुम भला कहाँ जाओगे बन्धु ! तुम यहीं रहो जागरूक सदैव, और राजभवन का समाचार रखना। मुझे पत्र लिखना। देखना मित्र भूल मत जाना, कहीं नई मरीचिका में आ मुझे छोड़ दो, अपने इस प्रवासी मित्र को सदैव याद रखना।

सुप्रिय—भाई माया नयी है, पर मैं तो नया नहीं हूँ। तुम पुराने हो, मैं भी पुराना हूँ।

क्षेमंकर—तो आलिंगन दो बन्धु !

सुप्रिय—पहला विच्छेद है आज। सदैव एक साथ रहे, एक साथ विरह हीन

हृदय लेकर चले थे; आज तुम कहाँ जाओगे, और कहाँ रहूँगा मैं कौन जाने ?

क्षेमंकर—तुम्हारा बन्धु फिर वापिस आकर मिलेगा। बस केवल एक मात्र डर है। क्रान्ति के दिन हैं ये, बड़ा दुःसमय है, इसमें मजबूत बन्धन भी कभी-कभी टूट जाते हैं। भाई-भाई पर चोट करता है, मित्र विरोधी हो जाते हैं। मैं तो आज अन्धकार में निकल पड़ा हूँ, और अन्धकार में ही घर लौट आऊँगा। फिर देखूंगा कि क्या वास्तव में बन्धु द्वार पर दीप जलाये बैठा है। मैं तो यही आशा लेकर जा रहा हूँ बन्धु ! अच्छा बिदा।

तीसरा दृश्य

अन्तःपुरी में महिषी

महिषी—अरे वह तो यहां भी नहीं है। हे माँ अब क्या होगा ? आँखों ही आँखों में उसे कहाँ तक रखा जाय। सदैव डर लगा रहता है, रात्रि को निन्द्रा तक नहीं आती, सोते समय जाग उठती हूँ उसको पुकार-पुकार कर। आँखों से ओझल होते ही शंकाऐं होने लगती हैं। कहाँ गयी मेरी स्वप्न स्वरूपिनी ! देखूं ढूंढू कहाँ छिपी है जाकर वह।

(प्रस्थान)

युवराज के साथ राजा का प्रवेश

राजा—मालूम होता है आखिर उसे निर्वासन दण्ड देना ही पड़ेगा।

युवराज—और कोई उपाय दीखता भी तो नहीं है। महाराज शीघ्रता कीजिये, अन्यथा राज्य खोना पड़ेगा। सेना और नगर के प्रहरी सबके-सब विद्रोही हो गये हैं। स्नेह ममता त्याग कर कर्तव्य का पालन करो राजन् ! शीघ्र ही मालिनी को निर्वासन आज्ञा सुनाओ।

राजा—धीरे से, वत्स धीरे से ! अपना कर्तव्य पालूंगा, प्रार्थना पूरी करूँगा, मैं उसे निर्वासन दण्ड दूंगा। यह मत समझना कि मोह में फसा वृद्ध हूँ मैं, मेरा हृदय कमजोर है, जो राज्य धर्म की उपेक्षा करके अश्रु कण गिराऊंगा।

महिषी का पुनः प्रवेश

महिषी—महाराज, महाराज ! बताओ सच-सच बताओ, मुझे रुलाने के

लिये आपने उसे कहाँ छुपा रखा है ? कहाँ है मालिनी ?

राजा—कौन रानी ?

महिषी—मेरी मालिनी !

राजा—वह कहाँ है ? अपने घर में नहीं है, क्या चली गई वह ?

महिषी—यहाँ नहीं है नाथ ! तुम सेना लेकर जाओ, उसे घर-घर खोजो, द्वार-द्वार, जल्दी करो नाथ ! हे भगवन् ! उसे सारी प्रजा मिलकर चुराके ले गई है। कितनी निष्ठुर चतुराई है यह उनकी। उन सबको मार दो, सूनी कर दो समस्त नगरी को। नहीं तो वे मेरी मालिनी को वापिस ला दें।

राजा—ओह चली गई वह ! रानी में प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं अपनी गोद में अपनी गोद की कन्या को वापिस लौटा लाऊँगा। धिक्कार है ऐसे राजा को ! धिक्कार है इस धर्महीन राजनीति को !! बुलाओ जल्दी बुलाओ सेना को !

मालिनी के सहित सेना और प्रजा का समारोह और मशालों के साथ प्रवेश

ब्राह्मणगण—जय, जय, शुभ्र पुण्यराशि की जय, जय मूर्तिमती दया की जय !

महिषी—(दौड़कर मालिनी के पास पहुँचकर) एक क्षण को भी मैं तुझे अपने वक्ष से अलग नहीं करती—तो भी तू आँखें बचाकर कहाँ चली गई थी बता तो ?

प्रजागण—महारानी तिरस्कार मत करो ! एक बार हमारी मां हमारे घर गई थी !

चारुदत्त—माता रानी, हमारी ये क्या कुछ भी नहीं हैं, ये दयामय देवी क्या तुम्हारी ही हैं।

देवदत्त—पुण्यवती राजलक्ष्मी को हम लौटा तो लाये।

सोमाचार्य—माँ लक्ष्मी हमें भूल मत जाना ! सुनो हम आशा रखते हैं, आपके श्रीमुख से अमृत वाणी सुनने की और आशीर्वाद पाने की अपने शुभ कार्य में। तभी तो हमारे हृदय की नाव पार लगेगी और हमको मार्ग दिखाई देगा और तभी हम मुक्ति के पार ध्रुवतारा सदृश्य पहुँचेंगे।

मालिनी—यदि तुम मेरे पास आये हो तो दूर कभी मत जाना। प्रतिदिन दर्शन दे जाया करना राजपुर में आकर। सबको बुला लाया करना, मैं देखना चाहती हूँ। मैं यहीं रहकर नगरवासियों के घर में रहूँगी, यह तुम जानलो !

सब के सब—आज काशी नगरी धन्य हुई, हम सब धन्य हुये !

(प्रस्थान)

मालिनी—आज मैं सबकी बन गई पिता जी ! कहो कैसा आनन्द रहा आज। आज हजारों हृदयों में से स्वतः ही जयकार की ध्वनि उठी। आनन्द का दिन है न आज।

राजा—कितना सौन्दर्यमय दृश्य है आज का ! समुद्र मंथन से जब लक्ष्मी निकली थीं, उन्हें घेरकर महा कलरव और उन्माद नृत्य से जैसे समुद्र की उन्मत्त तरंगें हिलोर उठी थीं, वैसे ही अपनी लक्ष्मी को देखकर आज जन-जन उच्छ्‌वासित हो उठा है।

मालिनी—मेरी श्रेष्ठ माता अब मुझे महल की दीवारों में तुम छिपाकर न रख सकोगी। तुम्हारे अन्तःपुर में ही मैं समस्त लोक को ले आयी हूं। मानों मैं आज देह बाधा विहीन विहीन इस विश्व के प्राण हूँ।

महिषी—ऐसा ही हो ! सब में रहे तू जगत के प्राण बनकर। सबको अपनाकर तू अपनी माँ के ही पास रह। यहीं ले आ तू अपने विशाल जगत को, बाहर जाने की आवश्यकता नहीं, माता पुत्री दोनों ही मिलकर इस विशाल जगत की सेवा करेंगी। रात्रि हो गई है पुत्री ! आओ, मेरे पास बैठकर अपने मन को शान्त करो। तुम्हारे नेत्रों में उद्दीप्त प्राणों की ज्योति बता रही है, जिसने निद्रा के विश्राम को भस्म कर दिया है। आओ बेटी थोड़ी देर आराम कर लो।

मालिनी—(माँ से चिपटकर) मैं श्रान्त हूँ माँ ! मेरी सारी देह काँप रही है। माँ मैं तुझे छोड़कर कहाँ चली गई थी भला, तुम्हारे स्नेह से अलग हो इस विशाल जगत में। माँ मेरी आँखों में नींद भर दो, लोरियाँ गा-गाकर, जैसे बचपन में तुम लोरियां गा-गाकर सुनाया करती थीं। आज मेरे नेत्रों से आँसू उमड़ रहे हैं, मेरे हृदय में वेदना छा गई है।

महिषी—कहाँ हो देवताओं के देवता रुद्रगण, पृथ्वी के समस्त देवो, रक्षा करो मेरी पुत्री की ! मृत्यलोक, स्वर्गलोक सब अनुकूल हों, शुभ हो, मेरी कन्या का मंगल हो ! हे पवनदेव मैं तुम्हारी बन्दना करती हूँ। हे भगवान दूर करो मेरी मालिती का समस्त अकल्याण। अहा—देखते-देखते ही इसके नेत्र नींद से झपकने लगे। सब विघ्न बाधायें दूर हों, बेटी तू माँ की गोद में विश्राम कर सुख से। महाराज ये कन्या तो तुम्हारी है, फिर इसका ये खेल कैसा है ? जिसके हाथ का समस्त संसार खिलौनामात्र है, उसे क्या अपने घर के एक कौने में छिपाकर रख दोगे ? मैं तो कन्या का खेल देखकर अवाक् रह गई ! इसके जैसे खिलौने हैं वैसा ही खेल भी है। महाराज अभी से सावधान हो जाओ। नया धर्म तुम किसको कहते हो ? भला इस नये धर्म को यहाँ कौन लाया है ? भला कहाँ है जन्मभूमि आकाश के फूल की। न जाने किस मत्तता की बाढ़ में बह कर आया है वह जो मेरी कन्या को माँ की गोद से छीने ले जा रहा है ! इसीका नाम क्या धर्म है ? नाथ, तुम भी जा मिलो ना पुत्री के खेल में ? कह दो ग्रह-देवताओं से वे शान्ति के लिये स्तुति करें, पाठ करें, अर्चना करे। स्वयंवर सभा मालिनी के लिये रचो ताकि मनचाहा बर तलाश करके वह अपने हाथों से वरमाला किसी योग्य कंठ में पहिना सके ! हे राजन् तभी नया धर्म दूर होगा, तभी मेरा त्रास दूर होगा !

चौथा दृश्य

राज-उपवन

परिचारिकाओं के साथ मालिनी और सुप्रिय

मालिनी—तुम भी मेरे द्वारे आये हो क्या ब्राह्मणदेव ? मैं अब क्या कहूँ ? क्या दूँ तुम्हें ? तुम्हें कौन-सा शास्त्र लाकर दिखाऊँ ? जो तुम नहीं जानते उसे क्या मैं जानती हूँ ?

सुप्रिय—मैं तो शास्त्र के साथ तर्क करता हूँ, तुम्हारे साथ नहीं। सभा में मैं पंडित हूँ, पर तुम्हारे पास तो चरणों का सेवक हूँ। देवी मेरा भार वहन

कर लो ! तुम जिस पथ से भी जाओगी मेरा जीवन तुम्हारे साथ जायेगा, अपने समस्त तर्कों को त्यागकर नीरव परछाईं की तरह।

मालिनी—हे ब्राह्मणदेव ! जब तुम कोई प्रश्न करते हो तब मेरी सारी भक्ति नष्ट हो जाती है, मैं सब कुछ भूल जाती हूँ। मन में बड़ा आश्चर्य होता है कि हे सुप्रिय क्या तुम भी मेरे पास कुछ जानने के लिये आये हो ?

सुप्रिय—न मैं ज्ञान चाहता हूँ और न कुछ जानना चाहता हूँ। मैंने समस्त शास्त्रों का अध्ययन किया है, और समस्त धर्मों के साथ तर्क किया है। बस मैं यह चाहता हूँ कि जो कुछ मैं जानता हूँ उसे भुला दो, भुला दो उसे। हजारों लाखों मार्ग हैं, पर प्रकाश कहाँ है उन पर बढ़ने का ! हे प्रकाशमयी देवी इसीलिये मैं तुम्हारे हृदय से एक प्रकाश की किरण चाहता हूँ।

मालिनी—ओह ब्राह्मणदेव ! जितना तुम माँगते हो मैं अपने को उतना ही गरीब देखती हूँ। जिस देवता ने मेरे हृदय में वज्रालोक मारकर किसी दिन बिजली सदृश्य वाणी कही थी, आज वह कहाँ गया ? हे ब्राह्मण उस दिन तुम क्यों नहीं आये थे मेरे पास ? भला अब तक क्यों दूर-दूर रहे सन्देह के कारण ! आज बाहर निकलने के नाम से मेरा हृदय काँपता है, क्या करूँ, क्या कहूँ ? कुछ मस्तिष्क में है ही नहीं। महान् धर्म की नौका खेने वाली बालिका स्वयं नहीं जानती उसे कहां जाना है। लगता है इस विशाल संसार में, जहां सहस्त्रों शंकायें हैं, जहां का मार्ग अत्यधिक जटिल है मैं अकेली हूँ। दिव्य ज्ञान तो केवल कभी-कभी आता है और वह भी क्षण भर के लिये, क्या तुम ब्राह्मणदेव मेरे सहायक बनोगे ?

सुप्रिय—अपना अहोभाग्य समझूंगा देवी यदि तुम ऐसा चाहो !

मालिनी—जब अचानक हजारों जनों के बीच अपने पर दृष्टि पड़ती है तो कभी-कभी बीच-बीच में निरुत्साह मेरे समस्त अन्तर के प्रवाह को रोक देता है और तब न जाने किस छिपी वेदना के कारण मेरे नेत्रों से अश्रु बहने लगते हैं। क्या तुम ऐसे समय मेरे सहायक बनोगे बन्धु ! मेरे आचार्य बनकर दोगे मुझको नये प्राण। बोलो ब्राह्मण देवता !

सुप्रिय—मेरा यह क्षुद्र जीवन सदैव प्रस्तुत रहेगा। मैं अपने सम्पूर्ण चित्त

को, सबल और शुद्ध करके, बुद्धि को शान्त करके चिरकाल तक के लिये तुम्हारे कार्यों के लिये तुम्हें समर्पित करता हूँ।

प्रतिहारी का प्रवेश

प्रतिहारी—देवी का दर्शन चाहते हैं प्रजाजन !

मालिनी—मेरी सबसे विनती है मेरे पास आज कुछ नहीं है, इसलिये आज नहीं। खाली मस्तिष्क कुछ सोचना चाहता है, अतएव मैं अपनी जड़ता दूर करने के लिये विश्राम चाहती हूँ।

(प्रतिहारी का प्रस्थान)

हाँ, भला क्या बात कह रहे थे, कहो अपनी उसी कहानी को। बिल्कुल नई बात है, आश्चर्यमय दृश्य, सुनकर विस्मय होता है। जो भी तुम्हारी दुख-सुख या घर की बात होती है, मैं सब कुछ जान लेती हूँ। क्षेमंकर तुम्हारा बन्धु है ना !

सुप्रिय—उसे सब कुछ कह सकती हो, बन्धु, बान्धव, देवता जो चाहो सो ! मेरा वह सूर्य है, मैं उसका राहु हूँ,—उसका महामोह हूँ मैं। यदि उसके बाहु बलिष्ठ हैं तो मैं उसका लोहपाश हूँ। बचपन से ही वह दृढ़ चित्त रहा है और मैं संशयों से भागता रहा हूँ। फिर भी उसने मुझे अपना मित्र समझ कर सदैव हृदय में स्थान दिया है ! बिना किसी डर या दुविधा के उसने मुझे अपने मजबूत प्रेम के बन्धनों से बाँध रखा है जिस तरह चन्द्रमा सदैव मुस्कराता-सा आकाश मार्ग में घूमते हुये भी कालिमामय कलंक को हृदय से चिपटाये रहता है। देवी विधि का नियम कभी व्यर्थ नहीं होता। लोहे की नाव चाहे कितनी भी सुदृढ़ क्यों न हो यदि उसके तले में एक भी सूराख हो तो अवश्य किसी न किसी दिन वह साधारण सा सूराख ही उसे संकट के समुद्र में डुबो देगा ! मुझे दुःख है कि मैं ही अपने भाई को संकट के समुद्र में डुबोऊँगा, क्या विधि का यही लेख था ?

मालिनी— तुमने उसे डुबो दिया ?

सुप्रिय—हाँ देवी, मैंने उसे डुबो दिया। जीवन की सारी बातें मैंने तुम्हें बता दी हैं, केवल यही एक बात बतानी शेष रह गई है (कुछ सोचने के पश्चात)

उस दिन दया-धर्म-हीन विद्वेषी गरज उठा था तुम्हें चारों ओर से घेर कर, तब तुम अपनी पूर्ण महिमा में अकेली खड़ी थीं ! याद है तुमने कैसा राग गाया था उस समय। मानो बीन की ध्वनि के आगे विद्रोही-सर्पों ने तुम्हारे चरणों में अपना फन झुका दिया हो ! केवल क्षेमंकर ही एक था जो उस समय भी हृदय पर पत्थर रखे अटल निश्चय हृदय से खड़ा था। एक दिन मेरा हाथ पकड़ कर बोला—'मित्र मैं दूर देशान्तर को जा रहा हूँ। विदेशी सेना लाकर पुण्य काशी से इस नये धर्म को उखाड़ फेंकूंगा।' और वह बिल्कुल खाली हाथ ही अज्ञात दिशा की ओर चला गया। अपने साथ केवल हृदय और कठोर प्रतिज्ञा ले गया ! जानती हो इसके बाद मेरा क्या हुआ ? मानो मुझे नूतन जन्म भूमि मिल गई उस समय जब तुमने इस नीरस हृदय में अमृत सदृश्य बरसा की। 'सब जनों पर दया करो।' सभी जानते हैं, बात भी यह बहुत पुरानी है, फिर भी लाखों बरस से संसार सागर के उस पार विश्व में यह बात पैठी थी, जिसे तुम अपनी सोने की नाव में बिठा कर ले आईं समस्त मानवों के घर के द्वार-द्वार पर। उस देव शिशु को हृदय के अमृत का दान किया है तुमने, उसने तुम्हें माँ कहके मानवपुरी में नया जन्म पाया है। स्वर्ग कितनी दूर है, उसके देवता कहाँ हैं, इस बात को कौन जानता है ? हम तो केवल मात्र इतना जानते हैं कि अपने अभिमान की बलि देकर हमें प्रेम करना होगा और मैत्री करनी होगी समस्त जीव मात्र से। जो कुछ वासना है वह केवल अपने लिये है इसीलिये दुःखमय है। योग, यज्ञ, तपस्या किसी में भी मुक्ति नहीं है, यदि मुक्ति कहीं है तो केवल विश्व के कार्यों में है, विश्व के प्रेम में है। घर आकर उस भयानक सन्नाटे की रात्रि में वह रो उठा, उच्चस्वर में वह बोला—'भाई ! भाई तुम कहाँ चले गये इस लम्बी चौड़ी विस्तृत पृथ्वी में कहाँ-कहाँ कब तक भटकोगे ?' फिर उसके पत्र की आशा करता रहा, किन्तु कोई पत्र नहीं आया, और न कोई समाचार ही मिला। मैं केवल राज प्रासाद में आता जाता रहता हूँ, चारों ओर निगाह रखता हूँ, विदेशियों से तरह-तरह की बातें पूछता हूँ और सदैव संकित रहता हूँ, बिल्कुल उसी तरह से जिस तरह समुद्र में नाविक चकित नेत्रों से चारों ओर आकाश का कोना-कोना देखा करता है कि

कब किधर से तूफान के बादल आ जायँ। आखिर एक दिन एक छोटे से पत्र के रूप मे एक तूफान आया। उसमें लिखा था—रत्नवती नगरी के राजा की सेना लेकर आ रहा है खून की नदी में नूतन धर्म को बहाने के लिये, अपने पुराने पैतृक धर्म को जो जर्जर हो गया है बचाने के लिये राजकुमारी को प्राणदण्ड देगा। अमोघ आघात से उसने प्राचीन स्नेहपाश को एक क्षण में तोड़ दिया है। मैंने वह पत्र राजा को दिखा दिया। शिकार के बहाने राजा गुप्त रूप से फौज सहित उस दुष्ट पर चढ़ाई करने गये हैं। और यहाँ पर मैं धूल में लेट रहा हूँ, अपने हृदय में अपने ही पैने दाँत चुभा रहा हूँ।

मालिनी—हाय तुमने उसे यहाँ क्यों नहीं आने दिया, मेरे घर के द्वार पर सैना के सहित। ताकि इस घर में वह पूज्य अतिथि की तरह प्रवेश करता, क्योंकि बहुत दिन का प्रवासी अपने देश में लौट रहा था।

(राजा का प्रवेश)

राजा—हे सुप्रिय आओ, आलिंगन दो मुझे! मैं अनुकूल मुहूर्त में समाचार पाकर गया था। अचानक ही क्षेमंकर को बन्दी बना लाया। यदि थोड़ी भी देर और हो जाती तो सोये हुये राज प्रासाद पर अचानक भयंकर बज्रपात होता, जागने का अवसर भी किसी को न मिलता। आओ बन्धु मेरे, आओ!

सुप्रिय—महाराज क्षमा करो मुझे?

राजा—प्यारे बन्धु मन में कभी न सोचना कि केवल राज आलंगिन तुम्हारा पुरस्कार है, बोलो तुम क्या चाहते हो, माँगो आज? क्या नवीन सम्मान दूं तुम्हें? बताओ मुझे! केवल लोक रीति ही इसे मत समझो।

सुप्रिय—मुझे कुछ नहीं चाहिये महाराज! मैं तो केवल द्वार-द्वार घूमकर भिक्षा से पेट भर लूंगा।

राजा—सच बताओ, क्या तुम्हें राज्य का हिस्सा चाहिये?

सुप्रिय—महाराज राज्य पर धिक्कार है, मुझे कुछ नहीं चाहिये, क्षमा करें।

राजा—ओह मैं अब समझा तुम्हारे मन की बात! तुम कोई प्रण-विजय करना चाहते हो! बताओ कौन चद्रमा है ऐसा जिसे तुम विजय करना चाहते हो! मैं तुम्हें अभय देता हूँ, तुम्हारी बात पूर्ण होगी, बोलो तो सही!

ऐसी कौनसी असम्भव आशा है तुम्हारे मन में स्पष्ट करके बताओ ! याद है तुम्हें, अभी उसी दिन, अधिक दिन नहीं हुये, तुम्हीं ब्राह्मणों के अगुआ होकर मालिनी को निर्वासित दण्ड दिलाना चाहते थे। क्या आज तुम वही प्रार्थना करोगे कि मालिनी का निर्वासन उसके पिता के घर से हो। साधना में असाध्य कुछ भी नहीं, तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी, विश्वास रखो मन में। (पुत्री से) लो सुनो मेरे जीवन की ज्योति, पुत्री, जिसने तुम्हारे प्राणों की रक्षा की वही ब्राह्मण सुप्रिय, सबका प्यारा, प्रिय दर्शन, उसे—

सुप्रिय—राजन् शान्त होओ, शान्त होओ राजन् ! (मालिनी से) आर्य देवी, जन्मजन्मान्तर के भक्ति-उपहार में पाया है अपने इष्टदेवता को कितने पुजारियों ने—उसी प्रकार यदि अपनी देवी को पाता जन्मजन्मान्तर के लिए धन्य हो जाता। राजा के हाथों से पुरस्कार ? भला क्या किया है मैंने, जिसके बदले में सम्पूर्ण सार्थकता को प्राप्त कर अपने मस्तिष्क पर रख घर ले जाऊँ ! कभी नहीं, कभी नहीं, तपस्या करके सिद्ध प्राप्त करूँगा चाहे कितने ही जन्म बीत जायँ, तब तुम्हें पाऊँ तब भी कोई चिन्ता नहीं। बन्धु के विश्वास को भंग करके मैं स्वर्ग भी लेना नहीं चाहता। तुम पूर्ण हो देवि, तुम्हारा अन्तःकरण पूर्ण शुद्ध है। मैं दीन हीन हूँ, द्वार-द्वार भटकता फिरता हूँ, सबकी आँखों से अपने को बचाता हुआ अपने ही परिश्रम के भार से दबा-सा। मैं कुछ भी नहीं चाहता, और न कभी चाहूँगा—तुम समस्त संसार को जो शुभकामनायें दे रही हो, स्मरण करके इस अभागे को भी मन-ही-मन उसी में से कुछ दे देना।

मालिनी—(स्वगत) ओ महिला के मन, तू कहाँ हृदय में बैठकर क्रदन करता है, सूने घोंसले में विरहनी कबूतरी की तरह ? (राजा से) पिता जी भला आपने बन्दी के लिए क्या विचार किया है ?

राजा—उसे प्राण दण्ड दिया गया है।

मालिनी—महाराज मेरी एक मात्र प्रार्थना स्वीकार करके उसे क्षमा कर दो।

राजा—पुत्री वह राजद्रोही है, भला उसे मैं क्षमा कर दूँ ?

सुप्रिय—भला इस असार संसार में कौन किसका विचार करता है ? महाराज क्या उसने राज्य चाहा था ? वह जानता था आप धर्मद्रोही हैं, इसलिए

चढ़कर आया था वह राज्य पर ! ताकि आपके विचार अपने से बना सके। इस संसार में जो बलवान है वही विचारक होता है। यदि कहीं वह जीत जाता महाराज तो वही विचारक होता और आप बन्दी होते महाराज !

मालिनी—महाराज उसे क्षमा करके प्राणदान दे दो ! पश्चात् अपने हितैषी बन्धु के उपकार को स्मरण करके जो भी उपहार इन्हें आप देंगे ये आदर से स्वीकार कर लेंगे।

राजा—क्या कहते हो सुप्रिय तुम ? बन्धु के लिए बन्धुदान करूँ मैं ?

सुप्रिय—महाराज आपकी यह अनुपम दया सदैव स्मरण रहेगी।

राजा—पर मैं एक बार उसके वीरत्व की परीक्षा करके अवश्य देखूँगा। मैं जानना चाहूँगा कि मृत्यु के भय से वह कर्तव्य से डिगता है या नहीं। कर्तव्य की लौ नक्षत्र सी जला करती है, आँधी से दीप बुझ जाते हैं, परन्तु तारे कभी नहीं बुझा करते ! सुप्रिय, तुम अपने बन्धु को पा जाओगे मैं बीच में केवल नाम मात्र हूँ। पर इस दान से ही मेरा मन सन्तुष्ट नहीं है। तुमने मेरा हृदय जीत लिया है, इसलिये तुम मेरे हृदय का सर्वश्रेष्ठ रत्न ग्रहण करो। (कन्या से) पुत्री अब तक ये लज्जा कहाँ थी ? अपना लज्जामय शोक दूर कर कुम्हलाये मुख को प्रकाशित करो। भला कँपित अश्रुकणों में ये लज्जा कहाँ से आई, मानो यज्ञ की वेदी की शिखा में से निकल आई हो स्निग्ध ज्योति सी सुकुमार द्रुपद दुहिता के रूप में। (सुप्रिय से) उठो पग छोड़ो बन्धु ! आओ हृदय से लगो। अनन्त सुख मुझे उसी तरह से तंग कर रहा है, जिस तरह दुःसाध्य दुख तंग किया करता है। मुझे अवसर दो, ताकि आज एकान्त में जाकर अपनी प्राण-प्रतिमा का चन्द्रमा सदृश्य मुख आनन्दपूर्ण क्षण में देखूँ।

(सुप्रिय का प्रस्थान)

(स्वगत) बहुत दिन बाद मेरी मालिनी का माथा आज लज्जा की लाली से लाल हुआ है। जब उषा के कपोल लाल हो उठे तब तुरत समझ लेना चाहिये कि अब सूर्योदय में देर नहीं है। इस रंगीनी की परछाई देखकर आनन्द से मेरा हृदय भर गया है। आज समझा मेरी पुत्री तरुणी हो गयी है। यह देवी या दया नहीं घर की कन्या ही तो है।

प्रतिहारी का प्रवेश

प्रतिहारी—महाराज की जय ! जय हो महाराज की ! द्वार पर बन्दी क्षमंकर आया है ।

राजा—उसे यहाँ ले आओ !

लोहे की बेड़ियों में बँधा क्षेमंकर का प्रवेश

राजा—स्थिर दृष्टि है, ऊँचे खुले माथे पर काले आँधी के बादल मँडरा रहे हैं, हिमालय की चोटी पर सावन के महीने की तरह।

मालिनी—पिता जी, लोहे का बन्धन स्वयं अपनी लाज से इस शरीर में गढ़ा-सा जा रहा है। अपमान से महत्त का अपमान मर रहा है। मेरे प्राण अपने को धन्य मानते हैं ऐसी इन्द्रदेवता के सदृश्य मूर्ति को देखकर।

राजा—(बन्दी से) तुमने सुन लिया कि क्या निश्चय हुआ है ?

क्षेमंकर—मृत्युदण्ड !

राजा—यदि मृत्युदण्ड क्षमा करके जीवन दान देदूँ तो•••?

क्षेमंकर—तो फिर से अपने अधूरे कर्तव्य को पूर्ण करने में लग जाऊँगा ? जिस मार्ग से चला था, उसी मार्ग पर फिर पहुँच जाऊँगा।

राजा—हे ब्राह्मण, तुम जीवन चाहते हो या नहीं, यदि यही बात है तो जीवन की ममता छोड़ दो। माँगो क्या माँगते हो, तुम्हें यह अन्तिम प्रार्थना का अवसर दिया जा रहा है।

क्षेमंकर—मैं और कुछ नहीं चाहता, केवल अपने बन्धु सुप्रिय को देखना चाहता हूँ।

राजा—(प्रहरी से) जाओ, सुप्रिय को बुला लाओ !

मालिनी—महाराज, मेरा हृदय काँप रहा है। न जाने कौन-सी परम तेज-मान पत्थर सी शक्ति है इसके मुँह पर ! रक्षा करो पिता, उन्हें न बुलाओ यहाँ !

राजा—बेटी, शंकित क्यों होती हो व्यर्थमें, यहाँ कोई भय नहीं है सुप्रिय को।

क्षेमंकर के पास सुप्रिय का आना

क्षेमंकर—(सुप्रिय को आलिंगन कर लेने के बाद) रहने दो, रहने दो, मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ, मुझे पहले कह लेने दो उसके बाद क्षेम कुशल होगी।

यहाँ आओ। मित्र जानते हो मुझे मैं वचनों का भिखारी हूँ, मुझे अधिक बातें करनी नहीं आतीं। समय भी अधिक नहीं है, मेरा विचार हो चुका है। बताओ तो भला, तुमने यह कार्य क्यों किया है ?

सुप्रिय—एक वन्धु है श्रेष्ठ से श्रेष्ठ, मेरी आत्मा का विश्वास यही है, और मैंने अपने को उसी के विश्वास पर छोड़ दिया है। प्राणों से प्यारे मित्र वही मेरा धर्म है।

क्षेमंकर—मैं सब कुछ जानता हूँ, जानता हूँ भाई कि तुम्हारा धर्म क्या है ? वह रहा सामने शान्त मुखड़ा अन्तर्ज्योति से चमकता हुआ, राज्य के रूप में वही है तुम्हारे लिये मूर्तिमय देववाणी, है ना ! चारों वेदों से श्रेष्ठ अपने सनातन धर्म की इसकी सौम्य दृष्टि की अग्नि में तुमने आहुति दे दी है।

सुप्रिय—ठीक समझे हो मित्रवर मुझे ! मेरा धर्म तो इस दीन भूलोक में नारी रूप रखकर अब जन्मा है। अब तक शास्त्र मेरे लिये अन्य जीवन सदृश्य थे। इन्हीं नेत्रों में जो उज्जवलदीप शिखा जल रही थी उसके प्रकाश में मैंने विश्वशास्त्र में जो लिखा था पढ़ा। धर्म वही है, जहाँ दया है, धर्म वही है जहाँ प्रेम है, स्नेह है, धर्म वही है जहाँ मानव है, जहां मानव का अपना घर है। मैं समझ गया धर्म माता के रूप में स्नेह देता है और धर्म पुत्र के रूप में स्नेह लेता है। दाता के रूप में धर्म दान देता है और याचक के रूप में वह दान को ग्रहण करता है। शिष्य के रूप में वह भक्ति करता है और गुरु के रूप में आशीर्वाद देता है, हृदयेश्वरी होकर पत्थर से हृदय में प्रेम डालती है और हृदयेश होकर ग्रहण करता है वह। और फिर विरक्त होकर वह सब कुछ त्याग देता है। धर्म ने विश्वलोकालय में मोह डाल दिया है और फिर समस्त विश्व को क्रीड़ांगन में लपेट दिया है। उसी महाबन्धन ने मेरे प्राण बाँध दिये हैं। यही मेरा धर्म है !

क्षेमंकर—मैंने क्या उसे देखा नहीं ? मैंने क्या क्षण भर के लिये नशे में यही नही सोचा था कि सनातन धर्म नारी का रूप लेकर पाषाण पुरुष मनको छीनकर स्वर्ग की ओर ले जाना चाहता है ? क्षणभर के लिये मेरे मुग्ध-मन में भी क्या वही स्वप्न नहीं आया था ? अपूर्व संगीत से वक्ष की पसलियाँ

मेरी भी रो उठी थीं, मेरे जीवन की आशा की बेल ने चहुँओर से लिपट कर मेरे हृदय को पत्तों और फूलों से मोह लिया था, एक क्षण में मैंने अपनी पूर्ण सफलता समझी थी मित्र ! तो भी क्या बल पूर्वक मैंने माया के बन्धन को नहीं तोड़ फेंका, चला नहीं गया था क्या मैं देश-देश के द्वार-द्वार भीख माँगने को ? मैंने अपने माथे पर क्या नीच हाथ का अपमान नहीं लिया ? क्या मैंने अपने एकमात्र बन्धु का विछोह स्वीकार नहीं किया था अप्रसन्नता से ? पर जब सिद्ध स्वयं ही आरही थी पहनाने के लिए विजय वर माला, तब तुमने यहाँ बैठकर क्या किया——राजप्रासाद के सुखके पालने में पड़े-पड़े कौन-सा धर्म सीखा, इस इतने लम्बे समय में। बोलो ना ?

सुप्रिय—धैर्य रखो बन्धु ! यह विश्व क्या विशाल नहीं है ? क्या इसमें असंख्यों जीवन अनेक प्रकार के स्वभाव के नहीं हैं ? किसको क्या प्रयोजन है यह सब बातें तो तुम जानते नहीं हो। आकाश में असंख्य तारे हैं, भला रात-दिन वे क्या विवाद किया करते हैं बन्धु क्षेमंकर ? ठीक इसी प्रकार अपने अपने दीपक जलाकर यहाँ असंख्य धर्म जाग रहे हैं, जागने दो न उन्हें, इसमें हानि ही क्या है ?

क्षेमंकर—मित्र, तुम्हारी बातों का यह जाल सब व्यर्थ है मेरे लिये। मेरा समय समाप्त हो रहा है, बातों का यह जाल झूठा है,सारे तर्क झूठे हैं। लाखों सत्य, और लाखों मिथ्या धर्म पास-पास इस संसार में पलते रहें, बिना किसी विरोध के इतना स्थान इस संसार में कहाँ हैं ? अन्न के रूप में जहाँ धान नित्य पैदा होता है वहाँ अब तुम नित्य काँटे बोओगे न मित्र ! प्रेम इतना व्यापक नहीं है। जहाँ सत्यसनातन धर्म था मित्र के हृदय में विश्वासघात को बिठाओगे अब ! कोई तो धर्म के लिये मर मिटे, कुस्थान में चोरों के सदृश्य अनेक अत्याचार सहकर और कोई धर्म-व्रत को त्याग कर सुख से जीवे, सम्मान के साथ। यह धरणीतल ऐसा विपरीत धर्म भार वहन कर सके, इतना सुदृढ़ इसका वक्ष नहीं हैं, नहीं, कभी नहीं।

सुप्रिय—(मालिनी की ओर मुड़कर) हे देवि, तुम्हारी ही जय हुई। अपने कर-कमलों से जो शिखा तुमने मेरे हृदय में जलायी है, आज उसकी परीक्षा हो

गई, तुम्हारी ही जय हुई। सारे अपमानों का भार, समस्त निष्ठुर घात मैं आज प्रसन्नता से वहन करता हूँ। खून उबल उठता है, विद्रोह की तरह विदीर्ण हृदय में, तो भी तुम्हारी शांति सम्पूर्ण है। तुम्हारा प्रेम पूर्ण है देवि ! तुम्हारा मंगलमय प्रकाश आज सर्वोच्च स्थान पर बैठा है। भक्त की आज परीक्षा हो गयी, जयदेवी ! (क्षेमंकर की ओर मुड़कर) क्षेमंकर तुम प्राण दोगे अपने धर्म के लिये। मैंने तो दान दिया है तुम्हारा विश्वास, जो तुम्हारे प्रेम से भी बढ़कर है। जिसके आगे प्राण-भय सौ-सौ बार तुच्छ है !

क्षेमंकर—यह प्रलाप बाणी छोड़ो, मैं मृत्यु को ही धर्मराज मानता हूँ, धर्म की परीक्षा उन्हीं के आगे होगी। बन्धुवर आओ, आओ, आओ मेरे पास, मेरे हाथों, आओ साथ-साथ चलें वहाँ ! स्मरण हैं वह दिन बचपन के। जब रात-रात भर तर्क करते थे आपस में, पर प्रातः होते ही साथ-साथ गुरूजी के पास जाते थे। रात के तर्कों का निर्णय कराने कि कौन सच्चा है और कौन झूठा। मैं वैसा ही प्रभात आज चाहता हूँ। अपनी समस्त शंकाएँ हम लेकर चलें साथ उस अक्षय धाम को। दोनों मृत्यु की बगल में खड़े हों दाहिने बायें अपनी-अपनी शंकाएँ और प्रश्न लेकर। जहाँ सत्य प्रत्यक्ष प्रकाशित है, वहाँ क्षण भर में पर्वत सदृश्य विचार-विरोध भाप की तरह उड़ जायेगा। और फिर हम दोनों अबोध हँसा करेंगे एक दूसरे को देखकर। जिसे तुम सबसे बड़ा समझते हो, उसे वहीं छोड़ दो, देखो सामने मृत्यु है।

सुप्रिय—मित्र ऐसा ही हो !

क्षेमंकर—तो आओ, आओ, चिपट जाओ मेरे वक्ष से, तुम बहुत दूर चले आये थे मित्र भटक कर, अब आओ फिर से मेरे पास, यहाँ हम दोनों का अनंत तक विछोह नहीं होगा। लो ग्रहण करो अपने बन्धु के हाथ का शेष करुण विचार, यह लो !

क्षेमंकर लौह कड़ियाँ सुप्रिय के माथे में अपने पूरे बल से मारता है जिससे सुप्रिय पृथ्वी पर गिर पड़ता है।

सुप्रिय—देवी तुम जीतीं, तुम्हारी जय हो।

सुप्रिय की मृत्यु हो जाती है

क्षेमंकर—बुलाओ अब घातक को, बुलाओ ना ?

राजा—(सिंहासन छोड़कर) अरे कोई है ! शीघ्र तलवार लाओ।

मालिनी—पिता ! राजन् क्षमा करदो क्षेमंकर को, क्षमा करदो।

(मूर्छित होकर गिर पड़ती है।)

कर्ण और कुन्ती

पात्र-पचिय

कर्ण	कौरवों का सेनापति
कुन्ती	कर्ण की माँ, पांडु की रानी

प्रथम दृश्य

(पांडु की रानी कुन्ती के गर्भ से विवाह से पूर्व एक बच्चा पैदा हुआ था, जिसे उन्होंने लोक-लाज के कारण त्याग दिया था, आगे चलकर इसी बच्चे का नाम कर्ण पड़ा।)

जाह्नवी के किनारे संध्या समय कर्ण भक्ति में लीन था, तभी वहाँ कुन्ती पहुंच गई।

कर्ण—मेरा नाम कर्ण है, मैं एक गाड़ीवान का पुत्र हूँ, गंगा के किनारे बैठा हुआ सूर्यास्त की पूजा कर रहा हूँ। आप कौन हैं माता जी ? मेरी माता राधा है !

कुन्ती—वत्स ! मैं वह महिला हूँ, जिसने तुमको संसार का यह प्रकाश सर्वप्रथम दिखाया, और विश्व से परिचय कराया। आज मैं अपने कुल की सब लाज तजकर तुम्हें अपना परिचय देने आई हूँ।

कर्ण—देवी मैं आपकी बात समझा नहीं ! आपके नेत्रों की दृष्टि मेरे हृदय को इस प्रकार पिघलाये जा रही है जैसे पहाड़ की चोटी पर बर्फ को सूर्य की प्रात की किरणें पिघला देती हैं। आपकी आवाज, लगता है पूर्व जन्म में भी सुनी थी जो कानों के द्वारा हृदय में पहुंचकर वेदनायें जगा रही है। अहो ! कौन-सी रहस्य डोरी है जो मेरे जन्म को तुम्हारे साथ बाँध रही है ! अपरिचिते बताओ तो ?

कुन्ती—क्षण भर धीर धरो पुत्र ! तनिक सूर्य भगवान अस्त हो लें और संध्या के अन्धकार को तनिक गहरा हो लेने दो। सभी कुछ बताती हूँ। सुनो, मैं कुन्ती हूँ !

कर्ण—कुन्ती ! आप !! अर्जुन की माताजी !!!

कुन्ती—हाँ ! मैं ही अर्जुन की माँ हूँ, पर यह सोचने भर से अपने मन में विद्वेष मत करना। मुझे रह-रहकर हस्तिनापुर का वह दिन याद आता है,

जिस दिन अस्त्र परीक्षा हुई थी। तरुणकुमार तुम रंगशाला में धीरे-धीरे इस प्रकार बैठे थे मानो रात्रि की समाप्ति पर पहली किरण प्रकाशित हुई हो और पर्दे के पीछे महिलाएँ बैठी थीं। उन्हीं में एक अभागिन बैठी थी जिसके नेत्रों से प्रेमाश्रु बह रहे थे और जो विषधर की तरह उसके कपोलों से ढुलक कर गोद में पड़ रहे थे, वह और कोई नहीं मैं ही थी, अर्जुन की मां। उस समय जब तुम से ब्राह्मण ने पिता का नाम पूछा था और कहा था तुम राज्य वंश से पैदा नहीं हो, इसलिये अर्जुन से युद्ध करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है, तो तुम शान्त नीचे को गर्दन लटकाये खड़े रहे थे। भला उस समय की तुम्हारी लज्जा से किस भाग्यहीना के हृदय को ठेस लगी थी ? वह अर्जुन की मां ही थी। दुर्योधन-सा पुत्र धन्य है जिसने तुमको तत्काल अपनाकर राज्याभिषेक किया। वह कार्य वास्तव में प्रशंसनीय था। मेरे नेत्रों से उस समय कितने हर्ष के अश्रु बहे थे तुम्हारे अशीर्वाद के हितार्थ, इसे मैं ही जानती हूँ। इस प्रकार कौरवों को एक योधा मिल गया। जब अधीरथ रथवान भीड़ को चीरता हुआ बाहर निकला तो तुमने अपना राज्य मुकुट उसके चरणों में रख दिया, उस समय पांडव हँसने लगे··· पर उस समय ऐसी कौन स्त्री थी जिसका हृदय बहादुरी को देखकर उछलने लगा···वह मैं ही अर्जुन की जननी थी।

कर्ण—राजमाता आपको प्रणाम ! पर आप यहाँ अकेली कैसे आई हैं, यह युद्धस्थल संहारक है और आप जानती हैं मैं कौरवों का सेनापति हूँ।

कुन्ती—तुमसे एक भिक्षा माँगने आई हूँ। ना न करना पुत्र !

कर्ण—राज माता ! मुझ से भिक्षा ! पौरुष-अतीत और धर्म के विरुद्ध जो भी आप कहेंगी मैं कर बाँध आपके चरणों में अर्पित कर दूँगा।

कुन्ती—मैं तो तुम्हें लेने आई हूँ।

कर्ण—मुझे ! राजमाता भला कहाँ ले जाओगी मुझको ?

कुन्ती—मैं तुम्हें वक्ष में रखना चाहती हूँ, जो कि तुम्हारे लिये बेकरार है !

कर्ण—राजमाता ! आप पाँच पुत्रों की भाग्यवान मां हैं। मैं तो एक साधारण-सा राजा हूँ और वह भी हीन कुल का, भला मुझे हृदय में कैसे स्थान दे सकोगी ?

कुन्ती—मैं तुम्हें अपने हृदय में सर्वोच्च स्थान दूँगी, क्योंकि उन पाँच पुत्रों से भी तुम बड़े हो।

कर्ण—वहाँ प्रवेश पाने का भला मुझे क्या अधिकार है। जिनका सारा राज्य वैभव छीन लिया गया है, उनका एक मात्र मातृस्नेह कैसे मैं बाँट लूं स्वार्थी बन कर। माता का हृदय ऐसा होता है जिसे धन से प्राप्त नहीं किया जा सकता। यह तो विधाता का ऐसा दान है जिसे न कोई बाहुबल से जीत सकता है न अन्य किसी प्रकार से।

कुन्ती—मेरे बेटे, मेरे लाल, एक दिन भगवान से यही अधिकार प्राप्त करके तुमने मेरी गोद में जन्म लिया था। बिना किसी विचार और सोच के उसी अधिकार के साथ गौरव सहित आओ। अपने भाइयों के बीच मां की गोद का स्थान तुम भी प्राप्त करो।

कर्ण—देवी ! तुम्हारी बात मैं स्वप्न की तरह सुन रहा हूँ। सारे संसार में अंधेरा छा गया है, चारों ओर के दृश्य छिप गये हैं, जाह्नवी भी शान्त है। आप मुझे किस मायालोक में खींच ले गयी हैं, जहाँ मेरी चेतना शून्य हो गई है। मेरा हृदय आपकी बाणी सुनकर मुग्ध हो गया है, लगता है मेरा अस्फुट शैशवकाल अन्धकार के जाल में मुझे लपेट रहा है। हे राजमाता आओ ! सत्य हो या स्वप्न आप आओ और अपना वरद हस्त मेरे मस्तिष्क पर रख दो क्षण-भर के लिये। मैंने लोगों से सुना था कि जब मैंने जन्म लिया था तो माँ मुझे त्यागकर चली गई थी। मैं त्याज्य पुत्र हूँ। मैंने बहुत बार स्वप्न में देखा कि मेरी माता दयालु होकर धीरे-धीरे मेरे पास आई मुझे देखने के हेतु और ज्योंही मैंने कातर हो विनय की उससे कि माँ अपना चेहरा मुझे दिखाओ, तो वह स्वप्न मूर्ति तुरन्त छिप गई और इस प्रकार मेरा सुख-स्वप्न टूट गया। आज वही स्वप्न सत्य हो रहा है जो पांडवों की माँ जाह्नवी के किनारे सन्ध्या के समय मेरी जननी के रूप में आई है रणक्षेत्र में। देवी उस पार तो देखो पांडवों के शिविर में अंधेरे को दूर करने के लिये दीप जल गये हैं, और इस पार नजदीक ही कौरवों की घुड़साल में घोड़ों के खुरों की टपटप की आवाज आ रही है। कल का प्रभात युद्ध का आरम्भ होगा, तब आज की रात अर्जुन की माँ के

कण्ठ से मुझे अपनी माँ का स्नेह-स्वर मधुर संगीत-सा सुनाई क्यों पड़ा, तभी तो मेरा मन पांडवों की ओर उन्हें भाई समझकर दौड़ रहा है।

कुन्ती—तभी तो कहती हूँ पुत्र आओ मेरे साथ, मेरा कहना मानकर।

कर्ण—माँ अब कुछ संशय या सोच नहीं रहा, तुम्हारे साथ चलूँगा। मुझे अब तुमसे कुछ नहीं पूछना तुमतो मेरी माता हो, सोचने की कोई बात ही नहीं रह गई। स्नेह पाकर मेरी अन्तरात्मा जाग्रत हो उठी है। अब मेरे कान रण-भेरी और जयशंख नहीं सुनते हैं। मुझे लगता है युद्ध की हिंसा, बहादुरों की प्रसिद्धि और हारजीत मिथ्या है। कहाँ ले चलोगी, चलो !

कुन्ती—वहाँ, उस पार, शान्त स्कन्धावार में, जहाँ दीप जल रहे हैं पांडवों के डेरों पर !

कर्ण—वहाँ पर ये मातृहीन प्राणी माँ का स्नेह पायेगा ! ध्रुवतारे की तरह अटल और गंगाजल की तरह शुद्ध माँ का स्नेह। देवि ! एक बार फिर कह दो—तुम मेरे ही पुत्र हो !

कुन्ती—मेरे पुत्र !

कर्ण—माँ बताओ, तुम किसलिये मुझे मातृस्नेह से वंचित कर रेत पर फेंक-कर चली गई थीं, जहाँ मुझे मान के बदले अपमान मिला था ? मुझे क्यों सदैव के लिये अवज्ञा स्रोत में बहा दिया था, क्यों मुझे तुमने भाइयों के परिवार से अलग कर दिया था ? तुमने मुझे अर्जुन से अलग कर दिया था इसीलिये शैशव दोनों को खींच रहा है, द्वेष का रूप रखकर। माता तुम्हारे पास मैं जानता हूँ, इसका कोई उत्तर नहीं है। शायद तुम्हें अपने किये का पछतावा हो रहा है, तभी तो लज्जा के कारण तुम्हारी दृष्टि नीची हो गई है। अच्छा माँ जाने दो, मत बताओ मेरे त्यागने का क्या कारण था। मैं अब इस बात का उत्तर नहीं चाहता हूँ माँ कि तुमने संसार के सर्वश्रेष्ठ सुख माँ के स्नेह से मुझे क्यों वंचित किया था, पर फिर भी मैं जानता हूँ कि उन अज्ञात सब बातों को आज त्यागकर मुझे गोद में लेने क्यों आई हो ?

कुन्ती—पुत्र ! तुम्हारी भर्त्सना पत्थर के समान है, जो मेरे हृदय को टूक-टूक किये दे रही है। तुम्हारा मैंने त्याग किया था यह उसी श्राप का तो दंड

है कि आज मैं पाँच-पाँच पुत्रों की माँ होकर भी महसूस कर रही हूँ कि मैं निपुत्री हूँ। त्यागे हुए पुत्र को पाने के हेतु मैं दीप जलाकर विश्व-देवता की आरती किया करती थी, मेरा अहोभाग्य जो आज तुमसे मिल सकी। जब तुम बोल भी न सकते थे, तभी मैंने महान् अपराध किया था, सो तेरी भर्त्सना ज्वाला प्रज्वलित होकर मेरे हृदय के उस समय के पाप को जलाकर भस्म कर देगी और मैं पुनः पवित्र हो जाऊँगी।

कर्ण—माँ मुझे चरण-स्पर्श कर लेने दो, जिससे मैं अपने को धन्य कर सकूँ और मेरे श्रद्धारूपी अश्रु स्वीकार करो।

कुन्ती—बेटा मैं केवल इसलिये तुम्हारे द्वार पर नहीं आई कि तुम्हें प्यार करके वक्ष से लगा लूँ। मेरी यह इच्छा दृढ़ है कि तुम्हें लौटाकर तुम्हारा वह अधिकार दे दूँ जिससे तुम वंचित रहे हो। तुम सूत-पुत्र नहीं हो, राजा की सन्तान हो। अपने हृदय से पूर्व का सारा अपमान दूर करके मेरे साथ वहीं चलो जहाँ तुम्हारे पांचो भाई हैं।

कर्ण—जननी! मैं तो सूत पुत्र ही हूँ, मेरी माँ तो राधा ही है, और इसीमें गौरव भी है। मुझे किसी से कोई ईर्ष्या नहीं है, पाण्डव पाण्डव रहें, और कौरव कौरव रहें, मुझे क्या ?

कुन्ती—बाहुबल से अपनी चीज का उद्धार करके राज्य पर अधिकार करो। युधिष्ठिर जैसे गम्भीर योधा तुम्हारे सहकारी होंगे, भीम छत्रधर होगा और अर्जुन सा सारथी होगा। धौम्य जैसा पुरोहित होगा जो नित्य वेदगान किया करेगा। मेरे प्राणों से प्रिय पुत्र तुम शत्रुओं को जीतकर के अखंड प्रतापी राजा बन शत्रुहीन साम्राज्य के रत्नजटित सिंहासन को सुशोभित करो।

कर्ण—हे माता ! जिसने मातृस्नेह तक मुझसे छीन लिया, वही मुझे सिंहासन का आश्वासन दे, असम्भव है ना। जिस दौलत को तुमने मुझसे एक दिन छीन लिया था उसे अब फेरना तुम्हारे सामर्थ्य की बात है ? माँ तुमने मेरा उच्च राज्यवंश, मेरे भाई सब कुछ मुझसे छीन लिये मेरे जन्म लेते ही, तब तुमसे और क्या आशा करूँ ? सूत-जननी से कैसे छल करूँ, आज राजमाता को माता कहकर। माँ जिन बन्धनों से मैं कौरवों से बँधा हूँ, यदि उन्हें तोड़कर

आज तुम्हारे साथ चला गया तो मुझे सौ-सौ बार धिक्कार है।

कुन्ती—बहादुर तू मेरा पुत्र है। तू धन्य है! ऐ धर्म तेरा कितना कठोर दण्ड है! उस दिन कौन जानता था कि जिस छोटे शिशु को मैं असहायावस्था में तज रही हूँ एक दिन सामर्थ्यवान बन वही फिर आयेगा। अन्धकार मय मार्ग से सिर उठाकर और, पाषाण-हृदय बन अपने शस्त्र अपनी ही माँ की अन्य सन्तानों पर चलायेगा। कैसा श्राप है ये।

कर्ण—माँ! भय मत करो। मैं कहता हूँ युद्ध में पाण्डवों की जय होगी, मुझे युद्ध का फल स्पष्ट दीख रहा है। माँ मेरा कहना मानो, जिस पक्ष की हार स्पष्ट दीख रही है, उससे नाता तोड़ने के लिये मत कहो। मेरी अच्छी माँ मुझे ऐसी आज्ञा मत देना। पाण्डवों को राजपाट जीतना है तो जीतने दो, मैं तो केवल हारने और मृत्यु के घाट उतरने वालों का साथ दूँगा। बहुत समय हुआ जब मैं पैदा हुआ था तो आप मुझे नग्न और बिना नाम का छोड़कर चली गई थीं। आज भी मुझे हार और मृत्यु के सामने फेंककर चली जाओ, और आशीर्वाद देती जाओ माँ कि विजय के लोभ या राज्य के लोभ से मैं वीर की गति पाने के मार्ग से भ्रष्ट न हो पाऊँ।

कुन्ती बाहर चली जाती है।

(यवनिका गिरती है।)

मुक्त धारा

पात्र-परिचय

राजा रनजीतसिंह	
मंत्री	
भभूती	दरबारी इंजीनियर
विश्वजीत	राजा का चाचा
रामकुमार	राज्य का होने वाला राजा
धंजय	वैरागी
गनेश	प्रजा का नेता
अम्बा	एक चढ़ते दिमाग की स्त्री
विजयपाल	सेनापति

इनके सिवाय, अजनबी, नागरिक, हलकारा, पहरेदार, मास्टर, बच्चे, फूल वाली, विशन, मुसाफिर, ननकू, हब्बा, भरती करने वाला, कंकर, नरसिंह, बनवारी, पुजारी, तथा अन्य पात्र ।

प्रथम दृश्य

पहाड़ी स्थान। एक सड़क भैरों के मंदिर की ओर जाती दिखाई देती है। खेल के अन्त तक यही दृश्य रहेगा। लोहे का एक बहुत बड़े यन्त्र का ढाँचा दिखायी दे रहा है, इसके समकक्ष भैरों के मंदिर का कलश है। सड़क के किनारे उत्तरकोट के राजा रनजीतसिंह के डेरे दिखाई दे रहे हैं। वह सन्ध्या का मेला देखने जा रहा है। राजा का इंजीनियर भभूती २५ वर्ष के दिनरात के श्रम के पश्चात् मुक्तधारा (नदी का नाम) पर बांध बांधने में सफल हो गया। उत्तरकोट के निवासी भैरों के मंदिर में भेंट चढ़ा रहे हैं और मंदिर में मेले की तैयारी हो रही है। इंजीनियर भभूती की सफलता की प्रसन्नता में मेला किया जा रहा है।

मंदिर के पुजारी सामने हैं, और मंदिर के चारों ओर घूम रहे हैं। भैरों देवता के गीत गा रहे हैं। तासे, खड़ताल और नाथ बजा रहे हैं।

एक अजनबी पूजा के लिये कुछ भेंट लिये प्रवेश करता है और उत्तरकोट के नागरिकों से मिलता है।

अजनबी—अरे भाई! यह आकाश को छूती हुई क्या वस्तु है। उफ़! कितनी भयानक है।

नागरिक—क्या तुम्हें इसके बारे में जानकारी नहीं है, प्रतीत होता है तुम अजनबी हो।······यह एक यन्त्र है।

अजनबी—यन्त्र! कैसा यन्त्र?

नागरिक—राजा के इंजीनियर भभूती ने २५ वर्ष के पश्चात् इस यन्त्र को बनाया है, और अभी कल ही बनकर तैयार हुआ है। उसी शुभ घड़ी के लिये यहाँ मेला हो रहा है।

अजनबी—इस यन्त्र से क्या होगा?

नागरिक—इस यन्त्र ने मुक्त धारा का पानी रोक दिया है।

अजनवी—कितना भयानक है यह। ऐसा प्रतीत होता है कि कोई बहुत बड़ा राक्षस अपना मुँह खोले हुये है। इसे हर क्षण देखते रहने से हमारी तुम्हारी आत्माएँ निर्बल हो जायँगी।

नागरिक—हमारी तुम्हारी आत्माओं के बचाव के लिये भगवान ने हमें बहुत मोटी चमड़ी दी है।

अजनवी—कुछ भी हो, ऐसी वस्तु को नक्षत्रों और सूर्य के समक्ष नंगा नहीं रखना चाहिये। ऐसा प्रतीत होता है कि यह डरावनी वस्तु आकाश और पृथ्वी के बीच रोक बनकर खड़ी है।

नागरिक—यह तो बताओ कि क्या तुम भैरों देवता की पूजा के लिये नहीं चलोगे ?

अजनवी—मैं इसीलिये घर आया हूँ, और प्रतिवर्ष इसीलिये घर आया करता हूँ, पर इससे पहले मैंने इतनी बड़ी रोक नहीं देखी थी। देखो तो सही यह यन्त्र तो मंदिर के कलश से भी ऊँचा है। ये तो मंदिर की हीनता हुई।

(वह चला जाता है।)

एक स्त्री 'अम्बा' प्रवेश करती है वह एक श्वेत चादर ओढ़े हुई है जो जमीन पर घिसट रही है।

अम्बा—सुमन ! मेरा सुमन ! क्या मेरा सुमन लौटकर नहीं आयेगा ? जब तुम सब लौट आये हो, तो वह क्यों नहीं लौटकर आया ?

नागरिक—तुम कौन हो ?

अम्बा—मैं जनाई गाँव की अम्बा हूँ। सुमन मेरा बेटा, मेरी आँखों की ज्योति ! मेरा तारा ! मेरे जीवन की आशा !

नागरिक—उसे हुआ क्या है ?

अम्बा—मैं भी तो नहीं जानती, पता नहीं ये लोग उसे कहाँ ले गये। मैं भैंरों देवता की पूजा के लिए अन्दर गई थी, जब बाहर आई तो पता नहीं उसे कहाँ ले गये थे।

नागरिक—तो फिर उसे नदी के बांध बनाने के लिए भर्ती कर लिया होगा।

अम्बा—मैंने सुना है कि उसे गौरी पहाड़ी की ओर ले गये हैं, वहाँ तक तो मैं देख नहीं पाती, अब बताओ उसे मैं कैसे देखूँ ?

नागरिक—क्यों जी को दुखी कर रही हो, हम सब मन्दिर में जा रहे हैं तुम भी चली आओ ! आज बहुत बड़ा दिन मनाया जा रहा है।

अम्बा—नहीं, नहीं ! जब से मेरा सुमन मुझ से छिन गया है, मैं मन्दिर में जाने से डरती हूँ। मैं तुम्हें बताऊँ कि हमारी पूजा देवता तक नहीं पहुँचती है। कोई आदमी मार्ग में ही हमारी भेंट छीन लेता है।

नागरिक—भला कौन है वह ?

अम्बा—वही जो मेरे सुमन को मुझसे छीनकर ले गया है, मैं नहीं जानती कि वह कौन है। आह मेरा सुमन ! मेरा प्राणों से प्यारा सुमन !

(वह चले जाते हैं।)

राजकुमार का हलकारा भभूती को मिलता है, जब कि वह सड़क से मन्दिर की ओर जा रहा है।

हलकारा—भभूती ! मुझे राजकुमार ने आपके पास भेजा है !

भभूती—राजकुमारी क्या चाहते हैं ?

हलकारा—आप बड़े समय से नदी की धार को रोक लगाने में लगे हुये हैं। कई बार बाँध टूटा और उसके साथ हजारों जीव बह कर चले गये, और आज···

भभूती—और आज मैं सफल हो गया हूँ, और मानव की बलि काम आ गई है।

हलकारा—शिवतराई के रहने वालों को इसका पता नहीं है, वह तो कभी इस बात को स्वीकार भी नहीं कर सकते कि जो पानी भगवान ने मनुष्य के लिये भेजा है, वह इन्हीं से रोका भी जा सकता है।

भभूती—भगवान ने इनको पानी दिया, तो उसी भगवान ने मुझको इतनी शक्ति दी कि मैं उस पानी को रोक सकूँ।

हलकारा—वह तो यह भी नहीं चाहते कि थोड़े दिनों के लिये इनके खेत···

भभूती—यह खेतों की कहानी क्यों ले बैठे हो, मुझे इनके खेतों से क्या

मतलब ?

हलकारा—क्या आपने यह नहीं सोचा कि पानी के बिना इनके खेत बंजर की शक्ल में बदल जायेंगे।

भभूती—मुझे तो केवल यह सोचना था, कि आदमी पानी, रेत और पत्थरों पर किस प्रकार विजय पा सकता है, ये शक्तियाँ आदमी के विरुद्ध थीं इस प्रकार यह बहुत बड़ा काम था। भला मैं थोड़े से मक्का के खेतों के लिये क्यों अपने इरादे को छोड़ देता।

हलकारा—राजकुमार की आज्ञा है कि आप इस बात पर फिर से सोचें।

भभूती—मुझे तो केवल यंत्र के सम्बन्ध में सोचना है।

हलकारा—क्या भूख और प्यास की वस्तुएं तुम पर प्रभाव नहीं डाल सकतीं ?

भभूती—नहीं ! पानी का दबाव मेरे बनाये बाँध को ढकेल नहीं सकता। भूख और प्यास की वस्तुएँ मेरे यंत्र को अपने स्थान से हिला भी नहीं सकतीं।

हलकारा—क्या तुम्हें लोगों के श्राप का भी तनिक-सा डर नहीं है ?

भभूती—(मुस्कराकर) श्राप ? जब उत्तरकोट में श्रमिक नहीं रहे थे, तब राजा की आज्ञा से अठारह वर्ष से अधिक के समस्त युवक टपाना गाँव से घसीट लाया था, और उनमें से अधिकतर वापिस नहीं जा सके। माताओं के श्राप देने के पश्चात् भी मेरा यंत्र खड़ा हो गया। जो भगवान की शक्ति से लड़ना जानता है, वह मनुष्यों के श्राप से नहीं घबराया करता।

हलकारा—राजकुमार की आज्ञा है कि आपने एक नया आविष्कार किया और अब इस आविष्कार को नष्ट करके नाम पैदा करो।

भभूती—जब तक मेरा काम समाप्त नहीं हुआ था, तब तक मेरा था, और जब वह कार्य पूर्ण हो गया तो सारे उत्तरकोट का है। अब मुझे कोई अधिकार नहीं कि मैं इसे नष्ट कर दूँ !

हलकारा—राजकुमार की आज्ञा है कि वह अधिकार अपने हाथ में लेंगे।

भभूती—क्या यह बात राजकुमार ने कही है ? क्या राजकुमार हमारे नहीं है ?

हलकारा—राजकुमार ने यह कह दिया है कि ईश्वर की इच्छा बड़ी है। उत्तरकोट के राजपाट का यह यंत्र बीच में से हटा दिया जायेगा।

भभूती—मैं यंत्र की शक्ति से यह सिद्ध कर दूँगा कि ईश्वर का सिंहासन भी हमारा है। राजकुमार से जाकर कह दो कि अब यंत्र को हटाने का मार्ग कोई भी शेष नहीं रहा है।

हल्कारा—यदि भगवान इसे गिराना चाहेगा तो उसे मार्ग की आवश्यकता नहीं होगी ? साधारणसा छिद्र भी नष्ट होने के लिये बहुत है।

भभूती—छिद्र ? तुम्हें इसका पता कहाँ से चला ?

हल्कारा—मैं कुछ नहीं जानता, जो प्रयोग करता है वही जानता है।

(हल्कारा चला जाता है।)

उत्तरकोट के नागरिक मंदिर की ओर जा रहे हैं, मार्ग में भभूती से मिलते हैं।

पहला नागरिक—इंजीनियर साहब आप भी कमाल के व्यक्ति हैं आप तो दो दिनों में चमक उठे।

दूसरा नागरिक—अरे भाई ये तो आपकी आरम्भ से ही टेक थी। कोई व्यक्ति इस भेद को न जान सका कि दौड़ में किस प्रकार सबसे आगे रहे। अरे ये वही सिर मुडा भभूती है, पाठशाला में अध्यापक जिसके कान खींचा करते थे, हमारे साथ ही पढ़ा करता था; और आज तो हमको भी इसने विस्मय में डाल दिया है।

तीसरा नागरिक—ओ गवरू ! क्या बात है ? क्यों यहाँ मुँह फाड़े खड़े हो ? क्या तुमने प्रथम बार भभूती को देखा है ? तनिक फूलों के हार निकालो ताकि हम भभूती को हार पहिनायें !

भभूती—नहीं-नहीं ! ऐसा करने से क्या लाभ ?

तीसरा—आपके लिये ही ना ! यदि आपकी बढ़ाई का विचार किया जाय तो आपकी गर्दन ऊँट जितनी लम्बी हो जाय, और हम आपको हारों से लाद दें।

दूसरा—हरीश ! अभी तक हमारा ढोलची नहीं आया।

पहला—यार वह आदमी तो काहिलों का सम्राट है ! ढोल के बजाय

उसकी पीठ का आदर करना चाहिये।

तीसरा—अरे भई बात ये है कि हमें तो ढोल बजाना तक नहीं आता।

चौथा—मेरे जी में तो आया था कि मैं भभूती के लिये सामन्त का रथ ले आऊँ, परन्तु मैंने सुना है कि महाराज भी पैदल ही आ रहे है; इसलिये हमें भभूती को कंधों पर उठा लेना चाहिये।

भभूती—नहीं-नहीं यह तुम्हारी अधिकता है मेरे साथ!

पांचवा—कोई अधिकता नहीं, तुम उत्तरकोट की गोद में पैदा हुये और अब तुम्हें कन्धों पर उठाया जायेगा?

(वह भभूती को कन्धों पर उठा लेते हैं, नाचते गाते और नारे लगाते सब बाहर चले जाते हैं।)

राजा रनजीतसिंह और उसका मंत्री प्रवेश करता है।

राजा—मंत्री! तुम शिवतराई की जनता को प्रसन्न करने में असफल रहे हो, और अब भभूती मुक्तधारा का पानी रोकने में सफल हो गया है; पर ये बात क्या है कि तुम किसी प्रकार की प्रसन्नता प्रगट नहीं कर रहे हो! क्या ईर्ष्या करते हो उससे?

मंत्री—महाराज! क्षमा कीजिये। हमारा ये काम नहीं कि हम फावड़ों और कुदालों की सहायता से मिट्टी से खेलें! हमारा हथियार राजनीति है, हम तो लोगों के मस्तिष्क से कार्य लेते हैं। मैंने ही महाराज को यह सम्मति दी थी कि राजकुमार को शिवतराई में भेजा जाय। यदि राजनीतिज्ञतापूर्ण बाँध बंधता तो निस्सन्देह बाँध इससे अधिक दृढ़ होता, जो इस समय भभूती के हाथों से तैयार हुआ दिखाई दे रहा है।

राजा—पर इसका फल क्या निकला? दो वर्ष से इन्होंने लगान अदा नहीं किया, यह अकाल तो सदैव ही आया करते हैं, पर वह लगान अदा कर दिया करते थे।

मंत्री—महाराज! उस समय लगान और टैक्स से भी अधिक मूल्यवान चीज जारी थी; जबकि महाराज ने राजकुमार को लौटने की आज्ञा दी थी। छोटी वस्तुओं को निम्नश्रेणी की समझना राजाओं का कार्य नहीं हैं। जब

सहन शक्ति शेष नहीं रहती तब यही छोटी वस्तुएँ कष्ट उठा-उठाकर भारी वस्तुएँ बन जाया करती हैं।

राजा—मंत्री ! तुम सदैव बाहर के समाचार सुनाने में अपनी आवाज बदलते रहते हो, मुझे अच्छी प्रकार स्मरण है कि तुमने एक बार कहा था ऊँचाई पर बैठे हुये व्यक्ति को नीचे खड़े हुये व्यक्तियों पर दवाब डालना आवश्यक होता है, और जो जनता हमारे देश की नहीं उस पर तो दवाब डालना ही चाहिये !

मंत्री—हां ! महाराज मैंने ये कहा था, पर उस समय वातावरण कुछ और ढंग का था, इसलिये मैंने आपको ऐसी सम्मति दी थी। पर अब .....

राजा—राजकुमार को शिवतराई में भेजना मेरी सम्मति के विरुद्ध था।

मंत्री—क्यों महाराज ?

राजा—सदैव दूर रहने से लोगों पर प्रभाव रहता है और इसके प्रतिकूल नित्य का मिलना-जुलना पहले आदर को कम कर देता है। तुम अपने देश के निवासियों को प्यार से जीत सकते हो, पर विदेशी राज्य के व्यक्तियों के हृदयों पर आतंक के राज्य का ही डर रहता है।

मंत्री—महाराज ! आप भूल रहे हैं, कि राजकुमार को शिवतराई में क्यों भेजा गया था। कई दिनों से हम देख रहे थे कि राजकुमार को किसी क्षण चैन न पड़ता था और हमें इस बात का विश्वास हो गया था कि राजकुमार इस बात को जान गये हैं कि राजमहल में उन्होंने जन्म नहीं लिया, बल्कि मुक्तधारा के पास से उठाया गया है। हमने यह चाहा कि उनके हृदय को कष्ट न पहुँचे, इसलिये......

राजा—मैं जानता हूँ कि वह रात्रि के समय अकेला मुक्तधारा की ओर मुँह करके बैठ जाया करता था। एक बार मैं स्वयं भी उसके पीछे-पीछे गया था और उससे पूछा था कि वह इस समय यहां क्या करने आया है। तब उसने कहा था—'मैं जल तरंगों के रौरव में मां की आवाज सुन रहा हूँ।'

मंत्री—महाराज ! एक बार मैंने पूछा था—'राजकुमार ! प्रायः आप राजप्रासाद से बाहर क्यों रहते हैं ?' तो उन्होंने उत्तर दिया था—'मैं दुनियां में

नये मार्ग खोजने आया हूँ।' राजकुमार के जीवन का यह सबसे बड़ा कारण है, और यह पूरा होना ही चाहिये।

राजा—पर राजकुमार को तो एक बहुत बड़ा राज्य सम्हालना है, उसका क्या बनेगा ?

मंत्री—महाराज ! आपके गुरु जी के गुरु महाराज ने ही यह कहा था।

राजा—सम्भव है वह गलती पर हों, जब मैं राजकुमार पर दृष्टि डालता हूँ तो मुझे घाटा ही घाटा चारों ओर प्रतीत होता है। कुछ दिन हुए उसने नदी की घाटी की दीवार गिराकर हमारे पुरुखों की मेहनत पर पानी फेर दिया था। कुछ पता है कि अब क्या होगा ? शिवतराई की ऊन और दूसरी वस्तुएँ बिना रोक-टोक के दूसरी मंडियों में चली जायेंगी और तब निश्चय ही उत्तरकोट में खाने पीने की वस्तुएँ मंहगी हो जायँगी।

मंत्री—महाराज ! आप ये बात न भूलें कि राजकुमार नवयुवक हैं और अपने कर्तव्य के एक पहलू को सामने रखते हैं, बस वह यह चाहते हैं कि शिवतराई के रहने वालों का हृदय न दुखे।

राजा—और इसी बात को मैं विद्रोह कहता हूँ। मुझे विश्वास है कि शिवतराई के बैरागी धंजय का इस में पूरा-पूरा हाथ है जो राज्य के विरुद्ध जनता को भड़काया करता है हमें इस व्यक्ति को उसकी माता सहित बन्दी बना कर स्वर्गलोक पहुँचा देना चाहिये।

मंत्री—मैं महाराज की बात को झूठी सिद्ध नहीं कर सकता। पर महाराज भी इस बात से इन्कार नहीं करेंगे कि कभी-कभी कुछ खतरों को चुपचाप सहन भी कर लिया जाया करता है।

राजा—तुम अन्देशा मत करो मंत्री।

मंत्री—परन्तु महाराज ! मैं यह चाहता हूँ कि आपको किसी बात का अन्देशा न हो।

एक पहरेदार प्रवेश कर रहा है।

पहरेदार—महाराज ! आपके चाचा विश्वजीत राजा मोहन पधारे है।

राजा—एक और आ गया है, यह इन सब का गुरु है, जिन्होंने राजकुमार

का सत्यानाश किया है। वह व्यक्ति जो संबंधी हो और फिर अन्य हो, वह कुबड़े के कूबड़ की तरह है, जो सदैव उसके साथ रहता है, पर वह इसे काट भी नहीं सकता। यह कोलाहल कैसा है ?

मंत्री—महाराज ! पुजारी मन्दिर से बाहर निकलकर मन्दिर का चक्कर लगा रहे हैं।

(पुजारी गाते हुये निकलते हैं।)

राजा का चाचा विश्वजीत प्रवेश करता है।

राजा—आइये ! मैं प्रणाम करता हूँ। मुझे यह बिल्कुल आशा न थी कि आप भी आज हमारी पूजा में सम्मिलित होंगे।

विश्वजीत—मैं तुमसे एक बात कहने आया हूँ कि भैरों भी तुम्हारी आज की पूजा किसी प्रकार स्वीकार नहीं करेंगे।

राजा—आपके इन शब्दों से हमारे बड़े त्यौहार का आदर कम होता है।

विश्वजीत—त्यौहार ! कैसा त्यौहार ? इस पानी की धारा को रोककर त्यौहार, जो कि देवताओं ने प्यासों के लिये बनाया है ? भला तुमने ऐसा क्यों किया ?

राजा—दुश्मनों को नीचा दिखाने के लिये।

विश्वजीत—क्या तुम परमात्मा को अपना दुश्मन बनाते हुए नहीं डरते ?

राजा—हमारी विजय परमात्मा की विजय है। वही उत्तर कोट का रखवाला है, यह भगवान की ही इच्छा है कि हम शिवतराई को उत्तरकोट के चरणों में डाल दें।

विश्वजीत—यदि यह सत्य है तो तुम्हारी पूजा पूजा नहीं हैं, बल्कि टैक्स है जो तुम भगवान को दे रहे हो।

राजा—चाचा ! आप सदैव बाहर के लोगों का साथ देते हैं और अपने देशवासियों का बुरा चाहते हैं। आपने ही ऐसी उल्टी-पुल्टी शिक्षा अभयजीत की दी है जिसके कारण वह...... !

विश्वजीत—मैंने शिक्षा दी ? क्या एक वह समय न था जब मैं हर तरह से तुम्हारे साथ था। जब तुम्हारे कारण टपाना में विद्रोह हुआ, तो क्या मैंने

उस विद्रोह को दबाया नहीं था ? फिर अभयजीत मेरे हृदय में समा गया; और तब मेरे हृदय का समस्त अंधकार दूर हो गया। तुम अभयजीत को अपने घर ले आये, क्योंकि तुम्हारा विचार था कि एक दिन यह लड़का राजा बनेगा; और आज तुम उसे केवल उत्तरकोट में बाँधकर रखना चाहते हो।

राजा—आपने ही यह भेद खोला होगा कि राजकुमार राजा का बेटा नहीं; वरन् वह मुक्तधारा के पास पड़ा हुआ पाया गया था।

विश्वजीत—हाँ मैंने ही कहा। दीपावली के दिन मैंने ही यह भेद खोला। वह अकेला झरोखे में खड़ा गौरी पहाड़ी की ओर देख रहा था। मैंने कहा 'तुम क्या देख रहे हो पुत्र !' उसने उत्तर दिया—'मैं देख रहा हूँ कि आने वाले मार्ग मेरे नेत्रों के समक्ष हैं, वह मार्ग जो अभी तक कठिन घाटियों में बनाये नहीं जा सके। इन मार्गों से दूर रहने वाले पास-पास हो जावेंगे।' जब मैंने राजकुमार के मुँह से ऐसी बात सुनी तो मेरे हृदय में एक बात आयी कि इस बालक को कभी भी बन्दी नहीं बनाया जा सकता। इसकी मां ने मुक्तधारा के किनारे इसे जन्म दिया है, और बालक युवा होकर सारे विश्व को अपना बना रहा है तो मुझ से न रहा गया। मैंने केवल मात्र इतना ही कहा—'मेरे पुत्र ! जब तुम सड़क के किनारे जन्मे थे तो इस उघाड़े पहाड़ ने ही तुम्हें शरण दी थी !

राजा—अब मैं समझा।

विश्वजीत—क्या समझे !

राजा—जब से राजकुमार अभयजीत ने तुमसे यह बात सुनी, उसे राज-पाट की किसी वस्तु से प्रेम नहीं रहा। सबसे पहले उसने नदी की घाटी की दीवार तोड़ डाली !

विश्वजीत—आखिर हुआ क्या ? खुली सड़क पर चलने का प्रत्येक को अधिकार है, उत्तरकोट के निवासियों को भी और शिवतराई के रहने वालों को भी।

राजा—चाचा ! मैंने आपकी बहुत-सी बातें सहीं, पर अब मुझ में शक्ति नहीं रही ! आप मेरी राजधानी त्यागकर तुरंत चले जांय।

विश्वजीत—मैं चला जाऊँ ? मैं नहीं जा सकता। हां ! यदि तुम मुझे

त्यागकर चले गये तो मुझको अत्यधिक दुःख होगा ।

(बाहर चला जाता है ।)

अम्बा प्रवेश करती है।

अम्बा—आप कौन हैं ? सूर्य डूबने लगा, पर मेरा सुमन अभी तक नहीं आया !

राजा—तुम कौन हो ?

अम्बा—मैं ? मैं तो कुछ भी नहीं, मेरा जो भी कुछ था वह छीन लिया गया । इसी मार्ग पर छीन लिया गया था । क्या अभी तक मेरा सुमन पहाड़ी मार्ग पर जा रहा है । सूर्य डूब रहा है, अंधेरा बढ़ता आ रहा है । चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा है ।

राजा—(मंत्री से) प्रतीत होता है कि......

मंत्री—हां महाराज ! बांध बनाने वाले मजदूरों में से किसी की मां है । दुःख मत करो, तुम्हारे पुत्र को बड़ा पुरस्कार मिल चुका है ।

अम्बा—यदि यह सच है तो वह पुरस्कार लेकर अवश्य संध्या तक मेरे पास आता । मैं उसकी मां हूं ।

राजा—वह अवश्य आयेगा ! अभी संध्या निकट नहीं है ।

अम्बा—भगवान करे तुम्हारी बात सत्य हो, मैं तो इसी सड़क पर उसकी प्रतीक्षा करूँगी ।

(चली जाती है ।)

एक स्कूल मास्टर थोड़े से लड़कों सहित प्रवेश करता है ।

मास्टर—यह पाजी तो केवल डंडे से बस में आते हैं । हाँ जोर जोर से कहो—'राजा की जय ।'

बच्चे जोर से राजा की जय कहते हैं ।

राजा—कहाँ जा रहे हो तुम ?

मास्टर—महाराज आप राज्य के इंजीनियर भभूती का आदर बढ़ाने वाले हैं । मैं भी बालकों को साथ लेकर इसी प्रसन्नता में सम्मिलित होने जा रहा हूँ । मेरे बालक ऐसे अवसर पर अवश्य वहाँ होने चाहिएँ ।

राजा—क्या यह बच्चे जानते हैं कि भभूती ने क्या काम किया है ?

बच्चे—(तालियाँ बजाते और नाचते हुये) हाँ ! हाँ हम जानते हैं, उसने शिवतराई के निवासियों को पीने का पानी बन्द कर दिया है।

राजा—उसने पानी क्यों बन्द किया ?

बच्चे—उन्हें पाठ पढ़ाने के लिये।

राजा—किस प्रकार ?

बच्चे—ताकि उन्हें दंड मिले।

राजा—क्यों ?

बच्चे—क्योंकि वह बहुत बुरे आदमी हैं।

राजा—भला वह बुरे आदमी क्यों हैं ?

बच्चे—बस वह बुरे आदमी हैं, और इस बात को प्रत्येक मनुष्य जानता है, आप नहीं जानते क्या ?

राजा—तो तुम नहीं जानते कि वह क्यों बुरे हैं ?

मास्टर—महाराज ! यह जानते हैं (लड़कों से) अरे मूर्खो ! तुम्हें क्या हो गया है ? क्या तुमने......तुमने पुस्तकों में नहीं पढ़ा ?......नहीं पढ़ा (धीरे से) उनका धर्म खराब है।

बच्चे—हाँ-हाँ उनका धर्म खराब है।

मास्टर—और वह हमारी तरह नहीं हैं। हाँ ! हाँ कहो तुम्हें स्मरण नहीं रहा।

(नाक की ओर इशारा करता है।)

बच्चे—हाँ उनकी नाक ऊँची नहीं है।

मास्टर—शाबाश ! भला ऊँची नाक किनकी होनी है ?

बच्चे—ऊंचे धर्म वालों की।

मास्टर—ठीक ! भला ऊँचे धर्म वाले क्या करते हैं। हाँ ! हाँ ! बोलो !......वह अपने लिये विश्व को विजय किया करते हैं......बोलो ?

बच्चे—हाँ ! वह अपने लिये विश्व को विजय किया करते हैं।

मास्टर—क्या आज तक उत्तरकोट की किसी युद्ध में हार हुई है ?

बच्चे—कभी नहीं !

मास्टर—तुम जानते हो हमारे राजा के दादा ने किस प्रकार २९३ सिपाहियों से दुश्मन के चालीस हजार सिपाहियों को मार भगाया। क्या यह सच नहीं है ?

बच्चे—बिल्कुल सच है।

मास्टर—महाराज ! आप देखेंगे कि ये बच्चे एक दिन हमारे देश के दुश्मनों को नष्ट कर देंगे। हम मास्टरों पर बड़ी जिम्मेदारियां हैं, और मैं एक पल भी नहीं भूल सकता कि हम मनुष्य बनाते हैं और आपके राजनीतिज्ञ उन्हें प्रयोग में लाते हैं। फिर भी महाराज हमारी और इन राजनीतिज्ञों की पगार में कितना अन्तर है ?

मंत्री—पर यह बच्चे तुम्हारा सबसे बड़ा पुरस्कार है !

मास्टर—जी ! आपने सच कहा······बड़ा पुरस्कार······पर किया क्या जाय ! आजकल खाने पीने की समस्त वस्तुएँ महंगी हो रही हैं। अब देखिये मक्खन पहले······।

मंत्री—बस रहने दीजिये मास्टर जी ! आपके लिये मक्खन का प्रबंध हो हो जायगा। अब आप जा सकते हैं।

(मास्टर लड़कों सहित चला जाता है।)

राजा—इस व्यक्ति के मस्तिष्क में मक्खन के सिवाय अन्य कोई वस्तु नहीं थी !

मंत्री—पर महाराज, इस प्रकार के आदमी होते बड़े काम के हैं। जैसी कि उसे आज्ञा दी गई है, उसी प्रकार अपना पाठ पढ़ाता रहता है। यदि इसमें थोड़ी-सी बुद्धि भी होती तो यह हमारे काम का बिल्कुल न होता।

राजा—वह सामने आकाश पर क्या लटका हुआ है ?

मंत्री—महाराज ! क्या आप भूल गये, यह वही भभूती का यंत्र है।

राजा—आज तो बिल्कुल स्पष्ट दीख रहा है। क्या तुम नहीं देख रहे कि यंत्र के पीछे सूर्य कितने क्रोध से चमक रहा है। यंत्र को इतना ऊँचा नहीं होना

चाहिये था !

मंत्री—ऐसा प्रतीत होता है कि यह यंत्र आकाश के वक्ष में काँटे की तरह खटक रहा है।

राजा—आओ चलें मंदिर की ओर !

(वह चले जाते हैं।)

उत्तरकोट के निवासियों का दूसरा जत्था प्रवेश कर रहा है।

पहला निवासी—क्यों भाई तुमने देखा ? भभूती किस प्रकार हम से कन्नी काटता है ? वह यह दिखाना चाहता है कि वह हमारा आदमी नहीं है। एक दिन उसे प्रतीत हो जायगा कि तलवार के लिये यह अच्छा नहीं कि वह म्यान से अधिक बढ़ जाय।

द्वितीय निवासी—तुम चाहे कुछ भी कहो, पर भभूती ने उत्तरकोट का नाम ऊँचा कर दिया है।

पहला—यह व्यर्थ की बात है। तुम उसे बेकार बढ़ा रहे हो, यह बाँध दस बार टूट चुका है।

तीसरा—कौन जाने कि यह बाँध अब न टूटेगा।

पहला—क्या तुमने उत्तरकोट की ओर टीला देखा है ?

दूसरा—हाँ ! हाँ क्या है वह ?

पहला—तुम नहीं जानते ? जिसने भी देखा है वह जानता है कि......

दूसरा—कुछ कहो भी; आखिर वह क्या है ?

पहला—तुम पगले हो। क्या तुम नहीं जानते कि एक किनारे से लेकर दूसरे किनारे तक......अच्छा छोड़ो इस बात को !

दूसरा—अरे भाई मेरे पल्ले तो धूल भी नहीं पड़ी ! कुछ कहोगे भी ?

पहला—सन्तोष करो ! यह बांध अपने मुँह से ही सब कुछ कह देगा। जबकि अचानक यह टूट जायगा।

दूसरा—अचानक ? उफ ! बड़ा भयानक दृश्य होगा ?

पहला—हाँ जगरु तुम को बताएगा। उसने एक-एक इंच नाप लिया है।

दूसरा—बड़ा सावधान है यह जगरु तो ! बस वह तो मस्त होकर धैर्य के

साथ अपने काम में लगा रहता है।

तीसरा—पर बहुत से व्यक्ति कहते हैं कि भभूती की सारी कारीगरी······

पहला—हाँ ! हाँ !! उसने ये सारी कारीगरी-बंकोट वरमा से चुराई है। वह बहुत बड़ा आदमी था। भला उसकी बराबरी कौन कर सकता था। बड़ा ही विद्वान था ! पर सारा पुरस्कार तो भभूती ले गया और वह बेचारा एक-एक दाने को तरस-तरस कर भगवान का प्यारा बन गया।

तीसरा—केवल भूख ?

पहला—कोई क्या जाने ? भूख से मरा था या किसी ने भोजन में विष दे दिया था। पर अब बात करने से क्या लाभ ? कोई सुनले तो प्रलय हो जाय ! हमारे यहाँ के व्यक्ति तो ऐसे है कि किसी के संबंध में अच्छी बात तो सुन ही नहीं सकते।

दूसरा—जो कुछ तुम कहते हो......

पहला—छोड़ो उस कहानी को ! चलो मंदिर चलें। हम भभूती के गाँव के निवासी हैं, इसलिए हमारा स्थान उसकी दाहिनी ओर होगा !

(बातो परदे के पीछे से चला जाता है।)

आवाज—सज्जनो ! वहाँ मत जाओ। यहाँ से ही वापिस चले जाओ !

दूसरा—लो बूढ़ा बातो भी आ गया।

बातो फटा कम्बल और टेढ़ी सोटी लिये प्रवेश करता है।

बातो—मित्रो ! कान खोलकर सुनो। इस मार्ग पर मत बढ़ो, अभी समय है, वापिस लौट जाओ !

दूसरा—किस कारण ?

बातो—वह मनुष्यों की बलि चढ़ा रहे हैं। वह बलपूर्वक मेरे दो नातियों को ले गये, और अब तक वापिस नहीं लाये।

पहला—अरे पागल ! हम तो भैरों मंदिर में जा रहे हैं।

बातो—क्या तुमने नहीं सुना ? यह लोग भैरों जी को गद्दी से उतार कर किसी राक्षस को बिठा रहे हैं।

दूसरा—ओ पागल ! अपना मुँह बन्द करो। यदि उत्तरकोट वालों ने यह

सुन लिया तो वह तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर देंगे।

बातो—यह लोग मुझ पर कीचड़ उछाल रहे हैं, बच्चे पत्थर फेंक रहे हैं, और प्रत्येक यही कहता है......'तुम बड़े भाग्यवान् हो जो तुम्हारे दो नाती बलि चढ़ा दिये गये।'

पहला—सच तो है।

बातो—सच है। यदि जीवन की बलि से जीवन न मिले और यदि मृत्यु के पश्चात् मृत्यु ही मिलती है तो फिर भैरों देवता कभी भी ऐसी बलि स्वीकार नहीं करेगा। सज्जनो ! मैं तुम्हें सचेत करता हूँ। इस मार्ग पर आगे मत बढ़ो।

(वह आगे चला जाता है।)

दूसरा—भाई ! बात यह है कि इस व्यक्ति की बातों से मेरे रोंगटे खड़े हो गये हैं।

पहला—राजू ! तुम बड़े कायर हृदय वाले हो आओ चलें !

(वह सब चले जाते हैं।)

राजकुमार अभयजीत और सांजे प्रवेश करते हैं।

सांजे—राजकुमार आप केवल राजप्रासाद छोड़ रहे हैं ?

राजकुमार—तुम नहीं जानते। तुम जान भी कैसे सकते हो कि मेरा जीवन एक स्वतंत्र नदी की तरह है। जो राजप्रासाद की चोटी पर से बहना चाहती है।

साँजे—हम सब देख रहे हैं कि आप कुछ दिनों से बेचैन हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वह बंधन जो हमारे और आपके बीच था, ढीला हो रहा है। क्या वह बंधन टूट गया ?

राजकुमार—सांजे ! तनिक गौरी पहाड़ी के उस पार देखो, सूर्य किस प्रकार डूब रहा है। एक पक्षी पर फैलाए हुये रात के अंधेरे की ओर बढ़ा जा रहा है। उस धुँधलके में मेरे जीवन का चित्र खिंच गया है।

सांजे—मेरे लिये तो यह चित्र किसी और ही रंग का है। तनिक देखिये तो यह बड़ा यंत्र संध्या के वक्ष में किस प्रकार चुभा हुआ प्रतीत होता है। लगता

है कि कोई बड़ा-सा पक्षी रात के अंधेरे में छलांग मारने लगा है। लक्षण श्रेष्ठ दिखाई नहीं देते। अब आराम का समय हो गया है, राजप्रासाद में चलिये।

राजकुमार—जब मार्ग में रुकावट हो तो आराम कैसा ?

सांजे—क्या आपने उस रुकावट को ढूँढ़ लिया है, जिसके सम्बन्ध में आप कई बार चिन्ता प्रगट कर चुके हैं।

राजकुमार—जब मुझे यह पता चला कि मुक्तधारा का पानी बाँध दिया गया है, उसी क्षण मैंने रुकावट को ढूँढ़ लिया था।

सांजे—मैं आपकी बात का अर्थ नहीं समझा ?

राजकुमार—प्रत्येक व्यक्ति के भीतर एक और जीवन होता है, और उसका भेद कहीं न कहीं बाह्य जगत में लिखा होता है। मेरे जीवन का भीतरी भेद भी इसी मुक्त-धारा पर लिखा है। जब पानी की स्वतन्त्रता को रोक दिया गया तो मेरे हृदय को एक बहुत बड़ा धक्का लगा। उत्तरकोट का राजपाट मेरी जीवन-धारा में एक रुकावट है। इसीलिये मैं बाहर खुले मार्ग पर आ गया हूँ ताकि स्वतन्त्रता के साथ मैं अपने मार्ग को साफ कर सकूँ।

सांजे—क्या आप मुझे अपना साथी न बनायेंगे।

राजकुमार—नहीं ! तुम्हें अपना मार्ग स्वयं तलाश करना होगा। यदि तुम मेरे साथ चलो तो मेरी परछाईं का अँधेरा तुम्हारे मार्ग पर छा जायेगा।

सांजे—राजकुमार ! इतने कठोर तो मत बनो। आपकी ऐसी बातों से मेरे हृदय को ठेस लगती है।

राजकुमार—तुम मेरे हृदय को अच्छी प्रकार पहिचानते हो, और यदि तुम्हें मुझ से दुख भी पहुँचे फिर भी तुम्हारी राय मेरे बारे में बदल सकती, इतना तुम मुझे जानते हो ?

सांजे—मैं आपसे यह नहीं पूछना चाहता कि आपको ज्ञान कहाँ से मिलता है। इस समय राजप्रासाद की प्राचीरों से रात्रि का संगीत आरम्भ होगया है। क्या यह बुलावा नहीं है ? मैं यह मानता हूँ कष्टों का आदर कुछ और ही शान रखता है। पर मीठे राग का भी तो कुछ न कुछ मूल्य होता ही है।

राजकुमार—कष्टों के पीछे चलना मीठे राग का मूल्य है।

सांजे—आपको स्मरण है, आप एक दिन प्रार्थना कर रहे थे तो आप कमल का पुष्प देखकर ही विस्मय करने लगे थे। किसी ने आपके जागने से पूर्व ही कमल के पुष्प एकत्रित किये और आप यह नहीं जानते थे कि वह कौन था? इस छोटी-सी घटना पर ध्यान दें राजकुमार एक बार।

क्या आप उस लजीली स्त्री को भी भूल जायेंगे जो आपके मार्ग पर कभी नहीं आई है ?

राजकुमार—हाँ, मैं उसकी श्रद्धा का आदर करता हूँ, और उसके प्रेम के कारण मैं घिनौनी बातें सहन नहीं कर सकता। इससे धरती का संगीत बन्द हो जाएगा ?

बातो प्रवेश करता है।

बातो—वह मुझे आगे नहीं जाने देते। उन्होंने मुझे मारकर पीछे लौटा दिया है।

रामकुमार—क्या बात हुई बातो ? यह तुम्हारे हाथ पर चोट कैसे लगी ? अरे इससे तो रक्त भी निकल रहा है !

बातो—मैं तुम्हें चेतावनी देने आया था ! मैं कहता हूँ इस मार्ग पर मत चलो, लौट जाओ !

राजकुमार—क्यों भला ?

बातो—राजकुमार ! क्या आप नहीं जानते कि ये लोग यन्त्र पर मानव-बलि चढ़ाने आये हैं ! मेरे दो नातियों का रक्त इसकी नींव में डाला गया है। मैं आशा करता था कि पाप के बोझ से यह पाप का घरोंदा स्वयं ही गिर जायेगा, पर अभी तक गिरा नहीं, प्रतीत होता है कि भैरों देवता अभी तक सोया हुआ है।

राजकुमार—हाँ ! वह समय निकट आ गया है जब यह घरोंदा टुकड़े-टुकड़े हो जायगा !

बातो—(पास आकर मध्यम आवाज में) राजकुमार ! आपने सुन लिया होगा ! आपने भैरों देवता की आवाज भी सुन ली होगी !

राजकुमार—हाँ ! मैं सुन चुका हूँ।

बातो—तो क्या आप भाग नहीं सकते ?

राजकुमार—मैं भाग नहीं सकता !

बातो—क्या आप नहीं देखते मेरे शरीर में से कैसे रक्त बह रहा है ! जब आपका हृदय ही रक्त बन गया तब क्या आप इसे स्मरण रखेंगे !

राजकुमार—हाँ ! मैं स्मरण रखूँगा ?

बातो—उस समय भी जब प्रत्येक आपका दुश्मन बन गया है और सबने आपको ठुकरा दिया है ?

राजकुमार—हाँ, उस समय भी !

बातो—तो फिर डर किस बात का ?

राजकुमार—डर की सीमा से आगे बढ़ गया हूँ।

बातो—मैं भी उसी मार्ग पर चल रहा हूँ ! मुझे भूल मत जाइयेगा राजकुमार ! आप मुझे अंधकार में भी पहिचान लेंगे ! यह घाव देख लीजियेगा जो भैरों देवता ने मेरे माथे पर लगाया है।

(बातो चला जाता है।)

ओधव राजा का रक्षक प्रवेश करता है।

ओधव०—राजकुमार ! आपने नदी की धारा को क्यों खोल दिया ?

राजकुमार—इसलिये कि शिवतराई के लोग भूखों न मर जायँ।

ओधव०—हमारा तो राजा ही बड़े कोमल हृदय का है। क्या वह प्रत्येक समय सहायता नहीं करते ?

राजकुमार—जब दाँया हाथ दान करने से रुक जाता है तो बाँये हाथ से सहायता नहीं दी जाया करती। मैंने इसीलिये शिवतराई का मार्ग खोल दिया है। ऐसी दया का क्या लाभ ? जिससे गरीबों को अपनी दया पर रखा जाये।

ओधव०—महाराज कह रहे थे कि आपने नंदी घाटी की सीमा तोड़कर उत्तरकोट रूपी नाव की तली में छेद कर दिया है !

राजकुमार—इससे ये भी लाभ होगा कि शिवतराई सदैव भोज्य पदार्थों के लिये उत्तरकोट की ओर नहीं देखेगा।

ओधव०—आपने यह कार्य अच्छा नहीं किया, महाराज को इसकी सूचना

मिल चुकी है। मैं इससे अधिक कुछ नहीं कह सकता कि आप तुरत यहाँ से भाग जायँ !

(चला जाता है।)

अम्बा प्रवेश करती है

अम्बा—सुमन ! मेरे लाड़ले ! अरे तुम में से कोई भी तो इस मार्ग पर नहीं गया, जिस पर मेरे सुमन को ले गये हैं।

राजकुमार—क्या वह तुम्हारे बेटे सुमन को ले गये ?

अम्बा—हाँ ले गये ! इसी ओर, जिस ओर सूर्य डूब रहा है और जहाँ दिन समाप्त हो जाते हैं।

राजकुमार—मैं भी तो उसी मार्ग पर जा रहा हूँ ?

अम्बा—अच्छा राजकुमार एक फूटे भाग्य वाली स्त्री को भी स्मरण रखना। जब तुम मेरे लाड़ले से मिलो तो कहना तुम्हारी माँ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है।

राजकुमार—अम्बा मैं उससे अवश्य कहूँगा।

(अम्बा चली जाती है।)

सेनापति विजयपाल प्रवेश करता है।

विजयपाल—राजकुमार ! मैं प्रणाम करता हूँ। मुझे महाराज ने भेजा है।

राजकुमार—महाराज की क्या आज्ञा है ?

विजयपाल—मैं एकान्त में प्रार्थना करना चाहता हूँ।

सांजे—(राजकुमार की बाँह पकड़ते हुये) क्या कहा ? मुझ से भी कोई भेद है ?

विजयपाल—महाराज की आज्ञा ही ऐसी है, राजकुमार ! आप डेरे में चलकर पधारें।

सांजे—मैं राजकुमार के साथ ही जाऊँगा।

(जाने लगता है।)

विजयपाल—नहीं-नहीं, यह नहीं हो सकता ! आप महाराज की आज्ञा के विरुद्ध कार्य कर रहे हैं।

सांजे—अच्छा मैं सड़क पर राजकुमार की प्रतीक्षा करूँगा।

(राजकुमार अभयजीत विजयपाल के साथ डेरे में चला जाता।)

एक फूलवाली प्रवेश करती है।

फूलवाली—महाराज ! यह भभूती कौन है ?

सांजे—तुम भला क्यों पूछ रही हो ?

फूलवाली—मैं देवता के पास से आई हूँ, इस शहर में नयी हूँ। मैंने सुना है कि भभूती के मार्ग में आज पुष्प न्यौछावर किये जायँगे। वह अवश्य देवता होगा। मैं भी अपनी वाटिका से पुष्प भेंट करने के लिये लाई हूँ।

सांजे—वह देवता नहीं, चालाक व्यक्ति है।

फूलवाली—उसने क्या किया है ?

सांजे—उसने जल को बन्दी बनाया है।

फूलवाली—क्या इसीलिये उसकी पूजा हो रही है ? क्या ईश्वर की यही इच्छा है ?

सांजे—नहीं, भगवान की इच्छा बिल्कुल इसके प्रतिकूल है।

फूलवाली—मैं कुछ भी समझ नहीं सकी।

सांजे—और यही अच्छा है, कि तुम कुछ भी न समझ सको, वापिस लौट जाओ।

(वह वापिस जाने लगती है।)

ऐ लड़की ! बात सुनो, मैं यह पुष्प खरीदना चाहता हूँ।

फूलवाली—महाराज ! मेरी इच्छा थी कि यह पुष्प देवता के चरणों में चढ़ाऊँ, इसलिये मैं इन्हें बेचना नहीं चाहती।

सांजे—वह देवता जिसका मैं आदर करता हूँ, मैं ये पुष्प उसकी भेंट करूँगा।

फूलवाली—फिर आप इन्हें ले लें। (सांजे मूल्य देना चाहता है।)

नहीं ! इसका कोई मूल्य नहीं है, केवल मेरा नाम बता दें और कह दें कि देवताली मालिन ने यह फूल दिये हैं।

(वह चली जाती है।)

विजयपाल अन्दर प्रवेश करता है ।

सांजे—राजकुमार कहाँ है ?

विजयपाल—वह डेरे में नजरबन्द कर दिये गये हैं ।

सांजे—राजकुमार को नजरबन्द कर दिया गया, किसकी आज्ञा से भला ?

विजयपाल—राजदरबार की ओर से वारंट निकाले गये हैं ।

सांजे—यह किसका कुचक्र है ? मुझे राजकुमार के पास जाने दो ।

विजयपाल—क्षमा कीजिये, मैं ऐसा कदापि नहीं कर सकता ।

सांजे—तो मुझे भी पकड़ लो, मैं भी विद्रोही हूँ ।

विजयपाल—मुझे ऐसी कोई आज्ञा नहीं दी गई ।

सांजे—अच्छा ! तब मैं स्वयं आज्ञा लाता हूँ (कुछ दूर जाकर लौट आता है ।) राजकुमार को मेरी ओर से ये पुष्प दे देना ।

(दोनों चले जाते हैं ।)

धंजय—(अपने एक नागरिक से) क्यों भला क्या बात है ? तुम्हारा रंग पीला पड़ गया है !

पहला—महाराज ! राजा का जमाई चन्दपाल बड़े अत्याचार कर रहा है ।

शिवतराई का नेता गनेश प्रवेश करता है ।

गनेश—महाराज ! मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं इस पापी चन्दपाल को उसकी करनी का फल चखाऊँ !

धंजय—बेटा तुम्हें यह दिखाना है कि बिना चोट पहुँचाये तुम कैसे सफल हो सकते हो ! चप्पू से लहरों को पीटा नहीं जाता, वरन् उन पर विजय पायी जाती है !

दूसरा—आप क्या चाहते हैं महाराज ?

धंजय—अपना सिर उठाओ और कहो कि तुम पर कोई वस्तु चोट नहीं कर सकती, इसके बाद चोट लगाने वाला स्वतः ही समाप्त हो जायेगा ?

तीसरा नागरिक—महाराज मैं ये कैसे कहूँ ? मुझे चोट लगती है और मैं कहूँ नहीं लगती !

धंजय—हमारे अन्दर एक अग्नि की चिनगारी होती है जो वास्तव में हमारा

जीवन है। वह सारे दुखों को सोख लेती है, बस हमारे शरीर को ही कष्ट पहुँचता है, और फिर वह कष्ट चला जाता है। तुम मुँह खोले क्या देख रहे हो, क्या मेरी बात समझ में नहीं आई !

दूसरा—बापू ! हम तुम्हारी बात समझ गये हैं, यदि हम समझे नहीं तो इसमें आपका दोष नहीं।

गनेश—महाराज ! आपकी बातें देर के पश्चात् समझ में आती हैं, पर यदि एकबार समझ में आ जायँ तो हम तुरत तो बच जायँ।

धंजय—पर बच जाने के पश्चात् ?

गनेश—हम आपके पास शरण लेने आये हैं, क्योंकि हम आपको अपना गुरु समझते हैं।

धंजय—बिल्कुल गलत ! तुम्हारे नेत्र अभी तक क्रोध से लाल हो रहे हैं, और तुम्हारी आवाज में संगीत नहीं है ! पागलों से बचने के लिये तुम लोग या तो दूसरों को कष्ट पहुँचाते हो या भाग जाते हो। यह दोनों बातें सभ्य व्यक्तियों की नहीं होतीं। मुझे पकड़ लो, मेरा सब कुछ छीन लो ! देखो बच्चो ! मैं अपने भगवान से यह कहना चाहता हूँ कि वह मुझे परीक्षा में डालें और देखें कि चोट मुझ पर प्रभाव करती है या नहीं। मैं इस सफर में अपनी नाव को उन लोगों से बोझल बनाना नहीं चाहता, जो स्वयं तो डरते ही हैं, दूसरों को भी डराते हैं !

सब के सब एक आवाज होकर—महाराज ! हम आपके साथ हैं ! हमें बताइये आप किधर जा रहे हैं ?

धंजय—राजा के त्योहार में।

तीसरा—महाराज ! वह त्योहार आपके लिये नहीं है, वहाँ आप क्यों जाते हैं ?

धंजय—राज्य दरबार में अपना नाम बताने के लिये।

चौथा—यदि राजा ने आपको पकड़ लिया तो··· नहीं, ऐसा नहीं हो सकता !

धंजय—ऐ मानव ! ऐंसा ही होगा और अवश्य होगा !

पहला—महाराज ! आप राजा से नहीं डरते ?

धंजय—तुम डरते इसलिये हो कि तुम चोट लगाना चाहते हो, मैं किसी को कष्ट नहीं पहुँचाना चाहता, इसलिये नहीं डरता !

दूसरा—यदि ये बात है तो हम आपके साथ हैं, चलिये !

धंजय—तुम राजा से क्या कहोगे ?

तीसरा—बातें तो बहुत-सी हैं, पर पता नहीं वहाँ कौन-सी स्वीकार होगी ?

धंजय—तुम राजा से राजपाट क्यों नहीं माँगते ?

दूसरा—महाराज ! आप हास्य कर रहे हैं ?

धंजय—हास्य तो नहीं ! राजपाट केवल राजा का ही नहीं होता बल्कि उसमें आधा भाग प्रजा का भी होता है। राजा के लिये ही तुम राजपाट माँगो ?

दूसरा— फिर तो हमें धक्के मारकर बाहर निकाल दिया जायेगा।

धंजय—यदि तुम्हारी बात में सचाई है तो राजा की ओर से जो अधिकार दिया जायेगा, वह राजा को ही मिलेगा। बच्चो ! मैं तुम्हें सचाई का एक नियम बताता हूँ। जब तक तुम यह मानो कि भगवान ही सबका रखवाला है तो फिर राजपाट के लिये तुम्हारी बात व्यर्थ है। दरवान हमें भीतर कैसे जाने देगा जबकि हमारे राजसी चेहरे पर धूल अटी होगी। इसके सिवाय हमारे पास और कोई प्रमाण भी तो नहीं।

पहला—महाराज ! आपकी बात हमारी समझ में नहीं आई कि आप राज्य दरबार में क्यों जा रहे हैं ?

धंजय—मैं बताऊँ ? मैं वहाँ क्यों जा रहा हूँ ? इसलिये कि तुम्हारे बारे में मेरा माथा ठनका है !

पहला—बापू !

धंजय—तुम तैरने की चेष्टा करते हो, पर मुझसे चिपटे हुये हो। इस प्रकार तुम तैरने का पाठ भी भूल रहे हो, और मुझे भी नीचे घसीटना चाहते हो ! मैं तो अकेला ही जाना चाहता हूँ।

पहला—पर राजा आपको छोड़ेगा नहीं।

धंजय—भला राजा को मेरी क्या आवश्यकता है ?

दूसरा—यदि आपको कष्ट दिये गये तो हम चुप नहीं रह सकेंगे।

धंजय—मैंने अपना शरीर भगवान को सौंप दिया है, यदि वह चाहता है कि इसे कष्ट दिया जाय तो तुम्हें शांति से काम लेना होगा।

पहला—बापू ! हम भी आपके साथ चलेंगे और देखेंगे कि क्या होता है ?

धंजय—तुम सब यहीं प्रतीक्षा करो। हम उस नगर को नहीं जानते, तनिक मैं इधर-उधर से ज्ञात करना चाहता हूँ उसके सम्बन्ध में।

(वह चला जाता है।)

पहला—क्या तुमने उत्तरकोट निवासियों का रंग-रूप देखा है ? लगता है भगवान जब उन्हें बना रहा था तो बनाते-बनाते अचानक रुक गया।

दूसरा—और उनके वस्त्र कितने बेढंगे होते हैं।

तीसरा—वह कुछ इस प्रकार गठे हुये हैं मानो कहीं टपक न पड़ें।

पहला—मूर्ख ! रात दिन जुते रहते हैं, एक मण्डी से दूसरी मण्डी में जाते हैं। बस उनको यही धुन है।

दूसरा—इनका समाज भी किसी काम का नहीं, और इनकी पुस्तकें भी बिल्कुल बेकार हैं।

तीसरा—वह अपने जीवन को अपने ही हथियार से समाप्त करते हैं। और अपनी पुस्तकों से अपने ज्ञान को नष्ट करते हैं।

दूसरा—पिता ! पिता !! हमारा गुरु कहता है कि इनकी परछाईं में जाना भी पाप है। जानते हो क्यों ?

तीसरा—हाँ, बताओ !

दूसरा—देवताओं की मंडली में जब अमृत बँट रहा था, उस समय गिलासों से कुछ बूँदें नीचे गिर पड़ीं, और उस मिट्टी से शिवतराई के पुरखों का जन्म हुआ। पर, जब अमृत पी लिया और गिलास रिक्त हो गये तो उन्हें तोड़ दिया गया, इसी मिट्टी से उत्तरकोट के वासियों का जन्म हुआ। इसीलिये ये सब इतने पाषाण और गन्दे हैं।

तीसरा—तुमने यह कहाँ से सुना ?

दूसरा—अपने गुरु से।

तीसरा—(शीश झुकाकर) गुरु तुम सच्चे हो।

उत्तर कोट के निवासियों का एक दल प्रवेश करता है।

पहला—और सब काम तो ठीक है, पर राजा ने भभूती को क्षत्रियों में सम्मिलित कर लिया है।

दूसरा—अरे छोड़ो इस कहानी को, फिर देखा जायगा। इस समय हमें 'भभूती की जय' के नारे लगाने चाहिये।

तीसरा—अहा ! वह देखो शिवतराई के निवासी !

पहला—तुम किस प्रकार जानते हो ?

दूसरा—क्या तुम इनके कनटोप नहीं देखते, बड़े मजेदार दिखायी देते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान इनका शरीर बनाते-बनाते सिर पर आकर रुक गया था। क्या वह समझते हैं कि भगवान ने इनके कान बनाकर भूल की !

पहला—उन्होंने अपने कानों के सामने एक दीवार खड़ी कर दी है, ताकि इनका ज्ञान कभी बाहर न निकल जाय !

तीसरा—ये बात नहीं, बल्कि कहीं कोई हानि की बात न सुन लें इसलिये।

पहला—उत्तरकोट का कोई कान खींचने वाला भूत इन पर सवार हो जायगा।

(सब हंसते हैं।)

पहला—क्या तुम सब शिवतराई के रहने वाले हो ?

तीसरा—क्या तुम नहीं जानते कि आज हमारा त्यौहार है ? आओ त्यौहार में चलें और 'भभूती की जय' के नारे लगायें !'

गनेश—हम क्यों भभूती की जय के नारे लगायें ? उसने भला क्या किया है ?

पहला—अरे भाई तनिक सुनना। 'उसने क्या किया है ?' अरे अभी तक सब से बड़ा समाचार तुम तक नहीं पहुँचा। उतारो ये कन्टोप !

(उत्तरकोट के निवासी हँसते हैं।)

तीसरा—क्या तुम यह पूछते हो कि उसने क्या किया है ? सुनो ! जिस पानी से तुम अपनी प्यास बुझाते थे, वह उसके हाथों में है। यदि वहउस पानी

को रोके रहा तो तुम मेंढकों की तरह टर्रा-टर्रा कर मर जाओगे।

शिवतराई का निवासी—हमारा पानी भभूती के हाथों में ? क्या वह भगवान बन गया है ?

उत्तरकोट का निवासी—हाँ उसने भगवान को छुट्टी दे दी है, और उसका कार्य स्वयं सम्हाल लिया है।

शिवतराई का निवासी—उसने क्या किया है ?

उत्तरकोट का निवासी—उसने मुक्त धारा पर बाँध लगा दिया है।

(शिवतराई के निवासी हँसते हैं।)

उत्तरकोट का निवासी—क्या तुम परिहास समझ रहे हो ?

गनेश—परिहास नहीं तो और क्या ? जो वस्तु हमें भैरों देवता ने दी है क्या एक लोहार का लड़का उसे छीन सकता है ?

उत्तरकोट का निवासी—वह देखो यंत्र।

शिवतराई का निवासी—ओह ! यह क्या भूत है ? ऐसा लगता है कि कोई टिड्डा आकाश की ओर छलाँग मारने लगा है।

उत्तरकोट का निवासी—यह टिड्डा अपनी टाँगों से तुम्हारा पानी बन्द कर देगा।

गनेश—अरे यार हमें क्यों मूर्ख बनाते हो ? कल तुम यह कहोगे कि वह लुहार का बेटा टिड्डे पर चढ़कर चन्द्रमा को जा रहा है।

उत्तरकोट का निवासी—यह तुम्हारा दोष नहीं, तुम्हारे कन्टोप तुम्हें कुछ सुनने नहीं देते हैं, इसीलिये तुम नष्ट हो रहे हो।

शिवतराई का निवासी—हम नष्ट नहीं होंगे।

उत्तरकोट का निवासी—यह बात अच्छी है पर तुम्हें बचायेगा कौन ?

शिवतराई का निवासी—क्या तुमने हमारा देवता धंजय नहीं देखा? उसका एक जन्म मंदिर में है और दूसरा बाह्य संसार में।

उत्तरकोट का निवासी—तनिक इन कन्टोप वालों की बातें तो सुनो ! अरे भले आदमी ! अब तुम्हारे सामने संकट ही संकट है।

(उत्तरकोट के वासी चले जाते हैं और धंजय प्रवेश करता है।)

धंजय—पागलो ! इनसे क्या बातें कर रहे थे ? क्या मृत्यु से बचाना मेरा काम है ?

गनेश—उत्तरकोट वाले कह रहे थे कि भभूती ने मुक्तधारा का पानी रोक दिया है।

धंजय—क्या वह कह रहे थे कि बाँध लगा दिया गया है ?

गनेश—हाँ, पिता जी !

धंजय—तुमने ध्यान से उनकी बातों को सुना !

गनेश—बापू ! उनकी बातें सुनने योग्य नहीं थीं !

धंजय—यह दुनियाँ बातों से भरी है और उस ओर से कान बन्द नहीं किये जा सकते।

(बाहर चला जाता है।)

शिवतराई का एक ओर रहने वाला प्रवेश करता है।

शिवतराई का वासी—विशन क्या समाचार है ?

विशन—राजकुमार को शिवतराई से वापिस ले आये हैं ?

सब—नहीं ये नहीं हो सकता !

विशन—अब क्या करोगे ?

सब—हम राजकुमार को वापिस ले जायेंगे।

विशन—कैसे ?

सब—बलपूर्वक !

विशन—और राजा ?

सब—हम उसका मुकाबिला करेंगे।

राजा अपने मंत्री के साथ भीतर आता है।

राजा—किस का मुकाबला करोगे ?

सब—महाराज की जय !

गनेश—महाराज हम एक प्रार्थना लेकर आये हैं।

राजा—हम सुन रहे हैं।

सब—हमें राजकुमार को वापिस दे दीजिये महाराज !

राजा—क्या बढ़िया वस्तु मांगी है तुमने ।

सब—महाराज हम राजकुमार को शिवतराई वापिस ले जायेंगे ।

राजा—ताकि उसके पश्चात् लाग देना भूल जाओ ।

सब—महाराज हम भूखे मर रहे हैं ।

राजा—तुम्हारा नेता कहाँ है ?

दूसरा नागरिक—(गनेश की ओर संकेत करके) महाराज ! हमारा नेता ये हैं ।

राजा—नहीं वैरागी कहाँ हैं ?

गनेश—वह आ गये ।

धंजय अन्दर प्रवेश करता है ।

राजा—वैरागी क्या तुमने ही इन लोगों को पाठ पढ़ाया है कि ये स्वयं को भूल गये ।

धंजय—हाँ महाराज ! मैं भी स्वयं को भूल गया हूँ ।

राजा—मुझे बातों में मत डालो यह बताओ कि तुम कर दोगे या नहीं ।

धंजय—नहीं महाराज !

राजा—तुम बड़े अशिष्ट हो ।

धंजय—महाराज जो वस्तु आपकी नहीं, उसे मैं आपको कैसे दे सकता हूँ ।

राजा—मेरी नहीं ?

धंजय—जो आटा मुझ से बच रहे, वह आपका है, पर जो केवल हमारी भूख को ही मिटा सकता है वह आपका किस प्रकार हो सकता है ?

राजा—तुम मेरी प्रजा को भड़का रहे हो कि वह कर न दे !

धंजय—महाराज ! आपकी प्रजा बड़ी निर्बल है, और बहुत जल्दी घुटने टेक देती है । मैं तो उन्हें ये सिखा रहा हूँ—'केवल परमात्मा को ही प्राण दो, क्योंकि प्राण उसी के हैं ।'

राजा—वैरागी ! तुमने अपने कर्मों की पट्टी पर 'कष्टों' का शब्द लिख दिया है ।

धंजय—महाराज ! वह पट्टी मेरे हृदय पर है, वहाँ वही रहता है जो सारे

कष्टों से परे हैं ।

राजा—(सब से) तुम यहाँ से चले जाओ, केवल वैरागी यहाँ रहेगा !

सब—नहीं महाराज ! हम नहीं जायेंगे !

धंजय—महाराज ! यहाँ केवल वही रहेगा, जिसे रहना है । आप बलपूर्वक किसी को पकड़ नहीं सकते । वह जो कुछ दे देता है सब कुछ पा लेता है, जिस वस्तु को आप लालच में आशावन्त चाहते हैं, वह पराई होती है ! देना तो उसे भी होगा । महाराज ! आप एक भूल कर रहे हैं, जब आप ये देखते हैं कि आप जिस वस्तु को बलपूर्वक अपने बस में कर लें वह आपकी है । यदि आप किसी को स्वतन्त्र छोड़ दें तो निश्चय ही विजय आपकी होगी, पर पकड़ लेने से स्वयं को धोखा मत दीजिये । आप समझते हैं कि आपने विश्व को अपनी आवाज पर चला लिया । अचानक आपकी आँख खुलती है और आप देखते हैं कि जो आप नहीं चाहते थे वह हो रहा है ।

राजा—मंत्री ! इस वैरागी को पहरे में ले लो ।

मंत्री—महाराज !

राजा—मंत्री ! तुम्हें मेरी आज्ञा पसन्द नहीं आयी ?

मंत्री—महाराज ! दण्ड के लिये एक भयानक यन्त्र तैयार हो चुका है, अब और अधिक गर्मी से मशीन दुर्बल हो जायगी ।

सब—हम ऐसा नहीं होने देंगे !

धंजय—मुझे अकेला छोड़ दो, जाओ चले जाओ ।

पहला निवासी—पिता क्या आपने यह नहीं सुना कि राजकुमार को भी हमसे छीन लिया गया है ?

दूसरा—यदि आप दोनों हमसे छीन लिये गये तो हमें शक्ति कौन देगा ?

धंजय—आह ! मेरी पराजय होगी ।

सब—क्यों पिता !

धंजय—तुम समझते हो कि तुमने मुझे पा लिया, पर इस प्रकार तुम मुझे खो रहे हो, मैं इस रिक्तता को कैसे भरूँगा । मुझे स्वयं से लज्जा आ रही है ।

पहला—ऐसा न कहिये बापू ! आप जो कहेंगे हम वैसा ही करेंगे ।

धंजय—फिर मुझे यहाँ अकेला छोड़ दो, और चले जाओ ।

दूसरा--पिता ! क्या आप हमारे बिना रह सकते हो ? क्या तुम्हें हमसे तनिक भी प्रेम नहीं हैं ?

धंजय—तुमसे प्रेम करता हूँ, पर तुम्हें स्वतन्त्र छोड़ता हूँ । प्रेम का अर्थ यह कदापि नहीं कि मैं तुम्हें अपने साथ अपने बन्धन में रखूँ । बस बातें समाप्त हो गईं, अब जाओ ?

दूसरा--अच्छा पिता ! हम जाते हैं । पर···?

धंजय—पर-वर कुछ नहीं अपना सिर ऊँचा करके जाओ ।

सब—बापू ! हम जा रहे हैं ।

(धीरे-धीरे बाहर निकलते हैं ।)

धंजय—क्या इसी को जाना कहते हैं ? शीघ्र···शीघ्र जाओ !

गनेश--जैसी आपकी आज्ञा बापू ! पर इतनी बात स्मरण रखो, हम तुम्हारे बिना किसी काम के नहीं रहेंगे ।

(वह सब चले जाते हैं ।)

राज--वैरागी तुम क्या सोच रहे हो ?

धंजय--इन लोगों ने मुझे विचार में डाल दिया महाराज !

राजा—क्यों ?

धंजय—मैं सोचता हूँ कि जो काम आपका सेनापति चन्दपाल तलवार के बल पर भी नहीं कर सका उसे मैंने बातों-ही-बातों में कर दिया है ।

राजा—यह कैसे ?

धंजय—एक बार मैंने मुस्कराकर कहा था—मैं उन लोगों की आशाओं और विचारों को दृढ़ बना रहा हूँ, लेकिन आज उन्होंने इस विचार को मुझ पर ही दे मारा कि मैं ही वह व्यक्ति हूँ, जिसने उनकी आशाओं और विचारों को चुराया ।

राजा—यह कैसे हुआ ?

धंजय—जिस प्रकार मैं इनके हृदय में जितनी ही जागृति उत्पन्न करता हूँ,

उतना ही इनके हृदय दुर्बल बनाता हूँ। यदि किसी व्यक्ति ने भार उठाया हुआ हो और वह दौड़ना आरम्भ कर दे तो उससे भार हल्का नहीं हो जाता। वह मुझे अपने भगवान से भी बड़ा समझते हैं, और कहते हैं कि मैं ही उनके भगवान का भार उतारूँगा। इसलिये वह आँखें बन्द करके मेरे साथ चिपट गये हैं।

राजा—उन्होंने तुम्हें अपना भगवान समझ लिया है।

धंजय—हाँ महाराज ! इसीलिये वह मुझ तक पहुँच कर रुक जाते हैं और अपने भगवान तक नहीं पहुँच पाते। वह शक्ति जो इन्हें भीतर से मार्ग दिखाती है, मैंने बाहर से दबा रखी है।

राजा—जब वह अपने राजा को कर चुकाने आये हैं तो तुम उन्हे रोकते हो, पर जब वह तुम्हारे चरणों में अर्पण करते हैं जो कि उन्हें परमात्मा को करना चाहिये था तो तुम चुप रहते हो।

धंजय—मैं ऐसा ही करता हूँ महाराज ! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं पृथ्वी में धँस जाऊँगा। वह अपनी सारी पूजा मुझ पर व्यय कर देते हैं, इसलिये उनके सारे भार की जिम्मेदारी मुझ पर है, और इसीलिये मैं इनको छोड़कर भाग नहीं सकता।

राजा—वैरागी ! अब तुम क्या करना चाहते हो ?

धंजय—मैं उनसे दूर रहना चाहता हूँ। यदि यह सच है कि मैंने इनके हृदयों और स्वतन्त्रता के बीच एक प्रचीर खड़ी कर दी है तो मेरा देवता मुझे और आपके भभूती दोनों को ही दण्ड देगा।

राजा—फिर देर क्यों करते हो ? चलो। (ओधव से) इस वैरागी को मेरे डेरे पर ले चलो।

(ओधव धंजय को लेकर डेरे को चला जाता है।)

राजा—मंत्री ! तनिक डेरे पर जाकर राजकुमार को देखो। क्या वह अपने किये पर लज्जित है ?

मंत्री—महाराज ! यह ठीक नहीं। यदि आप स्वयं चलते तो............

राजा—नहीं ! नहीं !! वह विद्रोही है। उसने अपनी जनता से धोखा

किया। जब तक वह अपने किये पर पछतायेगा नहीं मैं मुँह नहीं देखूँगा। मैं राजप्रासाद जा रहा हूँ, वहीं सूचना देना।

(राजा चला जाता है।)

ओधव अन्दर आता है और उत्तरकोट के थोड़े से निवासी प्रवेश करते हैं।

पहला—हमें अपने इरादों में दृढ़ होना चाहिये, चलो राजा के पास चलें!

दूसरा—अरे भाई क्या लाभ? राजकुमार उनके मन्दिर की मूर्ति है। राजा उसके विरुद्ध कोई निर्णय नहीं कर सकेगा, कहीं हमें ही उल्टा न डाँटा जाय।

पहला—कोई बात नहीं, हमें अपनी बात तो कम-से-कम कह ही देनी चाहिये। राजकुमार ने यह दिखा दिया है कि वह हमसे प्रेम नहीं करता। वह तो उत्तरकोट से शिवतराई को बड़ा समझता है।

दूसरा—यदि ऐसा हो गया तो हम किससे न्याय माँगने जायेंगे?

पहला—यदि राजा ने राजकुमार को दण्ड न दिया तो फिर ये काम हमें स्वयं करना पड़ेगा।

दूसरा—तुम क्या करोगे?

पहला—राजकुमार यहाँ नहीं रह सकता। उसने नंदी घाटी की दीवार तोड़ दी है। उसे वहीं भेजा जायेगा!

तीसरा—और सुना है? लोग कहते हैं कि इस समय वह शिवतराई में नहीं है, और वह राजमहल में भी कहीं दिखाई नहीं देता।

पहला—मुझे विश्वास है कि राजा ने उसे कहीं छुपा दिया है।

तीसरा—छुपा दिया है। हम राजप्रासाद की प्राचीरें तोड़कर उसे बाहर ले आयेंगे।

पहला—हम राजप्रासाद में आग लगा देंगे।

मंत्री और ओधव अन्दर आते हैं।

पहला—(मंत्री से) मंत्री महोदय! हमसे यह चाल मत चलो। राजकुमार को बाहर निकालो।

मंत्री—मैं कौन हूँ जो राजकुमार को बाहर निकालूँ।

दूसरा—आपकी सम्मति से ही उसे छिपाया गया होगा। यदि राजकुमार को बाहर न निकाला गया तो हम उसे घसीट कर बाहर निकाल लायेंगे।

मंत्री—अच्छा तो राजधानी की बागडोर तुम्हीं सम्हालो। और राजकुमार को राजा के बन्दीगृह से बाहर निकालो।

तीसरा—राजा के बन्दीघर से ?

मंत्री—हाँ ! हाँ ! महाराज ने राजकुमार को बन्दी बना लिया है।

सब—महाराज की जय ! उत्तर कोट की जय !

दूसरा—चलो बन्दीघर में चलें !

मंत्री—क्या कहा ?

दूसरा—जब हम भभूती के गले में पुष्पहार पहिना रहे थे, उस समय कुछ पुष्पनीचे गिर पड़े थे। हम उन्हें राजकुमार के गले में डालेंगे।

मंत्री—तुम कहते हो कि राजकुमार पापी है, क्योंकि उसने नंदीघाटी की दीवार तोड़ डाली है। पर यदि तुम राज्य का कानून तोड़ोगे तो क्या यह अपराध नहीं होगा ?

दूसरा—वह और बात है !

तीसरा—और यदि हम कानून तोड़ें ! फिर ?

मंत्री—इसका अर्थ है कि हम, तुम सब अपने पैर में स्वयं ही कुल्हाड़ी मार रहे हैं।

तीसरा—अच्छा चलो। राजमहल के सामने खड़े होकर 'महाराज की जय' के नारे लगायें।

पहला—स्मरण रखना सूर्य तो डूब गया है, पर भभूती का यन्त्र अभी तक चमक रहा है।

(नगरिक बाहर चले जाते हैं।)

मंत्री—अब मैं समझा कि महाराज ने राजकुमार को क्यों बन्दी बना लिया है !

ओधव—क्यों ?

मंत्री—इन लोगों के क्रोध से बचाने के लिये, पर इन लोगों का क्रोध क्षण

क्षण में तीव्र होता जा रहा है।

सांजे प्रवेश करता है।

सांजे—मैं महाराज को योग्य नहीं समझता।

मंत्री—छोटे राजकुमार आप शान्ति से काम लें, उलझनें बहुत बढ़ गई हैं, और आपकी दौड़-धूप से और भी बढ़ सकती हैं।

सांजे—मैं नागरिकों से मिला, मेरा विचार था कि वह राजकुमार से बड़ा प्रेम करते हैं और उनके दंड को सह नहीं सकेंगे। पर नंदीघाटी की दीवार तोड़ देने के कारण वह बिफर रहे हैं।

मंत्री—ऐसी दशा में आपको विश्वास होना चाहिये कि राजकुमार का हित इसी में है कि वह बन्दी बने रहें।

सांजे—मैं बाल्यकाल से ही राजकुमार के साथ रहा हूँ, मुझे भी बन्दीघर में जाने दो!

मंत्री—इससे लाभ क्या होगा ?

सांजे—प्रत्येक व्यक्ति आधा मनुष्य होता है, और यदि उसे कोई सच्चा साथी मिल जाय तो वह आधा नहीं रहता। राजकुमार मेरा सच्चा साथी है।

मंत्री—यदि प्रेम सच्चा हो, तो फिर साथ रहने से कोई लाभ नहीं होता। आकाश में मेघ और समुद्र में जल दोनों एक ही हैं और एक दूसरे से इतनी दूर होने पर भी एक ही हैं। यदि राजकुमार तुम्हारे साथ नहीं तो तुम्हें यह सिद्ध करना चाहिये कि वह तुम्हारे साथ है।

सांजे—मंत्री! अपने मुझे स्मरण दिलाया। मैं राजकुमार से दूर रहकर उसका स्मरण ताजा करूँगा। मैं राजा के पास जा रहा हूँ।

मंत्री—किस कारण ?

सांजे—मैं राजा से प्रार्थना करूँगा कि वह मुझे शिवतराई का अध्यक्ष बना दें।

मंत्री—पर यह अवसर बड़ा खतरनाक है।

सांजे—और इसीलिये समय अच्छा है।

(वह चले जाते हैं।)

राजा का चाचा विश्वजीत अन्दर आता है।

विश्वजीत—कौन हैं यहाँ ? ओधव ?

ओधव—जी महाराज !

विश्वजीत—बस मैं अंधेरे की प्रतीक्षा कर रहा था, मेरा पत्र तुम्हें मिल गया होगा ?

ओधव—हाँ महाराज !

विश्वजीत—मैंने जो कुछ कहा, उस पर चले ?

ओधव—हाँ महाराज ! आपको थोड़ी देर पश्चात् प्रतीत हो जायेगा। पर...

विश्वजीत—तुम किसी प्रकार का विश्वास न करो। राजा उसे स्वतन्त्र नहीं करना चाहता, पर यदि कोई व्यक्ति उसे किसी प्रकार स्वतन्त्र करा दे तो राजा को बड़ा सुख होगा।

ओधव—पर राजा ऐसे व्यक्ति को कभी क्षमा नहीं करेंगे !

विश्वजीत—मेरे बहादुर ! तुम्हें और तुम्हारे सिपाहियों को बन्दी बना लेंगे, सारे अपराध तो मेरे ऊपर आयेंगे।

बाहर से एक आवाज—आग ! दौड़ो !! आग !!!

ओधव—यह लीजिये, उन्होंने रसोई के डेरे में आग लगा दी है और यह सिपाहियों के डेरे के पास ही है। इस समय धंजय और राजकुमार को स्वतन्त्र कर सकता हूँ।

(वह बाहर चला जाता है।)

राजकुमार भीतर आता है।

राजकुमार—(विश्वजीत से) आप यहाँ क्यों आये ?

विश्वजीत—मैं तुम्हें बन्दी बनाकर मोहनगढ़ ले जाऊँगा।

राजकुमार—आज मुझे कोई व्यक्ति नहीं पकड़ सकता। प्रेम और घृणा की सीमा से मैं बाहर निकल गया हूँ। आप समझते हैं कि डेरों में आग आपने लगाई है, यही आग मेरी प्रतीक्षा करती रही है।

विश्वजीत—बेटा अब तुम्हें क्या करना है ?

राजकुमार—मुझे अपने जीवन का ऋण उतारना है। मुक्तधारा से मेरा जीवन आरम्भ हुआ है, उसे मैं अवश्य स्वतन्त्र करूँगा।

विश्वजीत—इसके लिये समय बहुत अधिक है, पर आज नहीं।

राजकुमार—मैं तो यह जानना चाहता हूँ कि वह समय आ गया है, अब पता नहीं फिर कब वह समय आये?

विश्वजीत—हम भी तुम्हारे साथ हैं राजकुमार!

राजकुमार—यह आदर्श मेरा था और मुझे ही पूरा करने दीजिये।

विश्वजीत—शिवतराई के निवासी तुमसे प्रेम करते हैं, और आज तुम्हारे संकेत की प्रतिक्षा कर रहे हैं! क्या उन्हें बुलावा नहीं भेजोगे?

राजकुमार—यदि मेरा बुलावा पहुँच गया उनको तो फिर मेरी प्रतीक्षा नहीं करेंगे।

विश्वजीत—मेरे बच्चे! इस समय अँधेरा बढ़ रहा है!

राजकुमार—जहाँ से बुलावा आता है वहाँ से प्रकाश भी आता है।

विश्वजीत—जिस मार्ग पर तुमने पैर उठाया है, मैं रोक नहीं सकता, पर इतना जानता हूँ कि तुमने अंधेरे में छलांग लगाई है। भगवान तुम्हारे साथ हैं, मैं तुम्हें उसी को सौंपता हूँ। मुझे यह तो बतादो कि क्या हम दुबारा नहीं मिलेंगे?

राजकुमार—आप यह न भूलें कि हम एक दूसरे से कभी भी पृथक नहीं हो सकते!

(वह दो विरोधी दिशाओं को चले जाते हैं, बातो और धंजय प्रवेश करते हैं।)

बातो—गुरु! सूर्य डूब गया है और अंधेरा छा गया है।

धंजय—बेटा! हम उस प्रकाश के सहारे ही जीवित हैं, जो बाहर से हमें मिलता है। इसीलिये जब अँधेरा हो जाता है, तो हम अन्धे हो जाते हैं।

बातो—बापू! मेरा विचार था कि भैरों देवता का नृत्य आज आरम्भ हो जायगा, पर क्या भभूती ने देवता के हाथ पैर भी इस यन्त्र से बाँध दिये हैं।

धंजय—जब देवता नृत्य आरम्भ करता है तो वह दिखायी नहीं दे सकता।

जब नृत्य समाप्त हो जायगा तो दिखाई देगा ।

बातो—गुरूजी ! हमें विश्वास दिलाइये, हम डर रहे हैं। भैरों देवता जागो ! जागो !! जागने का यही समय है । प्रकाश लुप्त हो गया, मार्ग पर अँधेरा छा गया, कोई उत्तर नहीं मिलता । हमारे जीवनदाता ! हमारा डर दूर कर दो । भैरों ! यह सोने का समय नहीं है !

(वह चला जाता है ।)

उत्तरकोट के निवासी प्रवेश करते हैं ।

पहला—यह झूठ है ! वह बन्दीघर में नहीं हैं, उसे किसी और स्थान पर छुपाकर रखा गया है !

दूसरा—हम देखेंगे उसे किस प्रकार छिपाते हैं ?

धंजय—नहीं ! वह इसे किसी प्रकार नहीं छुपा सकते ! प्राचीरें गिर जायंगी ! दरवाजे टूट जायेंगे और अंधकार में भी प्रकाश उत्पन्न हो जायगा। तुम्हे सब कुछ प्रतीत हो जायगा ।

दूसरा—यह कौन है ? इसने मुझे चौंका दिया है !

पहला—चलो हमें कोई न कोई आखेट तो अवश्य चाहिये, बाँध लो इस बैरागी को ।

धंजय—उसे पकड़ने की क्या आवश्यकता है जो सदैव से बन्दी है !

पहला—यह महात्माई एक ओर रहने दो ! हम तुम्हारे चेले हैं ।

धंजय—तुम बड़े धनाढ्य हो । मैं कई भाग्यहीनों को जानता हूँ, जिन्होंने गुरु को खो दिया।

पहला—इनका गुरु कौन है ?

धंजय—इनका गुरु वह है, जहाँ से इन्हें क्लेश पहुँचता है।

तीसरा—अरे मित्रो ! अंधेरा छा रहा है और यंत्र भी तो काला होता जा रहा है ।

पहला—दिन के समय यह बहुत चमकता था, और अब रात्रि के समय रात्रि को जमा रहा है !

दूसरा—पता नहीं, भभूती ने इसे ऐसा क्यों बनाया ? यह यंत्र तो सदैव

हमारे नेत्रों के समक्ष रहेगा। ऐसा प्रतीत होता है कि एक चीख हुई है जो आकाश का वक्ष भेद रही है।

चौथा निवासी प्रवेश करता है।

चौथा—सुना ! हमारे राजा का चाचा राजकुमार को बलपूर्वक उठाकर ले गया, और साथ ही पहरेदारों को भी ले गया।

पहला—क्या अर्थ हुआ इस बात का ?

तीसरा—यही कि राजा राजकुमार को दंड न दे सके।

पहला—ऐसा नहीं हो सकता ! हम राजकुमार को अपने हाथों से दंड देना चाहते थे। हमारा अधिकार छीन लिया गया !

तीसरा—चलो ! राजा के पास चलें।

(वह सब चले जाते हैं।)

एक मुसाफिर भीतर आता है जो ऊँची आवाज में बोलता है।

मुसाफिर—बुद्धन ! शम्भू !......बुद्धन ! शम्भू ! क्या सिर खपा दिया है ! उन्होंने मुझसे कहा था कि वह छोटे मार्ग से पहले यहाँ पहुँच जायेंगे और यहाँ उनका चिन्ह तक नहीं ! (ऊपर देखकर) ओह ! यह काला भूत कैसा है ! वह लोहे का भयानक यंत्र ! यह तो मुझे दाँत निकालकर दिखा रहा है मुझे डर लग रहा है !

एक और मुसाफिर आता है।

दूसरा मुसाफिर—मैं ननकू हूँ। लैम्प बेचने वाला ! आज रात को त्यौहार होगा। लैम्पों की तो आवश्यकता होगी न ! तुम कौन हो ?

पहला—मैं हब्बा हूँ। मैं गाने वाले दल का जोड़ीदार हूँ। क्या तुम्हें मार्ग में वह लोग नहीं मिले।

इन्डो तो अवश्य मिला होगा !

ननकू—अरे यहाँ असंख्य व्यक्ति घूम रहे हैं, मैं इन्हें कैसे जानूँ ?

हब्बा—पर हमारा मांडू तो निराला ही आदमी है, इसे पहिचानने के लिये ऐनक की आवश्यकता नहीं पड़ती। मैंने कहा तुम्हारी टोकरी में तो बहुत से लैम्प हैं। क्या मुझे एक न दोगे ? वह लोग जो बाहर फिर रहे हैं उन्हें भर

वालों से अधिक लैम्पों की आवश्यकता है।

ननकू—कितने पैसे दोगे ?

हब्बा—अरे भाई ! यदि मैं पैसे दे सकता तो तुम्हें चीख कर बुलाता और मीठी-मीठी बातों से तुम्हारी खुशामद करता !

ननकू—यार तुम भी बड़े रसीले आदमी हो।

(वह चला जाता है)

हब्बा—न मिला लैम्प ! न मिला तो न सही, रसीले की डिग्री तो मिल गयी। कुछ तो मिला। रसीले व्यक्ति अँधेरे में भी दिखायी दे जाते हैं। पर चाहिये तो ये था कि मैं मुक्का मारकर अँधेरे में लैम्प छीन लेता, और रसीले की डिग्री न लेता।

भर्ती करने वाला प्रवेश करता है।

भर्ती करने वाला—चलो ! चलो !!

हब्बा—अरे भाई मुझे क्यों धमका रहे हो ? बात क्या है ?

भर्ती करने वाला—चलने की तैयारी करो।

हब्बा—मैं भी तो यही सोच रहा हूँ कि कहाँ जाऊँ ?

भर्ती करने वाला—(धक्का देकर) चलेगा भी या बातें ही बनाता रहेगा।

हब्बा—ठीक ! अब मैं समझ गया। मुझे चलना ही चाहिये। मेरी चाहे इच्छा हो या नहीं, पर मुझे यह तो बताइये (धक्का देकर) कि हमें जाना किधर है ?

भर्ती करने वाला—शिवतराई की ओर।

हब्बा—क्या वहाँ कोई नाटक हो रहा है ?

भर्ती करने वाला—नाटक ? हाँ नाटक ही समझ लो ! उसे कहते हैं नंदी-घाटी की प्राचीन का पुनर्निर्माण।

हब्बा—तुम मेरी सहायता से प्राचीर बनाओगे ? प्रतीत होता है कि अँधेरे में तुम्हें कुछ दिखायी नहीं दे रहा। इसीलिये तुम मुझ से ये बात कह रहे हो। मैं तो......

भर्ती करने वाला—मैं यह नहीं जानता कि तुम कौन हो, मैं तो केवल ये

जानता हूँ कि तुम्हारे दो हाथ हैं !

हब्बा—में भी लाचार हूँ कि मेरे दो हाथ हैं, परन्तु यह तो बताओ......

भर्ती करने वाला—तुम्हारी जिह्वा से तुम्हारे हाथों का पता नहीं चल सकता। वहाँ चलकर सारी दशा ज्ञात हो जायगी। चलो।

दूसरा भर्ती करने वाला प्रवेश करता है।

दूसरा—कंकर ! मैं भी एक व्यक्ति को अपने साथ लाया हूँ।

कंकर—यह कौन है ?

मुसाफिर—मैं कोई भी नहीं श्रीमान। मैं तो केवल लछमन हूँ और भैरों के मंदिर में घड़ियाल बजाता हूँ।

कंकर—इसका अर्थ है तुम्हारे हाथ बड़े सुदृढ़ होंगे, चलो शिवतराई !

लछमन—परन्तु घड़ियाल ?

कंकर—कोई बात नहीं। भैरों देवता स्वयं घड़ियाल बजा लेंगे !

लछमन—मुझ पर कृपा करो। मेरी पत्नी बहुत बीमार है।

कंकर—यदि तुम उसके पास न रहे तो वह मर जायगी या अच्छी हो जायगी और यदि तुम घर पर रहे तब भी इन्हीं दो बातों में से एक होगी !

हब्बा—लछमन मित्र ! यों ही धमाचौकड़ी मचाने से कुछ नहीं बनेगा। यह बात ठीक है कि वहाँ जाकर काम करना खतरनाक है, पर तुम्हारा वहाँ न जाना भी खतरनाक होगा, क्योंकि मैं इसका आनन्द पा चुका हूँ।

कंकर—अरे सुनो ! यह नरसिंह की आवाज आ रही है।

नरसिंह बहुत से आदमियों के साथ आता है।

कंकर—क्या समाचार है नरसिंह ?

नरसिंह—मैं इन आदमियों को घेर कर लाया हूँ, कुछ को भेज भी चुका हूँ।

एक—मैं नहीं जाऊँगा।

कंकर—क्यों क्या बात है ?

वही—कुछ नहीं, पर मैं जाऊँगा नहीं।

कंकर—नरसिंह इसका नाम क्या है ?

नरसिंह--इसका नाम बनवारी है, पर यह माला बतला रहा है।

कंकर—में इससे निपटता हूँ (बनवारी से) क्यों बे ! तुम क्यों नहीं जाते ?

बनबारी--शिवतराई के निवासियों से हमारी कोई लड़ाई नहीं, वह हमारे दुश्मन नहीं हैं।

कंकर—पर यह समझ लो कि हम उनके दुश्मन हैं। अब कहो !

बनवारी—किसी का हृदय दुखाना मेरे लिये बड़ा पाप है !

कंकर—हृदय दुखाने के बारे में तुम निर्णय नहीं कर सकते। उत्तर कोट एक बड़ा नगर है, और तुम उसके केवल मात्र निवासी हो !

बनवारी—पर सम्भवतः आपको यह पता नहीं कि विश्व बहुत लम्बा-चौड़ा है, उत्तरकोट और शिवतराई तो उसके तक लघु भाग मात्र है।

कंकर—नरसिंह ! यह व्यक्ति तो तर्क से काम लेता है, और तर्क करने वाला बड़ा हठी होता है।

नरसिंह—ऐसे व्यक्तियों का इलाज ही काम है ! इसीलिये मैं इसे साथ लिये जा रहा हूँ।

बनवारी--मैं तुम लोगों पर एक भार बन जाऊँगा। और न मुझसे तुम कोई लाभ उठा सकते हो !

कंकर—तुम उत्तरकोट के लिये एक भार हो, इसलिये तुम्हें यहाँ से हटाना आवश्यक है।

हब्बा—मेरे मित्र बनवारी ! तुम समझदार व्यक्ति प्रतीत होते हो, पर स्मरण रखो तुम्हें बलवान आदमियों से भी काम पड़ता है और समझदार तथा बलवान की सदैव टक्कर हुआ करती है। या तो इनका ढंग सीख लो या चुप रहो।

बनवारी--तुम्हारा ढंग क्या है ?

हब्बा—मैं गाया करता हूँ, पर इस समय गाना बेकार है, इसलिये चुप हूँ।

कंकर -(बनवारी से) कहो अब क्या सोचा है ?

बनवारी—मैं तो एक पग भी नहीं चलूंगा।

कंकर—फिर हमें उठाकर ले चलना होगा। अरे इधर आना! बाँध लो पाजी को, जो व्यक्ति सीधे ढंग से नहीं जायेगा उसका भी हमारे पास इलाज है।

(नरसिंह और कंकर को छोड़कर सब चले जाते हैं।)

नरसिंह—देखो भभूती आ रहा है। 'भभूती की जय।'

(भभूती प्रवेश करता है।)

कंकर—हमने बहुत से आदमी एकत्रित कर लिये हैं। आप यहाँ कैसे आये? त्यौहार में लोग आपकी बाट देख रहे हैं।

भभूती—त्यौहार में जाने को मेरा मन नहीं करता।

नरसिंह—भला ऐसा क्यों?

भभूती—नंदी घाटी का समाचार खास त्यौहार के समय भेजा गया है, ताकि मेरे रंग में भंग पड़े। कोई व्यक्ति मेरा मुकाबिला कर रहा है।

कंकर—वह कौन हो सकता है?

भभूती—मैं उसका नाम लेना नहीं चाहता, तुम्हें स्वयं ज्ञान हो जायगा। वह इसी चिन्ता में है कि इस देश में उसका नाम मुझ से अधिक हो। एक बात मैंने तुम्हें बताई ही नहीं। दूसरे दल का एक व्यक्ति मुझे मिला था, उसने मुझे यह संकेत भी किया था कि वह बाँध भी तोड़ देना चाहते हैं।

नरसिंह—यह एक विचित्र-सी शरारत है।

भभूती—पागलपन का इलाज तो किसी से भी नहीं हो सका।

कंकर—पर ये तो बतलाइये कि बाँध सुदृढ़ है या नहीं। आपने एक बार बताया था कि बाँध एक दो स्थान पर कमजोर है और सरलता से......

भभूती—जो व्यक्ति इन कमजोर स्थानों को जानते हैं वह ये भी जानते हैं कि यदि तोड़ने की चेष्टा की गई तो इन्हें पानी का बहाव तिनके की तरह बहाकर ले जायेगा।

नरसिंह—मेरे विचार से वहाँ पहरा लगा देना चाहिये।

भभूती—वहाँ मृत्यु स्वयं पहरेदार है। मेरे बाँध को किसी प्रकार का डर

नहीं, यदि मैं नंदी घाटी को एक बार फिर बन्द कर दूं तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी !

कंकर—आपके लिये यह कौन बड़ा कार्य है ?

भभूती—मेरा कार्य तो पूर्ण है, पर घाटी इतनी संकीर्ण है कि थोड़े-से व्यक्ति भी जमकर मुकाबिला कर सकते हैं।

ककरं—इसका अर्थ ये है कि हमें ऐसे व्यक्ति वहाँ ले जाने चाहिएँ, जो मरने के लिये तैयार हों।

(दृश्य के पीछे से आवाज़ है, जागो ! भैरों जागो !)

धंजय प्रवेश करता है।

कंकर—हम अपने मोर्चे पर जा रहे हैं, और इस समय इसका आना कोई अच्छा सगुन नही है।

भभूती—वैरागी ! तुम्हारे जैसे साधू भैरों को कभी नहीं जगा सकते। मेरे जैसे नागरिक ही तुम्हारे देवता को झिझोड़ सकते हैं।

धंजय—मुझे भी पूरा विश्वास है कि तुम्हीं देवता को जगाओगे।

भभूती—हम देवता को मंदिर में जाकर घड़ियाल और घंटों से नहीं जगाया करते।

धंजय—नहीं ! जब तुम उसे अपनी शृंखलाओं से बाँधोगे तो वह आँखें खोल देगा।

भभूती—हमारी शृंखलायें यों ही नहीं टूट सकतीं, जिस प्रकार पाप अगणित होते हैं उसी प्रकार शृंखलाओं के जोड़ भी नहीं गिने जा सकते।

धंजय—वह उस समय आता है जब अटकाव दूर न हो सके।

(पुजारी गाते हुये निकलते हैं।)

राजा और मंत्री प्रवेश करते हैं।

मंत्री—महाराज ! डेरों को आग लगा दी गई है, पहरेदार भी वहाँ......

राजा—छोड़ो उनको। यह बताओ कि राजकुमार कहाँ हैं। मैं इसी समय जानना चाहता हूँ।

कंकर—महाराज ! हम राजकुमार को स्वयं दंड देना चाहते हैं।

राजा—यदि कोई व्यक्ति दंड पाने का अधिकारी हो, तो क्या मैं उसके लिये तुम्हारी बाट जोहूँगा ?

कंकर—महाराज ! राजकुमार मिलता नहीं और लोगों को शक हो रहा है कि......

राजा—शक ? किसके विरुद्ध ?

कंकर—महाराज ! क्षमा कीजिये, आप तो अपनी प्रजा को जानते ही हैं। राजकुमार ढूँढ़ने से नहीं मिल रहा और यदि वह मिल गया तो प्रजा आपके निर्णय की प्रतीक्षा नहीं करेगी।

भभूती—और हमने यह भी निर्णय कर लिया है नंदी घाटी का फिर पुनर्निर्माण हो।

राजा—राजा के होते हुये तुम्हें यह निर्माण नहीं करना चाहिये था।

भभूती—हमें यह शक पैदा हो सकता है कि आपने गुप्तरूप से राजकुमार को आज्ञा दे दी है कि वह नंदी घाटी की प्राचीर तोड़ डाले।

राजा—यह कौन है ? धंजय ?

धंजय—मैं बड़ा प्रसन्न हूँ कि आप मुझे भूले नहीं हैं।

राजा—तुम्हें ज्ञात होगा कि राजकुमार कहा हैं ?

धंजय—जिस बात का मुझे पूर्ण पता हो, उसे मैं छिपाया नहीं करता।

राजा—यहाँ क्या कर रहे हो ?

धंजय—मैं राजकुमार की बाट जोह रहा हूँ।

(बाहर अम्बा की आवाज आती है।)

अम्बा—(बाहर से) सुमन ! सुमन ! मेरे लाड़ले, अंधेरा हो चुका है। अब लौट आओ।

राजा—यह किस की आवाज है।

मंत्री—महाराज ! यह वही पगली अम्बा है।

अम्बा भीतर आती है।

अम्बा—वह अभी तक वापिस नहीं आया।

राजा—तुम उसे क्यों ढूंढ़ रही हो ! उसका समय आ गया था, भैरों देवता ने उसको बुला लिया।

अम्बा—क्या भैरों केवल बुलाया ही करता है, वापिस नहीं दिया करता !

इस अंधकार में ? मेरे सुमन !

(अम्बा बाहर चली जाती है ।)

एक हल्कारा भीतर आता है ।

हल्कारा—शिवतराई से असंख्य व्यक्ति इधर बढ़े आ रहे हैं ।

भभूती—हमने यह निश्चय किया था कि इन पर अचानक आक्रमण किया जाय । हम में से कोई देशद्रोही अवश्य है । कंकर सिवाय तुम्हारे दल के अन्य किसी को भी ज्ञात न था । भला ये कैसे हुआ ?

कंकर—तुम हम पर भी सन्देह करते हो ?

भभूती—सन्देह की भी कोई सीमा होती है ?

कंकर—फिर हम तुम पर सन्देह करते हैं ।

भभूती—हाँ ! तुम कर सकते हो; पर जब समय आयेगा तो बात खुल जायगी ।

राजा—(हल्कारे से) तुम जानते हो, वह किस लिये आ रहे हैं ?

हल्कारा—उन्होंने सुना है कि राजकुमार बन्दीघर में हैं । इसलिये वह उन्हें रिहा कराने के लिये आ रहे हैं ।

भभूती—हम भी राजकुमार को ही ढूँढ़ रहे हैं, देखो उसे कौन ढूँढ़ पाता है ?

धंजय—तुम दोनों को ही मिलेगा वह ।

हल्कारा—शिवतराई का नेता गनेश आ रहा है ।

गनेश अन्दर प्रवेश करता है ।

गनेश—(धंजय से) पिता ! क्या वह हमें नहीं मिलेगा ?

धंजय—अवश्य मिलेगा !

गनेश—बचन दो ।

धंजय—हाँ ! मैं वचन देता हूँ ।

राजा—तुम किसे ढूँढ़ रहे हो ?

गनेश—राजा ! तुम उसे मुक्त कर दो !

राजा—किस को ?

गनेश—हमारे राजकुमार को ! आपको उसकी आवश्यकता न होगी, पर हमें तो है । क्या आप हमारे जीवन को बिल्कुल समाप्त कर देना चाहते हैं ?

The book is partially good and partially bad.
—Anonymous

धंजय—अरे मूर्ख ! उसे बन्दीगृह में कोई नहीं रख सकता ।

गनेश—हम उसे अपना राजा बनायेंगे ।

धंजय—हाँ ! तुम बना सकते हो, वह राजमुकुट पहन कर ही आ रहा है ।

(पुजारी गाते हुये निकलते हैं, पश्चात् अम्बा की आवाज आती है ।)

अम्बा—सुमन ! तुम्हें मां बुला रही है । नहीं सुनते ? लौट आओ । आ जाओ सुमन !

(दूर एक आवाज सुनाई देती है ।)

भभूती—सुनो ! वह आवाज कैसी थी ?

धंजय—अंधकार के वक्ष से हँसी अट्टहास कर रही थी !

भभूती—चुप रहो, तनिक मैं भी सुनूँ । यह आवाज किस ओर से आ रही है ।

(बहुत दूर भैरों की जय सुनाई देती है ।)

भभूती—(पृथ्वी पर दृष्टि गाड़कर) यह पानी की आवाज है ।

धंजय—भैरों का नृत्य आरम्भ होता है ।

भभूती—पानी की आवाज तेज हो रही है ।

कंकर—प्रतीत होता है···

नरसिंह—हाँ ! बिल्कुल निश्चय है कि ··

भभूती—आह ! किसी ने मुक्तधारा का पानी स्वतन्त्र कर दिया है, पर ये है कौन ? किसने बाँध तोड़ा ? वह किसी भी दशा में जीवित नहीं रह सकता ।

(भभूती भागकर बाहर जाता है ।)

(कंकर और नरसिंह भी भागते हुये उसके पीछे आते हैं)

राजा—मंत्री ! यह क्या है ?

धंजय—महाराज ! दासता की श्रृंखलाएँ तोड़ दी गई हैं ।

मंत्री—महाराज ! यह···

राजा—उसीका काम होगा ।

मंत्री—उसके सिवाय और अन्य कौन हो सकता है ।

राजा—हाँ, उसके सिवाय और कोई इतना बहादुर नहीं हो सकता ?

(धंजय गाता है)

राजा—मैं राजकुमार को दंड दूँगा, पर मेरी प्रजा पागल हो रही है । मेरा

अभयजीत देवताओं का प्यारा है ।

मंत्री—भगवान ! उसकी रक्षा करना ?

गनेश—गुरु ! यह क्या हो रहा है !

धंजय—रात्रि पहरा दे रही है···बड़ा पहरेदार भी देख रहा है···और तारे डर से काँप रहे हैं ।

राजा—मुझे पैरों की आहट सुनाई दे रही है । कौन ? अभयजीत ! राजकुमार ! कौन ? सांजे ? अभयजीत कहाँ है ?

सांजे—मुक्तधारा की लहर उसे उठाकर ले गई है, और अब वह हमारे पास नहीं आ सकता ।

राजा—क्या कहा ?

सांजे—महाराज ! उसने बाँध तोड़ दिया है ।

राजा—मैं समझा । उसकी मुक्ति का मार्ग यही था ! सांजे वह तुम्हें अपने साथ नहीं ले गया था ?

सांजे—नहीं महाराज ! मुझे विश्वास था कि राजकुमार वहाँ अवश्य जायेगा । मैं आगे जाकर छुप गया था, पर पानी के पास राजकुमार ने मुझे नहीं जाने दिया ।

राजा—कुछ और बताओ ?

सांजे—राजकुमार को किसी प्रकार प्रतीत हो गया था कि बाँध किस स्थान पर दुर्बल है, और ठीक उसी स्थान पर उसने यन्त्र पर हथौड़ा चलाया । यन्त्र ने उसका उत्तर दिया । मुक्तधारा का पानी स्वतन्त्र होगया और उसे गोद में लेकर दूर बहुत दूर चला गया······जहाँ से कोई लौटकर नहीं आया करता ।

गनेश—हम तो अपने राजकुमार को ढूँढ़ने आये थे । क्या अब कभी उससे न मिल सकेंगे ?

धंजय—तुमने उसे सदैव के लिये पा लिया है ।

(पुजारी भैरों देवता के आदर में गीत गाते हुये आते हैं ।)

(यवनिका गिरती है ।)